मिलके बने हुए कागज़ आठ गुने मूल्य पर भी पर्याप्त मात्रा में न मिलने की वजह से यह पुस्तक हाथ के बने कागज पर प्रकाशित की जा रही है। यद्यपि इन कागज़ों का मूल्य भी करीब २ मिलके कागज़ों के बराबर ही देना पड़ा है पर ये सुविधा पूर्वक मिल जाने से हमें इन्हीं पर छापने को मजबूर होना पड़ा है, यद्यपि इस व्यवस्था से हमें संतोष नहीं है, फिर भी ग्रन्थ को अधूरा छोड़ने की अपेक्षा हमने इस मजबूरी को अच्छा समझा है। आशा है पाठक इसके लिये हमें क्षमा करेंगे और रूप की अपेक्षा ग्रन्थ की सामग्री पर ही विशेष ध्यान देने की कृपा करेंगे।

मुद्रक—
श्री उमेद प्रेस, रामपुरा बाजार कोटा।

PATRONS

RULERS

1—His Highness Maharajadhiraj Sir George Jiwaji Rao Scindia Alijah Bahadur G C. I. E. Gwalior.

2—Late Lieutenant colonal His Highness Maharao Sir Ummed Singh Bahadur G. C. S. I. G. C. I. E. G. B. E. Kotah.

3—Lieutenant His Highness Maharaja Krishna Kumar Singh Bahadur Bhawnagar.

4—Lieutenant colonal His Highness Maharaja Jam Sahab Sir Digvijay Singh Bahadur K. C. S. I. Nawanagar.

5—Lieutenant colonal His Highness Maharaja Lokendra Sir Govind Singh Bahadur G. C. S. I., K. C. S I., Datia,

6—Lieutenant His Highness Maharaj Rana Rajendra Singh Bahadur. Jhalawar.

7 Captain His Highness Maharaja Mahendra Sir Yadvendra Singh Bahadur K C. S I, K C I. E, Panna

8- Rai Bahadur Devi Singh Diwan Rajgarh State. Rajgarh.

BANKERS

9—Lala Padampatiji Singhania Cawnpore.

10—Seth Magni Ramji Ram Kumarji Bangar Didwana.

11—Rai Bahadur Rajya Bhushan Danbir Seth Hiralalji Kashliwal Indore.

12—Seth Sohanlalji Shubhakaranji Ratanlalji Dugar Fatehpur

13—Seth Chunilal Bhaichand Mehta Bombay.

स्मृति

स्वर्गीय सेठ कमलापतजी सिंहानिया की पवित्र स्मृति में:—

विषय सूची

(१)

हिन्दी और यूनानी

❀ * ❀

विषय सूची

(२)

संस्कृत

——:o:——

विषय सूची

(३)

मराठी

विषय सूची

(४)

गुजराती

——:o:——

विषय सूची

(५)

बंगला

Index 6

(Latin Names)

विषय सूची

(७)

(रोगानुक्रम से)

इस विषय सूची में इस ग्रन्थ में आई हुई औषधियां जिन २ रोगों पर काम करती हैं उनमें से कुछ खास २ रोगों के नाम और औषधियों के नाम पृष्ठांक सहित दिये जारहे हैं। सब रोगों के नाम इसमे नहीं आसके इसलिये उनका विवरण ग्रन्थ के अन्दर ही देखना चाहिये। जिन रोगों के अन्दर जो औषधियाँ विशेष प्रभावशाली और चमत्कारिक हैं उन पर पाठको की जानकारी के लिये ऐसे फूल * लगा दिये गये हैं:—

ज्वर

उदर सम्बन्धी रोग

चर्मरोग और रक्त रोग

पुरुष जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोग

स्त्री रोग

बाल रोग

खांसी

दमा

बवासीर

हैज़ा

वात व्याधियाँ

क्षय या राजयक्ष्मा

नेत्र रोग

कर्ण रोग

विष विकार

दन्त रोग

वनौषधि-चन्द्रोदय

(छठा भाग)

वनौषधि–चन्द्रोदय

(छठा भाग)

प्रवाल

नाम:—

संस्कृत—प्रवाल, अंगारमणि, विद्रुम, अंबोधिपल्लव, भौमरत्न, रत्नांग, लतामणि, रक्तकन्द, रक्ताकार। हिन्दी:—मूंगा, प्रवाल। बंगाल:—पला, मूंगा। मराठी:—पोवड़ें। गुजराती:—परवाला। करनाटकी:—अवलेहवत। फारसी:—मिरजॉन। अंग्रेजी:—Red Coral। लेटिन:—Coralium Rubrum (कोरेलियम रूवरम)।

वर्णन:—

आयुर्वेद के मतानुसार समुद्र में बाल सूर्य की किरणों के समान लाल मूंगे की बेल उत्पन्न होती है। यह बेल कसौटी पर कसने पर भी अपनी कांति और रग को नहीं छोड़ती। पकी कंदोरी के फल के समान लाल, गोल, लम्बे, सरल, स्निग्ध, वृणरहित और स्थूल इन ७ लक्षणों से युक्त मूंगे उत्तम होते हैं। पीतल के समान पीले, टेढ़े, सूक्ष्म, छिद्रयुक्त, रूक्ष, काले, हलके और सफेद रंग के मूंगे त्याज्य हैं।

आधुनिक शोधों के मतानुसार समुद्र में एक जाति के छोटे २ कीडे होते हैं। इन की छोटी २ बहुतसी बाजुएं होती हैं जो पैर की तरह होती हैं। इनका बदन मुलायम और छोटा होता है। ये जानवर तरह तरह की चीजें खाते हैं। इनकी खास खुराक पानी में मिली हुई मिट्टी रहती है उसको ये अलग करके

खाते हैं। वह मिट्टी इनके पेट में जमा होती रहती है। जब यह जानवर मर जाता है तब उसके ऊपर का गोश्त हटकर भीतर से वह मिट्टी का ककर मूंगा के रूप में निकलता है। समुद्र में ये कीडे इतनी अधिक तादाद में होते हैं कि लाखों मन मूगे का माद्दा अपने अंदर से अलाहिदा करते रहते हैं। जिससे समुद्र में मूगे के पहाड़ बन जाते हैं। मूगे का स्वरूप कई प्रकार का होता है। कई तो छोटे २ पौधों की डालियों की तरह होते हैं, कई गोल गोल मोती की तरह और कई टेढ़े मेढे होते हैं। मतलब यह कि इस प्रकार मूगों के बड़े २ टिब्बे समुद्र की तह तक पहुच जाते हैं। यह कीड़ा २०—२२ फिट की गहराई से अपना काम करता है और १२० फीट की गहराई तक पहुच जाता है। नीचे से ऊपर तक दीवार की तरह यह सीधी इमारत बनाता है। आस्ट्रेलिया देश के उत्तर पूर्व में इस तरह की एक बहुत बड़ी दीवार बनी हुई है। उस दीवार की लबाई १२०० मील है और चौड़ाई ½ मील से १ मील तक है। यह दीवार जमीन से ३० से ६० मील तक दूर है। जनूवी नामक टापू में भी इस प्रकार मूगे की दीवार है। इसी प्रकार और भी कई मूगे की दीवारें ईश्वरीय कुदरत की विचित्रता को बतला रही है।

इससे मालूम होता है कि मूगा वानस्पतिक द्रव्य नहीं बल्कि एक प्राणिज द्रव्य है।

गुण दोष और प्रभाव.—(आयुर्वेदिकमत)—आयुर्वेद के मत से मूँगा मधुर, अम्ल, कफनाशक, पित्त को दूर करने वाला वीर्यवर्धक, कांतिजनक, क्षयनाशक, रक्तपित्त को दूर करने वाला, खांसी को नष्ट करने वाला, दीपन, सारक, पाचक, हलका तथा ज्वर, विष, भूतबाधा, उन्माद, पांडुरोग, प्रमेह और नेत्र रोग को दूर करने वाला है।

प्रवाल, सर्व दोष नाशक, दीपक, रुचि कारक, पौष्टिक, और क्षय, पांडु, ज्वर, श्वास, खांसी और मेद रोग को दूर करने वाला होता है।

मूगे की कच्ची बेल कामोत्तेजक और पौष्टिक होती है। इसके निरतर सेवन से वीर्य स्तम्भन होता है।

जिन मनुष्यों को वीर्य बढ़ाने की और शरीर को पुष्ट करने की इच्छा हो उनको शुद्ध प्रवाल का सेवन करना चाहिये।

यूनानीमत—यूनानीमत से मूगा दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क होता है। यह शक्ति वर्धक और काबिज है। शहद के साथ इसको देने से अर्धांङ्ग, लकवा, कपवात और यकृत तथा तिल्ली के रोगों में लाभ पहुचाता है। यह पेशाब साफ लाता है, खून की दस्तों को बन्द करता है। जिस व्यक्ति को मिरगी आती हो वह अगर मूगे की माला पहने तो उसे लाभ होता है। अगर गर्भवती स्त्री इसे अपने पास रखे तो गर्भ हिफाजत से रहता है। बच्चों के गले में लटकाने से या उसको घिसकर पिलाने से बच्चों का नींद में चौंकना और डरना बन्द हो जाता है।

अगर किसी के मुह में छाले हो जाय तो मूगे को गुलाब जल में घोट कर मुह के अन्दर मलने से फौरन आराम होता है।

इब्न जहर हकीम का कहना है कि किसी के दिल में खून जम गया हो तो उसको मूंगा बिखेर देता है। यह गर्भवती के गर्भ की रक्षा करता है। बच्चे को पेट में से गिरने से रोकता है। बच्चे के गले में मूंगा बांध दिया जाय तो वह ऊपरी बाधाओं से सुरक्षित रहता है।

प्रवाल को शुद्ध करने की विधी—प्रवाल को एक पके हुए सिकोरे में रखकर आग पर तपाना चाहिये। जब खूब तप जाय तब घी गुवार के रस में बुझाना चाहिये। इस प्रकार ७ बार तपा २ कर बुझाने से मूगा शुद्ध होजाता है। अगर विशेष शुद्धि करना हो तो इसी प्रकार ७ बार तपा कर चौलाई के रस में बुझालेना चाहिये। तपाने के पश्चात प्रवाल का रंग बदलकर मैला या मटमैला हो जाता है।

मूगा भस्म करने की विधि—शुद्ध मूगा ८ तोले, शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध आंवला सार गंधक १ तोला। पहले गधक और पारे को खरल में डालकर कजली कर लेना चाहिये। जब कजली होजाय तब उस कजली में शुद्ध मूगा को मिलाकर घी गुवार का रस डालते हुए घोटना चाहिये। ज्यों २ रस सूखता जाय त्यों २ नया रस डालते रहना चाहिये। इस प्रकार पूरे १२ घंटे की घुटाई होने के पश्चात उसका गोला व टिकिया बनाकर सुखा लेना चाहिये। फिर उस टिकिया को सराव सम्पुट में रखकर कपड़ मिट्टी करके सुखा लेना चाहिये और उस सराव सम्पुट को १ गजपुट की आग में फूंक लेना चाहिये। स्वांगशीतल होने पर उसको खोलकर सुन्दर सफेद गुलाबी रंग माइल मूगा भस्म को निकाल लेना चाहिये।

मूंगा भस्म की दूसरी विधि—शुद्ध प्रवाल को लेकर बिछिया बूटी के रस में खरल करके सराव-सम्पुट में रखकर गजपुट में फूंक देना चाहिये। इस प्रकार ३ बार गजपुट में फूकने से मूगा भस्म बन जाती है।

मूंगा भस्म की तीसरी विधि—शुद्ध प्रवाल ५ तोले लेकर १ सरावले में नीचे घी गुवार का गूदा रखकर उस पर उस प्रवाल को रख देना चाहिये। फिर उस प्रवाल पर आध पाव घी गुवार का गूदा रख कर ऊपर से दूसरा सरावला ढककर दोनों की दरजों पर कपड़ मिट्टी करके सुखा लेना चाहिये। उसके पश्चात् एक गजपुट की आग में उस सराव सम्पुट को रखकर फूक देना चाहिये। प्रवालभस्म तैयार हो जायगी।

कुक्कुर खाँसी नाशक प्रवाल भस्म—

कुक्कुर खाँसी नाशक प्रवाल भस्म—५ तोला प्रवाल लेकर उसे कसौंदी के पत्तों के रस में खरल करना चाहिये। ज्यों २ रस सूखता जाय त्यों त्यों नया रस डालते जाना चाहिये। जब ४० तोला रस सूख जाय तब उसकी टिकड़ी बनाकर सरावसम्पुट में रखकर गजपुट की अग्नि में फूंक देना चाहिये। जिससे उत्तम सफेद रंग की भस्म तैयार होगी। इस भस्म को दो चावल से १ रत्ती तक की मात्रा में शहद के साथ बच्चों को देने से बच्चो की दुष्ट कुक्कुर खासी में बहुत लाभ होता है।

प्रवाल पिष्टी—उत्तम शुद्ध प्रवाल को लेकर २४ घण्टे तक गुलाब जल में घोटने से प्रवालपिष्टी तैयार होती है।

प्रवाल भस्म के अन्दर केलशियम का तत्व बहुत काफी मात्रा में पाया जाता है। अतः जिन जिन रोगों में केलशियम या केलशियम के इंजेक्शन देने की जरूरत हो उनमें प्रवाल भस्म देने से काफी लाभ होता है।

उपयोग —

खूनी बवासीर—३ माशे घिसे हुए लाल चन्दन में एक या दो रत्ती प्रवाल भस्म मिलाकर चटाने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

मूत्रातिसार—६ माशे काले तिलों के साथ प्रवाल भस्म का सेवन करने से मूत्रातिसार मिटता है।

जीर्ण ज्वर—शहद और पीपल के साथ प्रवाल भस्म को चटाने से जीर्ण ज्वर मिटता है।

मूत्र की रुकावट—१ रत्ती मूगा को पानी में घिसकर पिलाने से मूत्र की रुकावट मिटती है।

क्षय—पके हुए केले के साथ प्रवालभस्म का सेवन करने से क्षय रोग में लाभ होता है।

पित्त का प्रकोप—दूध और मिश्री के साथ इसको लेने से पित्त का प्रकोप मिटता है।

खाँसी—प्रवाल भस्म को पान में रखकर खाने से खांसी मिटती है।

दंत रोग—प्रवाल का चूर्ण मंजन करने से दांत निर्मल और दृढ होते हैं।

मूत्र कृच्छ्र—त्रिफला और मधु के साथ प्रवाल भस्म को चाटने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

वीर्य का पतलापन—घी और मिश्री के साथ प्रवाल भस्म को लेने से धातु पुष्ट होती है।

रक्तप्रदर—धारोष्ण दूध के साथ इसको लेने से रक्त प्रदर मिटता है।

सूखी खाँसी—अदरक के रस में मिश्री और प्रवाल भस्म मिलाकर चटाने से सूखी खांसी मिटती है।

रतौंधी—तुलसी के रस में चूहे की मेंगनी और प्रवाल भस्म को मिलाकर अंजन करने से रतौंधी मिटती है।

घाव से रुधिर का बहना—प्रवाल को महीन पीसकर घाव पर भुरभुराने से घाव से रुधिर बहना बन्द हो जाता है।

मात्रा —

प्रवालभस्म की मात्रा १ रत्ती से ४ रत्ती तक है।

प्रतिनिधि —

मोती की सीप की भस्म और मोती भस्म।

पन्ना

नामः—

संस्कृत—मरकत, अश्मगर्भ, हरिनमणी, राजनील, गारुड़, इत्यादि। हिन्दी—पन्ना। बंगाल—पान्ना। मराठी—पाचुरत्न। गुजराती—लीलूंपानू। तेलगू—नीलम। अरबी—जमर्रुद। फारसी—जुमुरइय। अंग्रेजी—Emerald। लेटिन Smaragdus (स्मेरेग्डस)।

वर्णन—

पन्ना नौ रत्नों में से एक रत्न है। यह खदानों में से पाया जाता है। भारत वर्ष में भी इसकी गोलकुन्डा में खदाने हैं। हरे रंग वाला, भारी, स्निग्ध, कांतिवान, तेजस्वी, दीप्तियुक्त पन्ना उत्तम होता है। कपिल वर्ण, खरखरा, रूखा, मलिन, हलका, काला, चपटा, विकृत और कांतिहीन पन्ना अधम होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से पन्ना शीतल, रुचिकारक, मधुर, पौष्टिक, विषनाशक, वीर्यवर्धक तथा भूत बाधा और अम्लपित्त को दूर करने वाला होता है।

पन्ना, ज्वर, वमन, विष, श्वास, संताप, मंदाग्नि, बवासीर, पाण्डु रोग और सूजन को दूर करता है। तथा ओज को बढ़ाता है।

पन्ने को शुद्ध करने की विधि— पन्ने को पोटली में बांध कर तेल, मट्ठा, गौमूत्र, काँजी, कुलथी का काढ़ा और कोदों के अन्न का काढा, इन ६ चीजों में दौला यन्त्र से दो प्रहर तक स्वेदन करने से पन्ना शुद्ध होजाता है।

पन्ने का शोधन और मारण—पन्ने को गरम करके १०० वार घीगुवार के रस मे बुझाना चाहिये। फिर शुद्ध किया हुआ मेनसिल, तबकिया हरताल, हिंगुलोत्थ पारद, शुद्ध गंधक, शुद्ध चोकिया सुहागा, इन पाँच चीजों को समभाग लेकर कज्जली करलें और उसमें चौथाई शुद्ध पन्ने का चूर्ण रखकर आतशी शीशी में भरकर सिंदूर रस की तरह मन्द, मध्यम और तीव्र अग्नि के द्वारा पकावें तो पन्ने की भस्म हो जाती है।

—०:+:०—

पद्मगुलंच

नाम—

हिन्दी—पदम गुलच, गिलोय, गुलच। बंगाल—पदम गुलच। मराठी—गुडवेल। अलमोड़ा—गुर्च। तामील—पोटचिंदिल। लेटिन—Tinospora malabarica (टिनोस्पोरा मलेबारिका)

वर्णन—

यह गिलोय की एक उपजाति होती है, जो कि बंगाल, आसाम, उड़ीसा, कोकण, कनाड़ा, मद्रास

प्रेसीडेन्सी और सीलोन में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस पौधे का पञ्चांग एक कटु पौष्टिक पदार्थ माना जाता है। चीन में इसके ताजा पत्ते प्राचीन सन्धिवात और गठिया के इलाज में काम में लिये जाते हैं।

कम्बोडिया में इसके पौधे का बफारा बवासीर को दूर करने के लिये दिया जाता है। यकृत की बीमारियों में भी यह उपयोगी माना जाता है।

——×——

पहाड़ी पीपल

नाम—

बंगाल—पहाड़ी पीपल। लेटिन—Piper sylvaticum (पायपर सिलवेटिकम)।

वर्णन—

यह पीपर की एक जंगली जाति होती है। यह अपर और लोअर आसाम तथा बंगाल और बरमा में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

बंगाल में इसका फल शान्ति दायक वस्तु की तरह उपयोग में लिया जाता है।

——×——

पहाड़ी पोदीना

नाम —

हिन्दी—पहाड़ी पोदीना, पोदीना। बंगाल—पुदीना। बम्बई—पुदीना, पहाड़ी पुदिना। सीमाप्रान्त—पहाड़ी पोदीना। पंजाब—पहाड़ी पोदीना। अंग्रेजी—Garden Mint लेटिन—Mentha Viridis (मेंथा व्हिरिडिस)।

वर्णन -

यह पोदीने की एक जंगली जाति होती है। मगर आज कल हिन्दुस्तान के बगीचों में लगाई जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते ज्वर और ब्रोंकाइटीज में दिये जाते हैं। इसके पत्तों का काढ़ा मुँह के छालों को दूर करने के लिये काम में लिया जाता है।

यूरोप में यह वनस्पति उत्तेजक, शांतिदायक और आक्षेप निवारक मानी जाती है। यह अपने शांतिदायक तत्वों और आनन्द दायक स्वाद की वजह से बहुत से नुस्खों में मिलाई जाती है। इसका अर्क हिचकी, बादी का उदर शूल और बदहजमी की वजह से होने वाले सिर दर्द में लाभदायक माना जाता है।

इसमें पाया जाने वाला उडन शील तेल पीपरमेन्ट के तेल की तरह ही उपयोग में लिया जाता है। मगर यह उससे बहुत कम प्रभावशाली होता है।

——:※:——

पहाड़ी सीसम

नाम—

संस्कृत—तोया पिप्पली। हिन्दी—पहाड़ी सीसम, विलायती सीसम। बम्बई—पीपलयक। देहरादून—तार चरबी। सहारनपुर—पहाड़ी सीसम। उड़िया—रोनोजिता। लेटिन—Sapium Sebiferum (सेपियम सेबिफेरम)।

वर्णन—

यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है। इसके सभी हिस्से चिकने और चमकीले होते हैं। इसके पत्ते चौड़े और विषम आकृति के होते है। इसके फूल छोटे और पीले रङ्ग के होते हैं। यह सीसम की जाति का ही एक वृक्ष होता है। इसका मूल उत्पत्ति स्थान चीन और जापान है। भारतवर्ष में भी यह पैदा किया जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका चरपरा रस प्रभावशाली चर्मदाहक और फफोला उठाने वाली वस्तु है।

——:०:——

पलूवट

नाम—

हिन्दी—पलूवट, पलावट। मलयालम—इन्ता, चिट्टिटन्न। तामील—इन्दु, इन्जु, कलंगु, कुरिंजी, सागी, सिरुविंजु। कनाडी—हुलिचला, इचालु। सीलोन—इन्जु। लेटिन—Phoenix Pusilla (फोनिक्स पुसिला)।

वर्णन—

यह एक छोटी किस्म की झाड़ी होती है जो सीलोन के उत्तरी भाग में और कोरो मण्डल के किनारों पर पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका ताजा रस ठंडा और मृदु विरेचक माना जाता है। इसका गोंद प्रवाहिका, अतिसार और

पेशाब तथा धातु सम्बन्धी बीमारियों में उपयोगी माना जाता है।

——×——

परजंब

नाम—

बम्बई—परजव। बगाल—अट्टजम। कनाड़ी—बारानुके, बिलिसरेली, एदाला, इक्कसरेली, मुडला, परुजवू। मध्य प्रान्त—कुलुम्ब। मराठी—करांबु। नेपाल—कलाकीमोनी। तामील—इदलाइ। लेटिन—Olea Dioica (ओलिया डिओइका)।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इस की छाल भूरी और मुलायम होती है तथा इसके पत्ते ७.५ से लेकर १२.५ सेंटिमीटर तक लम्बे और ३.२ से ५ सेंटिमीटर तक चौडे होते हैं। यह वनस्पति आसाम और बगाल तथा मध्य प्रांत में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

मध्य प्रान्त में इसकी छाल ज्वर नाशक औषधि की तरह काम में ली जाती है।

——:०:——

परतंगा

नाम—

कनाडी—परतगा। बगाल—वोकान। तेलगू—गब्बी। इङ्गलिश—Campeachy Tree, Logwood। लेटिन—Haematoxylon Campechianum (हेमेटोक्सिलोन कम्पेचिनम)।

वर्णन—

यह एक मध्यम आकार का वृक्ष होता है, इसका मूल उत्पत्ति स्थान अमेरिका है। मगर आज कल हिन्दुस्तान में भी कहीं २ पैदा होने लगा है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति की लकड़ी का काढा और इसका एकस्ट्रैक्ट [सत्व] हलका संकोचक और पौष्टिक होता है और प्राचीन प्रवाहिका रोग में उपयोग में लिया जाता है। बदहजमी और बच्चों की प्रवाहिका में भी यह बहुत उपयोगी होता है। इसके सत्व या इसके काढे का इन्जेक्शन श्वेतप्रदर के अन्दर एक बहुत उपयोगी वस्तु माना जाता है।

इसकी लकड़ी का मलहम कॅंसर और देहकी सड़न के लिये उपयोगी माना जाता है।

——:०:——

पशाई

नाम—

हिन्दूबाग—पशाई, सखराई। नुश्की—पिलगोष। लेटिन—Crambe Cordfolia. (क्रेंब-कोर्डिफोलिया)।

वर्णन—

यह काश्मीर, बलूचिस्तान और अफगानिस्तान में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

हक्स बूलर के मतानुसार हिन्दूबाग में यह पौधा खुजली को दूर करने के काम में लिया जाता है।

——::०::——

पटुआ साग

वर्णन —

संस्कृत—रक्ताम्बष्ठा। हिन्दी—पटुआ, लालअम्बाड़ी। बंगाल—लालमिस्टा, मेस्ता, पटुवा। बम्बई—लालअम्बाड़ी, पटुवा। तामील—सिमाई कस्तुल। तेलगू—इट्टगोंगुरा। अंग्रेजी—Indian Sorrel लेटिन—Hibisces Sabdariffa (हिबिस्कस सबडरीफा)।

वर्णन और गुण—

यह सन और अम्बाड़ी की जाति की एक वनस्पति होती है। इसके पत्ते ५ से लेकर ७-५ सेंटि-मीटर तक लंबे होते हैं। इसका पुष्प पात्र लालरंग का, जाडा, और मांसल होता है। इसकी रुचि कुछ खट्टी होती है। औषधि में इसके पुष्प पात्र और पत्ते काम में आते हैं। इसकी रसदार कलियों से एक वस्तु तैयार की जाती है। जिसको बम्बई के बाजार में रोज़लजेली बोलते हैं और जब यह सूख जाती है तब इससे इमली की तरह कढी बनाते हैं। पित्त के प्रकोप में इसके पुष्प पात्र काढा, थोडा सेंधा नमक, काली मिरच और हींग डाल कर देते हैं। इस औषधि में अम्लता और स्नेहन दो धर्म उत्तम रूप से पाये जाते हैं। इसके पत्ते स्नेहन, पुष्प पात्र हृदय को बल देने वाले, कुछ संग्राहक और पित्तनाशक होते हैं। इसके फलों में रक्तातिसार नाशक तत्व रहते हैं।

गायनामें इसके पत्तों का मूत्रल, शांतिदायक और तृषा नाशक पदार्थ की तरह बहुत उपयोग होता है।

पेशाब तथा धातु सम्बन्धी बीमारियों में उपयोगी माना जाता है।

—×—

परजंब

नाम—

बम्बई—परजव। बंगाल—अट्टजम। कनाड़ी—बारानुके, विलिसरेली, एदाला, इक्कसरेली, मुडला, परुजवू। मध्य प्रान्त—कुलुम्ब। मराठी—करांबु। नेपाल—कलाकीमोनी। तामील—इदलाइ। लेटिन—Olea Dioica (ओलिया डिग्रोइका)।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इस की छाल भूरी और मुलायम होती है तथा इसके पत्ते ७.५ से लेकर १२.५ सेंटिमीटर तक लम्बे और ३.२ से ५ सेंटिमीटर तक चौड़े होते हैं। यह वनस्पति आसाम और बंगाल तथा मध्य प्रांत में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

मध्य प्रान्त में इसकी छाल ज्वर नाशक औषधि की तरह काम में ली जाती है।

—:०:—

परतंगा

नाम—

कनाड़ी—परतगा। बंगाल—बोकान। तेलगू—गव्वी। इङ्गलिश—Campeachy Tree, Logwood। लेटिन—Haematoxylon Campechianum (हेमेटोक्सिलोन कम्पेचिनम)।

वर्णन—

यह एक मध्यम आकार का वृक्ष होता है, इसका मूल उत्पत्ति स्थान अमेरिका है। मगर आज कल हिन्दुस्तान में भी कहीं २ पैदा होने लगा है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति की लकड़ी का काढ़ा और इसका एकस्ट्रैक्ट [सत्व] हलका संकोचक और पौष्टिक होता है और प्राचीन प्रवाहिका रोग में उपयोग में लिया जाता है। बदहजमी और बच्चों की प्रवाहिका में भी यह बहुत उपयोगी होता है। इसके सत्व या इसके काढ़े का इन्जेक्शन श्वेतप्रदर के अन्दर एक बहुत उपयोगी वस्तु माना जाता है।

इसकी लकड़ी का मलहम कैंसर और देहकी सड़न के लिये उपयोगी माना जाता है।

—:०:—

पशाई

नाम—

हिन्दूबाग—पशाई, सखराई। तुरकी—पिलगोप। लेटिन—Crambe Cordfolia. (क्रेंब-कोर्डिफोलिया)।

वर्णन—

यह काश्मीर, बलूचिस्तान और अफगानिस्तान में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

हक्स यूलर के मतानुसार हिन्दूबाग में यह पौधा खुजली को दूर करने के काम में लिया जाता है।

——::o::——

पटुआ साग

वर्णन —

संस्कृत—रक्ताम्बष्ठा। हिन्दी—पटुआ, लालअम्बाड़ी। बंगाल—लालमिस्टा, मेस्ता, पटुवा। बम्बई—लालअम्बाड़ी, पटुवा। तामील—सिमाई कस्तुल। तेलगू—इट्टगोंगुरा। अंग्रेजी—Indian Sorrel लेटिन—Hibisces Sabdariffa (हिबिस्कस सबडरीफा)।

वर्णन और गुण—

यह सन और अम्बाड़ी की जाति की एक वनस्पति होती है। इसके पत्ते ५ से लेकर ७-५ सेंटि-मीटर तक लंबे होते हैं। इसका पुष्प पात्र लालरंग का, जाडा, और मांसल होता है। इसकी रुचि कुछ खट्टी होती है। औषधि में इसके पुष्प पात्र और पत्ते काम में आते हैं। इसकी रसदार कलियों से एक वस्तु तैयार की जाती है। जिसको बम्बई के बाजार में रोज़लजेली बोलते हैं और जब यह सूख जाती है तब इससे इमली की तरह कढी बनाते हैं। पित्त के प्रकोप में इसके पुष्प पात्र काढा, थोडा सेंधा नमक, काली मिरच और हींग डाल कर देते हैं। इस औषधि में अम्लता और स्नेहन दो धर्म उत्तम रूप से पाये जाते हैं। इसके पत्ते स्नेहन, पुष्प पात्र हृदय को बल देने वाले, कुछ संग्राहक और पित्तनाशक होते हैं। इसके फलो में रक्तातिसार नाशक तत्व रहते हैं।

गायनामें इसके पत्तों का मूत्रल, शांतिदायक और तृषा नाशक पदार्थ की तरह बहुत उपयोग होता है।

——X——

पत्थर का कोयला

नाम—

हिन्दी—पत्थर का कोयला।

वर्णन—

खदानों से निकलने वाले कोयले को जो कि रेलों में जलाया जाता है पत्थर का कोयला कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क होता है। इसमें सूजन को बिखेरने की और उसको मुलायम करने की बहुत अधिक शक्ति रहती है। गहरे जखम में इसको भरदेने से जखम भर जाता है। हिस्टीरिया की वजह से आई हुई बेहोशी में इसको सुघाने से आराम होता है। इसकी धूनी से चूहे भाग जाते हैं। इसको खाने से गर्म का रहना और मासिक धर्म का आना दोनों बंद होजाते हैं।

इसका धुआँ मस्तिष्क को बहुत नुकसान पहुँचाता है। मृगी के रोगी को इसका धुआँ सूंघते ही मृगी का दौरा आजाता है।

मुजिर—इसका सेवन फेफड़े को नुकसान पहुचाता है।

दर्पनाशक—केशर।

मात्रा—१ माशा। [ख० अ०]

——×——

पचार

नाम—

हिन्दी, यूनानी—पचार।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति का पौधा होता है। इसकी ऊंचाई डेढ़ हाथ के करीब होती है। यह तालाव, झील और नहर के किनारे होता है। इसके पत्ते कनेर के पत्तों के समान होते हैं इन पत्तों पर थोड़ी सी चेपदार चीज लगी हुई रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी सूखी हुई डालियों को नीले डोरे में लपेट कर हाथ पर बांधने से भूत बाधा दूर होती है। बच्चों की आंखों में रोयें पड़ जांय तो इसके पत्तों को कुचलकर आंखों पर बांधने से फायदा होता है।

(ख० अ०)

पद्म चारिणी

नाम:—

हिन्दी—पद्मचारिणि ।

वर्णन—

यह एक वनस्पति होती है जो तालाव और हौज मे पैदा होती है । इसकी ऊंचाई १ बालिश्त से ज्यादा ऊंची नहीं होती है । इसके पत्ते एक जगह जमा होकर खडे होते हैं । इसके फूल और पत्ते नीलोफरके फूल और पत्तो के समान होते हैं । दक्षिण के लोग नीबू और इमली के साथ इसकी तरकारी बना कर खाते हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति सर्द होती है । यह ववासीर और मुंह की खुश्की को दूर करती है । पेट के कृमियों को भी यह मारती है । इसका लेप करने से स्त्रियों के कुच कठोर होते हैं ।

मुजिर—हलक, आमाशय की नाली और जबान को यह नुकसान पहुचाती है ।

दर्पनाशक—इमली ।

—×—

परकी

नाम—

हिन्दी—परकी ।

वर्णन—

यह एक कांटेदार झाड़ होता है । जो वेरके समान होता है । इसके पत्ते बेर से कुछ लम्बे और विना कंगूरे के होते हैं । इसका फल मकोय की तरह होता है । इसका कच्चा फल कुछ खट्टा और पकने पर काला और मीठा हो जाता है । कहीं २ इसको काली मकोय भी वोलते हैं । फल के अन्दर का बीज छोटा और चपटा होता है । इसकी मगज तूअर के दाल के बराबर होती है ।

गुण दोष और प्रभाव —

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क होता है । कफ पैदा करता है, कब्ज को दूर करता है और पेशाब को साफ करता है ।

[ख० अ०]

——:०:——

परंग

नाम—

हिन्दी, यूनानी—परंग

वर्णन व गुण दोष—

यह एक बेल होती है इसके पत्ते नागरवेल की तरह होते हैं । यह तीसरे दर्जे में सर्द और तर

होते हैं। ये वायु पैदा करते हैं। सीने की जलन, पित्त का बुखार और खून के उपद्रव को भी ठीक करते हैं।

———:o:———

पत्ता सन्तूर

नाम—

हिन्दी, यूनानी—पत्तासन्तूर

वर्णन—

यह इद्र जौ की तरह एक वृक्ष होता है इसके ऊपर दो छाल होती है। एक सबसे ऊपर की जो मोटी होती है और दूसरी उसके अन्दर की जिसका रंग बदली होता है। इसकी लकड़ी काली, मजबूत भारी, और आवनूस की लकड़ी की तरह होती है। इसमें तेल भी होता है। यह वृक्ष सबसे पहिले अमेरिका में पाया गया था।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इस वृक्ष का हर एक अङ्ग पसीना लाने वाला होता है। यह वायु, पित्त और कफ के दोषों को दूर करता है, जहरों के दर्प को नष्ट करने की ताकत रखता है। मिरगी और विस्मृति के लिये मुफीद है। आंखों में उतरने वाले नजले के पानी को बन्द करता है। दमे में मुफीद है। मुह की बदबू को दूर करता है। आमाशय और आंतों को ताकत देता है। यकृत और तिल्ली के सुद्दों को खोलता है। गठिया, गले की सूजन, कारबकल, सूखी और गीली खुजली और उपदंश में मुफीद है। कफ के रोगों को दूर करता है। कमजोरी, वमन और मतली में लाभ पहुंचाता है। प्राण वायु को ताकत देता है। प्रकृति में समानता पैदा करता है। कपवात और अर्धाङ्ग में मुफीद है। [ख० अ०]

———:o:———

पताकाल

नाम—

यूनानी—पताकाल।

वर्णन—

यह एक बहुत छोटी और नाजुक वनस्पति होती है। इसके पत्ते चिड़िया के पजे की तरह होते हैं। इसीलिये इसको पताकाल कहते हैं क्योंकि पताकाल उर्दू में चिड़िया के पजे को कहते हैं कुछ लोगों ने इसको हड़जोड़ी बतलाया है। मगर हड़जोड़ी की और इसकी शकल में बहुत भेद है। हिन्दी में कहीं २ इसको चटका या चटक भी कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। शीघ्र पतन की बीमारी में

यह लाभदायक है। अनुभवी स्त्रियों का कहना हैं कि गर्भवती को प्रसव वेदना के समय इस वनस्पति को चटाने से बच्चा आसानी से पैदा हो जाता है। बच्चों की बीमारी के लिये भी यह मुफीद है।

[ख० अ०]

——:०:——

पत्री

नाम—

हिन्दी, यूनानी—पत्री।

वर्णन—

यह एक जंगली वनस्पति होती है। जो गीली जगह में खेतों के पास पैदा होती है। इसकी डालिया जमीन पर बिछी हुई रहती हैं। पत्ते कासनी के पत्तों की तरह होते हैं मगर उन से कुछ मोटे, चिकने और हरे होते हैं इनके बीच में पतली सी सीधी डाली निकलती है। उस डाली पर पीले रङ्ग के फूल गोल २ अशर्फी के समान लगते हैं। इसके पत्ते और डाली को तोड़ने से दूध निकलता है। इसके पत्तों की शाक भी बनाते हैं। इसके पत्तों का स्वाद मूली के पत्तों की तरह होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति गुर्दे और मसाने की पथरी को तोड़ती है। गर्मी के बुखार और पीलिया में लाभ पहुंचाती है, दस्त को रोकती है। पागलपन और आमाशय की गरम सूजन में लाभदायक है।

मुज़िर—इसका अधिक सेवन हाज़में को बिगाड़ता है।

[ख० अ०]

——:०:——

पनाबान

नाम—

यूनानी—पना बान।

वर्णन—

इसका पौधा गजभर लम्बा और पत्ते गुल अब्बासी की तरह होते हैं। इसका फूल हलके लाल रंग का और कोई २ नीला भी होता है। इसका बीज जौ के दाने के समान होता है।

गुणदोष और प्रभाव—

इसके बीज अत्यन्त काम शक्ति वर्धक होते हैं।

पंज कश्त

नाम—

यूनानी—पंजकश्त ।

वर्णन—

यह निर्गुंडी की जाति की एक वनस्पति होती है। इसका बीज गोल और काला होता है। इसके पत्ते अनार के पत्तों की तरह होते हैं। फूल सफेद और सुर्खी लिये हुए होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क होती है। इसके पत्तों में बीजों से कुछ कम गरमी होती है।

इसके पत्तों का लेप करने से शरीर की थकावट दूर होती है और सख्त सूजन बिखर जाती है। इसके पत्तों के रस में सिरका और जैतून का तेल मिला कर धार लगाने से सिर दर्द और कफ का सन्निपात आराम होता है। इसके पत्तों का सत्व हमेशा आंखों में लगाने से दृष्टि तेज होती है। इसके पत्तों के काढे से कुल्ले करने से गले का दर्द आराम होता है और मुँह का जख्म फैलने नहीं पाता। इसके पत्तों का सत फेंफड़े और यकृत के रोगों के लिये मुफीद है और इससे पीलिया में भी लाभ होता है। इसके फल को ७ माशे की मात्रा में शिकंजबीन के साथ पीने से तिल्ली की सूजन दूर होती है। जलोदर में भी यह मुफीद है। इसके फल को ३ माशे की मात्रा में जंगली पोदीने के साथ समान भाग पीस कर देने से बवासीर में लाभ होता है। इसके पत्तों को काली मिरच और शहद के पानी के साथ देने से तिजारी, चौथिया और दूसरी तरह के पार्यायिक ज्वरों में लाभ होता है ऐसा विश्वास किया जाता है। अण्डकोष में पानी उतर आने पर इसके पत्तों का लेप करने से लाभ होता है।

मुजिर—इसका अधिक मात्रामें उपयोग करने से सिर दर्द पैदा होता है। कामशक्ति कमजोर होती है और गुर्दे को नुकसान पहुंचता है। इसका दर्पनाशक बबूल का गोंद है। इसके बिना पंजकश्त को स्वतन्त्र रूप से उपयोग में नहीं लेना चाहिये। [ख०अ०]

—.०.—

पनसुखा

नाम—

यूनानी—पन सुखा।

वर्णन

यह वनस्पति आसाम, पूर्वी बंगाल, मलाबार और सीलोन में पैदा होती है। इसके फलों को बच्चे बहुत खाते हैं।

गुणदोष और प्रभाव —

यह सर्द और खुश्क होती है। इसके पत्ते को मक्खन निकाले हुए दूध में पीस कर लेप करने से दर्द दूर होता है। इसके फल को लेने से बहुत दस्त आते हैं। ज्वर के अन्दर भी इसका उपयोग होता है। शरीर में बड़े २ फोड़े और खुजली हो जाय तो इसके काढ़े से स्नान करने से लाभ होता है। इसके पत्तों का ताजा रस पिलाने से जहरीले जानवरों का जहर दूर होता है। [ख० अ०]

——:+:——

पनोमान

नाम—

यूनानी—पनोमान।

वर्णन—

यह एक बड़ा कांटेदार झाड़ होता है। इसके पत्ते मेंडक की तरह होते हैं। इसका फूल सफेद लंबा और गोल तथा तोते की चोंच की तरह होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क होती है। इसके प्रयोग से घुटने और कमर का दर्द मिट जाता है। इसका फल पित्त पैदा करता है। [ख० अ०]

——:×:——

पर पर टिमूर

नाम—

नेपाल—पर पर टिमूर। लेटिन—Zanthoxylum Hamiltonianum (झेंथोक्झिलम हेमिल्टोनिएनम)।

वर्णन—

यह तिंदू के वर्ग की वनस्पति है। इसकी झाड़ी हमेशा हरी रहती है। इसके पत्ते १५ से २० सेंटीमीटर तक लंबे, चिकने और चमकीले होते हैं। इसके फूल छोटे होते हैं। यह आसाम और बरमा में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका फल अपने उत्तेजक और सुगंधित तत्वों के कारण उपयोग में लिया जाता है। इसके दूसरे गुणधर्म टीमरू के समान ही होते हैं।

——:०:——

पतकारू

नाम —

हिंदी—पतकारू। गढ़वाल—कड़ुइ, तितपाती। कुमाऊ—कौड़ी, कितपाती। पजाब—कौर, कौरी। लेटिन—Roylea Elegans (रॉयलिया इलेगंस)।

वर्णन—

यह एक प्रकार की झाड़ी होती है जो काश्मीर से कुमाऊँ तक पश्चिमी हिमालय में दो हजार फीट से पाच हजार फीट की ऊंचाई तक होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों का शीतनिर्यास शस्त्र के जखम में पीने को दिया जाता है। कुमाऊँ के अन्दर यह कटु पौष्टिक और ज्वर नाशक मानी जाती है।

——०×०——

पतुसवा

नाम—

नेपाल—पतुसवा थोटन, टोटनी, डुकनू। लेटिन—Polygonum molle (पोलिगोनम मोले)।

वर्णन—

यह एक झाडी होती है। इसके फूल सफेद रंग के आते हैं। यह पूर्वी और मध्य हिमालय में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति एक संकोचक द्रव्य के रूप में उपयोग में ली जाती है।

——:+:——

पयमुश्टी

नाम—

मद्रास—पयमुश्टी। लेटिन—Argyreria Malabarica (आरगेरिया मलेबारिका)।

वर्णन

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते बालतोड़, बिस्फोटक इत्यादि फोड़ों को पकाने के लिये काम में लिये जाते हैं। इसकी जड़ विरेचक मानी जाती है।

——०+०——

पजमुन्नी पला

नाम—

संस्कृत—राजादाना। मद्रास—पजमुन्नीपाला। कनाड़ी—अंदाखर्प। लेटिन—Alstonia Venenatus (अलस्टोनिया व्हेनेनेटस)।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति का झाड़ीनुमा वृक्ष होता है। इसके पत्ते १० से लेकर २० सेंटीमीटर तक लंबे और २ से लेकर ४ सेंटीमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं। यह वनस्पति दक्षिणी भारत में पश्चिमी घाट पर पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका पका हुआ फल पौष्टिक होता है। उपदंश, उन्माद और मृगी रोग में इसका उपयोग होता है।

परजंब

नाम—

बंबई—परजंब। बंगाल—अट्टजंब। मध्यप्रान्त—कुलुंब। कनाडी—मुद्दला, पारुजंबू। नेपाल—काल किया मौनी। मराठी—करांबु। तामील—इदलाई। लेटिन—Olea Dioica (ओलीआ डिओइका)

वर्णन—

यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसकी छाल चिकनी, भूरी और मुलायम होती है। इसके पत्ते ७·५ से १२·५ सेंटीमीटर तक लंबे और ३·२ से ५ सेंटीमीटर तक चौडे होते हैं। यह वृक्ष आसाम और बंगाल की नीची पहाडियों पर पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

मध्यप्रांत में इसकी छाल ज्वर नाशक औषधि की तरह काम में ली जाती है।

—:+:—

पेरटंगा

नाम—

कनाड़ी—परटगा। बंगाल—बोकन। तेलगू—गाबी। अँग्रेजी—Campeachy Tree। लेटिन—Haematoxylon Campechianum (हेमेटोक्सिलोन कंपेचिनम)।

वर्णन—

इस वृक्ष का मूल उत्पत्तिस्थान अमेरिका है मगर आजकल यह भारतवर्ष में भी पैदा होने लगा है। यह मध्यम कद का वृक्ष होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी बीच की लकड़ी का काढ़ा या एक्स्ट्रैक्ट हलका, सकोचक और पौष्टिक होता है। यह प्राचीन प्रवाहिका या अतिसार में तथा मदाग्नि और अजीर्ण में और बच्चों को लगने वाली दस्तों में उपयोगी समझा जाता है। इसके काढ़े या अर्क का इजेक्शन श्वेत प्रदर के अन्दर बहुत लाभ दायक सिद्ध हुआ है।

इसकी लकड़ी से तैयार किया हुआ लेप कॅसर और सडे हुए मांस को अच्छा करने के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ है।

बोयना में इसकी छाल और लकडी प्राचीन प्रवाहिका में सकोचक द्रव्य की तरह उपयोग में ली जाती है।

पहाड़ी गंदना

नाम—

हिन्दी—पहाड़ी गदना। यूनानी—फेरासियम। लेटिन—Marrubium Vulgare. (मेरुवियम व्हलगो)।

वर्णन -

यह एक वर्ष जीवी वनस्पति होती है। इस का पौधा २॥ से लेकर ४ फीट तक ऊँचा होता है। कभी २ इस से भी ऊँचा होजाता है। इसका पिंड सफेद और रुएँदार होता है इसमें बहुतसी सीधी शाखाएँ निकली रहती हैं। इसके पत्ते मुलायम, तीखी नोक वाले, उपर से कुछ भूरे और नीचे से कुछ सफेद होते हैं। यह वनस्पति काश्मीर में ५ हजार फीट से ८ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है,

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानीमत—इसका पौधा कडवा, पौष्टिक, मूत्रल, शांतिदायक, कफनिस्सारक, विरेचक और ज्वरनाशक होता है। यह जोड़ों के दर्द, ब्रोंकाइटीज तथा यकृत, तिल्ली और गर्भाशयकी बीमारियों में उपयोगी होता है। यह गदे व्रण को साफ करता है और व्याधिग्रस्त श्लेष्मिक झिल्लियों को दुरुस्त करता है। इसके पत्ते विरेचक, फोडे को पकाने वाले, सूजन में लाभदायक और आखों के व्रण और रतौंधी को दूर करने वाले और दांतों को मजबूत करने वाले होते हैं। यह गर्भस्थ सतान को आसानी से निकाल देता है।

यह वनस्पति कटुपौष्टिक और मूत्रल होती है। इंग्लैंड में यह वनस्पति छाती के रोगों को दूर करने के लिये बहुत लोक प्रिय है। यह खासी, सर्दी, और फुफ्फस सबन्धी छाती के दर्द में बहुत ही लाभदायक समझी जाती है।

यूरोप में इसका शीत निर्यास ब्रोंकाइटीज में एक घरेलू औषधि की तरह बहुत उपयोग में लिया जाता है। यह पौष्टिक है और अधिक मात्रा में विरेचक होता है। साऊथ अफ्रीका में रहने वाले यूरोपियन लोग इसके शीत निर्यास को ज्वर और टायफाइड ज्वर में बहुत उपयोग में लेते हैं।

मेक्सिको में इसके पत्तों से तैयार की हुई औषधि सधिवात के अन्दर उपयोग में ली जाती है।

——:o:——

प्रदीपन

नाम—

संस्कृत—प्रदीपन।

वर्णन—

यह एक प्रकार का स्थावर विष होता है। जिसका वर्ण लाल, अत्यन्त दीप्तिमान और अग्नि के समान प्रभाव वाला हो उसको अत्यन्त दाह पैदा करने वाला प्रदीपन विष समझना चाहिये।

——:o:——

पनसी

नाम—

सस्कृत—पनसी, रोपणी, कपिकच्छुक।

गुण दोष और प्रभाव—

पनसी की जड़ व्रण को भरने वाली और दस्तावर होती है।

——:×:——

पटफणस

नाम—

मराठी—पटफणस, फणसुला, राणफणस। तामील—अजली, ऐनी, अक्किनी। कुनाडी—कहुहलासु। मलयालम—अचनी। लेटिन—Artocarpus Hirsuta (एट्रोकार्पस हिरसुटा)।

वर्णन—

यह फणसकी जातिका ही एक बड़ा वृक्ष होता है। इसके पत्ते फणस के पत्तों की अपेक्षा

कुछ मोटे और खरदरे होते हैं। इसके फल फणस के फल से कुछ छोटे मगर बड़े कांटे वाले होते हैं।

गुणदोष और प्रभाव—

इसके सूखे पत्तों को और इसके रस को आंबी हलदी और कपूर के साथ पीस कर बदगांठ और अंडकोष की सूजन पर लेप करते हैं।

——:।:——

पलाच

नाम—

हिन्दी—पलाच, पहाड़ी पीपल, शरफारा, विलौंगा। काश्मीर-पलाच, फाल्श। कुमाऊ-चालमिया, गढपीपल। गढवाल—स्यान। नेपाल—वगीकट। पजाव—पलाच, पहाड़ी पीपल, हैलिस, दूदफरास, चालोन, पलुच, फालशा, रिक्कन, सकी, तेलोन इत्यादि। सिमला—चेलोन, चेलुन। पश्चिमी-हिमालय—वनपीपल, पहाड़ी पीपल, सफेदा। लेटिन—Populus Ciliata (पाप्यूलस सिलेटा)।

वर्णन—

यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है। इसकी छाल हरापन लिये हुए भूरी और चिकनी होती है। इसके पत्ते ७ ५ से १८ सेंटीमिटर तक लंबे और ६ ३ से १२ ५ सेंटीमिटर तक चौड़े होते हैं। यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से भूपाल तक ४ हजार से लेकर १० हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल उत्तेजक, पौष्टिक और रक्त को शुद्ध करने वाले द्रव्य की तरह काम में आती है।

——:०:——

पड

नाम—

मराठी—पड़। तामील—परपदगम। तेलगू—पर्पटक। बंगाल—गिमशाक, लेटिन—Mollugo Cerviana (मोल्यूगो सरवीएना)।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति ज्वर के अन्दर उपयोग में ली जाती है। डाक्टर पीटर्स के मतानुसार प्रसुति काल में स्त्रियों को इसकी तरकारी देने से प्रसुति कालिकस्राव बहुत ही साफ होता है।

लाइबेला में यह पौधा सुजाक को अच्छा करने के काम में लिया जाता है।

पंजूली (भुईं आंवला)

नाम—

संस्कृत—वहुप्रजा, वहुपुष्पा, कंबोजी, कृष्ण कंबोजी। हिंदी—भुई आंवला, कालमेदका पड़, मक्खी। बंगाल—पंजूली। गुजराती—दतबन, शीणवी। बंबई—पुवण। आसाम—अमुलकी। पंजाब—पंजूली। राजपूताना—कवोनन। तामील—अविरगी, करुनेल्लि, मेकानेल्ली, पुलांजी। तेलगू—नेलापुली। लेटिन—Phyllanthus Reticulatus (फिलेंथस रेटिक्यूलेटस)।

वर्णन—

यह भुई आंवले की जाति का एक पौधा होता है। यह झाड़ीनुमा होता है। सिंध के तरफ जंगलों में इसकी बेलें बड़े २ झाडों पर चढ जाती हैं। इसके पत्ते १.३ से ३.२ सेंटीमीटर तक लंबे और .८ से २ सेंटीमीटर तक चौड़े होते हैं। यह वनस्पति सारे भारतवर्ष के गरम प्रांतों में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से इसका फल आंतों के लिये सकोचक, सूजन को दूर करने वाला तथा वात और रक्त रोग को नष्ट करने वाला होता है। इसकी छाल धातुपरिवर्तक और दुर्बलता को दूर करने वाली मानी जाती है तथा इसका काढ़ा ४ औंस की मात्रा में दो बार दिया जाता है।

सिंध में इसके पत्ते शीतल और मूत्रल औषधि की तरह उपयोग में लिये जाते हैं।

कोकण में इसके पत्तों का रस मसूड़ों से बहने वाले खून को रोकने के लिये कपूर के साथ दिन में १०।२० बार लगाया जाता है। कुचले के विष की शांति के लिये इसका रस पिलाना बहुत उपयोगी माना जाता है।

लखीमपुर में इसके पत्तों का रस बच्चों की दस्तों को बन्द करने के लिये दिया जाता है।

इसकी छाल का क्वाथ पुरानी लेकिन मन्द सूजन को उतारने के लिये पिलाया जाता है।

——:X:——

प्ररोही (नंदीवृक्ष)

नाम—

संस्कृत—नन्दीवृक्ष, नदयावृक्ष, विष्णुप्रिय, अश्वत्थभेद, क्षयतरु, क्षीरी, प्रारोही, वनस्पति. तगर। हिन्दी—चांदनी, चंदुइ, सुगंध बाला, वेलिया पीपल। बंगाल—चमेली, तगर। बबई—तगर। गुजराती—सागर, तगर। मराठी—अनन्त, गोंडेतगर। तेलगू—नंदीवर्धनम्, गधीतगप्पू। तामील—नदीयवर्तम, पट्टिबाई। इंग्लिश—Wax Flower। लेटिन—Tabernaemontana Coronaria (टेबरनेमोंटेनेना कोरोनेरिया) Ervatamia Coronaria (इरबेटेमिया कोरोनेरिया)।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति का झाड़ीनुमा वृक्ष होता है। इसकी ऊंचाई ५ फीट से ८ फीट तक होती

है। यह वृक्ष यहा के बगीचों में लगाया जाता है। इसके पत्ते हरे, चमकते हुए और सूखने पर भी हरे रहते हैं। ये ७.५ से लेकर १५ सेंटीमीटर तक लंबे और २.५ से ५ सेंटीमीटर तक चौडे होते हैं। इसके फूल सफेद और सुगंधित होते हैं। इस झाड़ में दूधिया रस बहुत निकलता है। इसकी जड़ों का स्वाद कड़वा होता है।

गुण दोष व प्रभाव—

आयुर्वेदिकमत—आयुर्वेद के मत से वेलिया पीपल हलका, स्वादिष्ट, कसैला, कड़वा, गरम पचने में चरपरा, मलरोधक तथा विष, पित्तकफ और रुधिर के दोषों को दूर करने वाला होता है।

वेलिया पीपल—ज्वर नाशक, वेदनाशामक, गर्भाशय के लिये उत्तेजक और दुग्धरोधक होता है। इसकी जड की क्रिया मस्तिष्क और मज्जातन्तुओं पर होती है। जिससे सारे शरीर में चेतना जाग्रत होजाती है।

प्रसूतिकाल में स्त्रियों को एक प्रकार का जहरीला बुखार होता है जिसको नदवायु कहते हैं। इस रोग में इसकी जड को उबाल कर उसको शरीर पर लेप करने से और भारंगी की जड़ के साथ इसको औटा करके पिलाने से बड़ा लाभ होता है। जब यह औषधि चालू रहती है तब रोगी को कुल्थी का काढ़ा पीने के लिये दिया जाता है। दक्षिण कोकण के सभी वैद्य नदवायु को दूर करने के लिये इस वनस्पति की बहुत प्रशंसा करते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ कड़वी, खराब स्वाद वाली, ऋतुस्राव नियामक, कामोद्दीपक, पौष्टिक, विरेचक, मस्तिष्क, यकृत और तिल्ली को शक्ति देने वाली, त्रिदोष को शांत करने वाली, लकवा और अर्धांग में उपयोगी और शरीर के अंगो की कमजोरी को दूर करने वाली होती है। यह पथरी, मूत्रकृच्छ्र जोड़ों के दर्द और शरीर की अकड़न को कम करती है। बिच्छू के विष और मृगी में लाभदायक है। इसकी लकडी का कोयला नेत्रशुक्ल रोग में लाभ दायक है। इसका तेल मृगी रोग में लाभ दायक है।

इसके दूधिया रस को तेल में मिलाकर ललाट पर मलने से आंखों का दर्द दूर होता है। इसकी जड़ को चबाने से दांतों का दर्द दूर होता है। इसकी जड़ को पानी में मिला कर देने से आंतों के कृमि नष्ट होते हैं। इसकी जड़ को नीम के रस में उबाल कर अंजन करने से, चक्षु पटल की खराबी दूर होती है।

पश्चिमी भारत में इसका दूध बहुत ठंडा माना जाता है और जख्मों पर सूजन को दूर करने और जखम को भरने के लिये लगाया जाता है।

—x—
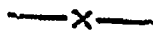
पाकरी

नामः—

संस्कृत—प्लाक्ष, कनिनिका, गृहद्वार प्रवेश, । हिन्दी—पाकरी, जरी, पीपर । गुजराती—पिप्पर, पिपली । बम्बई—पिंपरी । तामील—इच्चि, कलिच्ची, सीतल । तेलगू—अवी, । उड़िया—जोरी । लेटिन—Ficus Tsiella (फायकस टीसेला) ।

वर्णन—

यह पीपल की जाति का एक बड़ा वृक्ष होता है । इसके सभी हिस्से चिकने होते हैं । इसके पत्ते पतले होते हैं । ये ७.५ से लेकर १५ सेंटिमीटर तक लम्बे और ३.८ से ६ सेंटिमीटर तक चौडे होते हैं । यह वृक्ष मध्यप्रांत और पश्चिमी घाट में पैदा होता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल कॉलिक उदर शूल को दूर करने के काम में ली जाती है ।

—:०:—

पोखुर

नाम—

संस्कृत—त्रायमनी । मध्यप्रांत—पाखुर । मराठी—दतीर । बंगाल—भुइउदुंबर, वाल्लबहुला, वाललता । तेलगू—बुरोनी । तामील—कोडियती । लेटिन—Ficus Heterophylla (फायकस हेटरोफिला) ।

वर्णन—

यह एक झाड़ीनुमा वृक्ष होता है । यह पाकर या कटहल के वर्ग की वनस्पति है ।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति की जड़ का रस पिलाने से कॉलिक उदरशूल मिटता है । इसके पत्तों के रस में दूध मिलाकर पीने से रक्तातिसार में लाभ होता है ।

इसकी जड़ की छाल बहुत कड़वी होती है । इसका बारीक चूर्ण करके उसको धनिये के बीजों के साथ मिलाकर देने से कफ, खांसी, दमा और छाती के दर्द में बहुत अच्छा लाभ होता है ।

—:०:—

पाड़ावल

नाम—

संस्कृत—राजपाठा, वनतिक्तिका । कोकण—पाडल पाड़ावल । गुजराती—कालीपाड़, पोरबन्दर

कालीपाट । तामील—पाड़ा । लेटिन—Cyclea Peltata (सायक्लीया पेलटेटा) C Burmanu (सी० बरमानो)

वर्णन—

यह एक लता होती है। जो कोकण में बहुत पैदा होती है। इसकी दो जातियाँ होती हैं। इनमें से एक को थोरली पाढल और दूसरी को धाकटी पाढावल कहते हैं। थोरली पाडल की वेलें बड़ी होती हैं। ये बड़े वृक्षों के आसरे से ऊपर चढती हैं। इनके पत्ते तिकोने, वाढन वेल के पत्तों के समान (छिरेटे के पत्तों के समान) मगर उनसे कुछ लम्बे और बड़े, फूल बहुत छोटे और हरे रग के फल काली मिरच के समान गोल, सफेद रग के झूमकों में आते हैं। धाकड़ी पाढावल की वेल छोटी होती है और यह जमीन पर फैलती है। इसके पत्ते थोरली पाढल के पत्तों के समान मगर उनसे कुछ छोटे होते हैं। इन दोनों का स्वाद बहुत कड़वा होता है। औषधि में इनका पचाग उपयोग में आता है।

गुण दोष और प्रभाव—

पाढावल कडवी, वायुनाशक, पसीना लाने वाली और मूत्रल होती है। छोटे बच्चों के पेट दुखने में, आंव के दस्तों में, मरोड़ी में और बवासीर में इसकी जड़ को ठडे पानी के साथ देते हैं। इसके साथ अतीस और तनगच की मगज देने का विशेष रिवाज है। पित्त की वजह से होने वाले अजीर्ण में इसके पत्तों का रस सोंठ के साथ दिया जाता है।

पांडू

नाम—

हिन्दी—पांडू

वर्णन -

यह एक जाति की सफेद मिट्टी होती है जिससे घरों की पुताई की जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह मीठी, सर्द और तर होती है गर्भाशय की बीमारी और पित्त के उपद्रवों को नष्ट करती है। इसको गुलाबजल में तर करके सूंघने से गर्मी का सिर दर्द मिटता है।

—:o:—

पांढरी

नाम—

मराठी—पाढरी । लेटिन—Croton Reticulatus (क्रोटन रेटिक्यूलेटस)।

वर्णन—

यह जमाल गोटे के वर्ग की एक औषधि है, इसका छोटा झाड़ीनुमा वृक्ष होता है इसके पत्ते ६ ३

से १५ सेंटिमीटर तक लम्बे और २·५ से ५ सेंटिमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं। ये फूल नर और मादा दो प्रकार के होते हैं। इसके बीज कुछ सफेदी लिये हुए भूरे रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति कड़वी और अग्निवर्धक होती है।

—— ·०: ——

पांढरकुड़ा

नामः—

मराठी—पांढरकुड़ा, नागलकुड़ो। कनाड़ी—हलमेटी, नागरकुड़ा। लेटिन—Taberna-emontana Heyneana (टेबरनेमोंबटेना हेनेना) Ervatamia Heyneana (इरवेटेमा हेनेना)।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति का झाड़ीनुमा वृक्ष होता है। इसकी ऊंचाई ४ से ६ फुट तक होती है। इसकी छाल भूरी और खुरदरी होती है। इसके पत्ते ७·५ से २० सेंटीमीटर तक लम्बे और ३·२ से ७·५ सेंटीमीटर तक चौड़े होते हैं। इसका फल पकने पर पीला होता है। यह वनस्पति कोकण, पश्चिमी घाट, मलाबार और ट्रावनकोर में तीन हजार फीट की ऊंचाई तक होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

पुदूकोटा में इसके फूल चक्षुपटल की सूजन को दूर करने के लिये काम में लिये जाते हैं।

—— ❀ ——

पाथरसुआ

नामः—

संस्कृत—पिथारी। मराठी—पाथरसुआ। बम्बई—पत्थर सुआ, पित्तपापड़ा। हिन्दी—शेरी। तेलगू—पारापलामू। लेटिन—Glossocardia Linearifolia (ग्लोसोकार्डिया लिनेरिफोलिया)।

वर्णन—

यह वर्ष जीवी क्षुद्र वनस्पति मध्यभारत और दक्षिण की कङ्करीली जमीनों में होती है। इसके सेवती के समान छोटे पीले रङ्ग के फूल आते हैं। इसकी डालियां घनी और फैली हुई रहती हैं। इसका स्वाद कड़वा होता है और इसकी गंध सोया के समान होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

पत्थर सुआ पसीना लाने वाला, ज्वर नाशक और गर्भाशय को सङ्कुचित करने वाला

होता है। इसके साधारण धर्म पित्तपापडे के समान होते हैं। अन्तर इतना ही है कि जहां पित्तपापडे की प्रधान क्रिया यकृत के ऊपर होती है वहां इसकी प्रधान क्रिया गर्भाशय पर होती है। इसीलिये यह औषधि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिये विशेष उपयोगी होती है। कष्टप्रद मासिकधर्म और रुके हुए मासिक धर्म को जारी करने के लिये इसका काढा दूसरी सुगंधित औषधियों के साथ देने से लाभ होता है।

पाती

नाम --

हिन्दी और बङ्गाली— पाती। लेटिन— Cyperus Inundatus (सयापरस इननडेटस)।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका कन्द पौष्टिक और उत्तेजक होता है।

—+—

पाथरणी

नाम —

गुजराती— पाथरड़ी, पाथरी। कच्छी— छवाड़ी, छातरी। लेटिन— Lactuca Remotiflora (लेकचुका रेमोटिफ्लोरा)।

वर्णन--

इसके पौधे एक से लेकर १॥ हाथ तक ऊंचे होते हैं। इसकी शाखाएँ चिकनी, पत्ते अखण्ड, कटी हुई किनारों के, फूल पीले रंग के और बीज काले रंग के तथा सिर पर सफेद दाग वाले होते हैं। इस पौधे से एक प्रकार का दूधियारस निकलता है।

गुण दोष और प्रभाव --

यह वनस्पति यकृत के लिये एक उत्तेजक और शक्ति दायक वस्तु है। गोआ में यह अरण्य कासनी या टेरेक्सकम आफिसीनेल (Taraxaccum officinale) नामक वनस्पति के प्रतिनिधि रूप में काम में ली जाती है। अरण्य कासनी का वर्णन इस ग्रन्थ के पहले भाग में देखना चाहिये।

—×—

पाना

नाम —

बम्बई— पाना, पान। मदरास— नेलापन्ना, मारवारा। लेटिन— Asplenium Falcatum (एस्प्लेनियम फेलकेटम)।

वर्णन—

यह वनस्पति मद्रास प्रेसीडेन्सी, सीलोन और पश्चिम के पहाड़ों पर पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति का उपयोग करने से बढ़ी हुई तिल्ली दुरुस्त हो जाती है इसके अतिरिक्त यह वनस्पति पेशाब की जलन, मूत्र कृच्छ, पथरी, पीलिया और मलेरिया में भी उपयोगी मानी जाती है।

—:o:—

पाणेरूं (हिरनचारा)

नाम—

गुजराती—हरण चारो, पानेरू। कच्छी—तीण, तृण, तृण कंठो। लेटिन—Lepidagathis Trinervis (लेपिडेगेटिस ट्रिनेरविस)।

वर्णन—

इसके क्षुप बरसात के दिनों में बहुत पैदा होते हैं। इसके डंखल या शाखाएँ चौधारी और पतली होती है। ये बहुधा जमीन पर फैलती है। इसके पत्ते सँकड़े, लंबे, पीछे की तरफ ३ नसों वाले और आमने सामने लगे हुए होते हैं। इसके फूल सफेद, गुलाबी और बैंगनी रङ्ग के होते हैं। फल फीके, भूरे रंग के और दो बीज वाले होते हैं। इस वनस्पति को हिरन बहुत खाते हैं इसलिये इसको हिरन चारा कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इस पौधे को जलाकर उसकी भस्म को तेल, घी या मक्खन में मिलाकर फोड़े, फुन्सी, खाज, खुजली पर लगाने से लाभ होता है। इसके पत्तों और डालियों का काली मिरच के साथ क्वाथ बनाकर एक से दो तोले तक की मात्रा में बुखार के ऊपर दिया जाता है। इसके पत्तों का उबाला हुआ पानी शक्कर और दूध के साथ चाय की तरह पिया जाता है।

—:×:—

पानमोड़

नाम—

हिन्दी और यूनानी—पानमोड़।

वर्णन—

यह एक मध्यमकद का वृक्ष होता है। इसके पत्ते सख्त, मोटे और कंगूरेदार होते हैं। इसका फूल खुशबूदार और सफेद होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह अन्न को पचाता है, मेदे को ताकत देता है। इसके पत्तों का रस मलने से दाह युक्त खुजली में लाभ होता है।

———

पानीसाज

नाम—

नेपाल—पानीसाज। आसाम—हुल्लोक, फालना। लेटिन—Terminalia Myriocarpa (टर्मिनेलिया मीरोकारपा)।

वर्णन—

यह एक बहुत बड़ा हमेशा हरा रहने वाला एक वृक्ष होता है। यह नेपाल और भूटान में ५ हजार फीट की ऊंचाई तक पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

केस, महस्कर और इवान्स के मतानुसार इसकी छाल एक बहुत प्रभावशाली हृदय को उत्तेजना देने वाली वस्तु होती है। इसमें कुछ मूत्रल धर्म भी होता है।

—:+:—

पानी की संभालु (जल निगुंण्डी)

नाम—

संस्कृत-इन्द्राणिका, जलनिगुंडी, कृष्णनिगुंण्डी, शक्ल पुष्पिका, विसुगन्दका इत्यादि। हिन्दी—पानी की संभालु, जल निगुंण्डी। बंगाल—पानी समाल। दक्षिण—पानी की सवाली। मराठी—लिगुर। अरबी—अस्ला। लेटिन—Vitex Trifolia (विटेक्स ट्रिफोलिया)।

वर्णन—

यह निगुंडी ही की एक जाति है। इसका पौधा निगुंण्डी की तरह होता है।

गुण दोष और प्रभाव —

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मत से इसके पत्ते कड़वे, चरपरे, उत्तेजक, कृमिनाशक, स्मरण शक्ति को बढ़ाने वाले, बालों के लिये लाभदायक, नेत्रों की ज्योति को बढ़ाने वाले, दर्द को दूर करने वाले तथा सूजन, धवल रोग, मुंह का बदजायका, ब्रोंकाइटीज और ज्वर में लाभदायक है। बढ़ी हुई तिल्ली जोड़ों का दर्द, शस्त्र के जखम, मोच और अंडकोषों की सूजन में इनका लेप लाभदायक होता है। इस के फल ऋतुस्राव नियामक होते हैं और इसकी जड़ पौष्टिक, कफनिस्सारक और ज्वर में उपयोगी मानी जाती है।

इसके पत्तों का चूर्ण पार्यायिक ज्वरों को दूर करने की एक सफल औषधि है। इसके फूल शहद के साथ मिलाकर ऐसे ज्वरों को दूर करने के लिये दिये जाते हैं जिनके साथ बहुत प्यास और वमन की मतली हो।

इसके पत्तों को तकिये में भरकर उस तकिये को सिरहाने लगाने से जुकाम और मस्तक शूल में लाभ होता है। हर तरह की वधिवात की पीड़ा में और मोच में इसके पत्तों का लेप बहुत ही उपयोगी

माना जाता है। इसके फल रुके हुए मासिक धर्म को चालू करने के उपयोग में लिये जाते हैं।

—×—
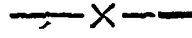
पानीलजक

नाम—

हिन्दी—पानी लजक, पानी की लजालू। बंगाल—पानी लजक। बंबई—पानी लजक। पटना—लजालू। तामील—सुंदाई किराई। तेलगू—निद्राथम, निरुतलवपु। लेटिन—Neptunia Oleracea (नेपचुनिया ओलेरेसिया)।

वर्णन—

यह वनस्पति सारे भारतवर्ष में तालाबों के किनारों पर पैदा होती है। इसका पौधा लाजवती की तरह होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

डरविन के मतानुसार इसका पौधा संकोचक और ज्वर तथा तृषा उपशामक होता है।

पानीघोल

नाम—

हिन्दी, यूनानी—पानीघोल।

वर्णन—

यह एक वृक्ष होता है। इसके पत्ते लंबे, चौड़े, आम के पत्तों की तरह होते हैं। इन पत्तों पर लकीरें होती हैं।

यह वृक्ष आम के बराबर होता है। इसका फल खाने के काम में नहीं आता।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके फल को जखम पर बांधने से जखम भर जाता है।

—:०:—
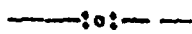
पानलवंग (बनलोंग)

नाम—

संस्कृत—भूलवंग। हिन्दी—बनलोंग। बंगाल—बनलोंग। मराठी—पानलवंग। तामील—नीरकम्बु, कट्टुकरंबु। संथाल—पेन्रद, दकिचाक। इङ्गलिश—Primrose (प्राइम रोज) Willow (विलो)। लेटिन—Jussieua Suffruticosa (जुसिया सफ्रूटीकोसा)।

वर्णन—

पानलवंग का पौधा ४ से ६ फुट तक ऊँचा होता है। इसमें बहुत शाखाएँ होती हैं। यह तर जमीनों में पैदा होता है। इसके पत्ते ३ इञ्च लंबे और आधा इञ्च के करीब चौड़े होते हैं। ये नोकदार और रुएँ-दार होते हैं। इसके फूल पीले, लवंग के फूल के समान होते हैं। इसकी फली १ से २ इन्च तक लंबी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

पानलौंग ग्राही, वायुनाशक और रक्त संग्राहक होते हैं। बड़ी मात्रा में ये मूत्रल और मृदुविरेचक होते हैं। दस्त की राह से खून जाने में, कफ के द्वारा खून गिरने में अथवा और किसी प्रकार के रक्त श्राव होने में पान लवंग का व्यवहार किया जाता है। इसके पौधे को पीस कर मट्ठे में मिला कर देने से रक्तातिसार में बहुत लाभ होता है। इसका काढ़ा कृमिनाशक और विरेचक होता है।

जशपुर में इसकी छाल को उबाल कर उसका काढ़ा ज्वर में देते हैं।

——×——

पानलता

नाम—

बंगाल—पानलता। बम्बई—किरतना। मराठी—कारजवेल। तेलगू—नेल्लेटिंगे। लेटिन—Derris Uliginosa (डेरिस उलिगनोसा)।

वर्णनः—

यह एक बड़ी जाति की जंगली बेल होती है। इसके पुराने तने बहुत मोटे २ होते हैं। इसके पत्ते छोटे और कंगूरेदार, फूल तुर्रे के आकार के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल मछलियों के लिये भयंकर विष है। इसके पत्तों को उबाल कर काजू की मगज के साथ पीस कर बदगांठ तथा दूसरी गठानों को पकाकर फोड़ने के लिये बांधते हैं। इसकी छाल का उपयोग सन्धिवात और कष्टप्रद मासिक धर्म में भी किया जाता है।

——+——

पापरी (काठचंपा)

नाम—

संस्कृत—काकछेदी, पापटा। हिन्दी—कांकरा, कर्णिकारा, काठचपा, पापरी। बंगाल—कुकुर-चुरा, जुइ। बम्बई—पापट। देहरादून—थँगारी। संथाल—बुदितिबाई। तामील—करनिया, करानाई। तेलगू—दुइपापटा, नपकापापिड़ी। अंग्रेजी—Indian Pellet Shrulb लेटिन—Pavetta Indica (पवेटा इन्डिका)

वर्णन—

यह एक छोटी जाति का झाड़ीनुमा पौधा होता है। इसके पत्ते ७.५ से १५ सेंटिमिटर तक लंबे और २.५ से ६.३ सेंटिमीटर तक चौडे होते हैं। इसकी छाल पतली, मुलायम, और पीलापन लिये हुए भूरे रंग की होती है। यह वनस्पति भारतवर्ष मलाया और सीलोन में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ कड़वी, और मृदुविरेचक होती है। यह आम तौर से आंतों के अवरोध को दूर करने के काम में ली जाती है। इस कार्य के लिये बच्चों को इसका चूर्ण १ ड्राम की मात्रा में दिया जाता है। इसकी जड़ का चूर्ण करके उसको सोंठ और चावल के पानी के साथ जलोदर रोग में देते हैं। इसके पत्तों को पानी में उबाल करके उसका सेक करने से मासिक धर्म में होने वाला दर्द शांत होता है।

इन्डोचायना में इसकी लकड़ी का शीतनिर्यास सधिवात की पीड़ा को शांत करने के लिये दिया जाता है।

पावर पानी

नाम—

संस्कृत—झिंगिनी। हिन्दी—झिंगी, छोटा-कुलफा। सिंध - पावर पानी। पंजाब—कौडी-बूटी, रतमडु। काश्मीर—रातीसुर्ख। लेटिन—Trichodesma Indicum (ट्रिकोडेस्मा इन्डिकम)।

वर्णन—

यह छोटी जाति का क्षुप सिंध और पंजाब में पैदा होता है। इसका सारा पौधा रुएंदार होता है। इसकेपत्ते डंठल रहित, शल्याकृति और २ से ४ इञ्च तक लंबे होते हैं इसके फूल गोल और नीले होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते मूत्रल और चमडे को मुलायम करने वाले होते हैं। संधियों की सूजन पर इसकी जडों को पीस कर लेप करते हैं। सूजन में इसके पत्तों का हिम बना कर देते हैं।

सिंध के अन्दर यह वनस्पति गावजबान के बदले में उपयोग में ली जाती है। कई जगह तो इसी को गावजबान समझा जाता है। खारान में यह वनस्पति बिगडे हुए कफ को दूर करने के उपयोग में ली जाती है।

—:०:—

पामुख

नाम—

पंजाब - पामुख, करोइता। उर्दू—फेरिस्टारियून। अरबी—राइल इम्माम। फारसी—गासर्शाग। अंगरेजी-Columbine (कोलुम्बाइन) लेटिन-Verbena Officinalis (व्हरबेना आफिसिनेलिस)।

वर्णन--

यह एक छोटी जाति की वनस्पति होती है। इसके पत्ते ५ से लेकर १० सेंटिमीटर तक लंबे होते हैं। यह वनस्पति पंजाब और बंगाल में तथा हिमालय में काश्मीर से पूर्व ७ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानीमत से यह पौधा पौष्टिक और संकोचक होता है। यह अर्धांग, लकवा और मासिक धर्म की रूकावट में उपयोगी होता है इसके पत्ते घावों को भरने के काम में उपयोगी हैं।

इसके ताजा पत्ते पौष्टिक और ज्वर नाशक औषधि की तरह उपयोग में लिये जाते हैं और सन्धिवात, गठिया और जोड़ों की पीड़ा में चर्म दाहक पदार्थ की तरह इनका उपयोग होता है। लाहौर में इसका पौधा ज्वरनाशक और शोधक पदार्थ की तरह उपयोग में लिया जाता है।

कंठ माला और सर्प विष के ऊपर भी इसकी जड़ उपयोगी मानी जाती है।

यूरोप के कई भागों में अभी तक यह वनस्पति जुकाम, ज्वर की प्रारंभिक अवस्था, मूर्छा, आक्षेप (Convulsions) और ज्ञान तंतु की खराबी में सफलता पूर्वक उपयोग में ली जाती है।

डुस्नेनी में यकृत के विकारों पर यह पुल्टिस की तरह ऊपर बाँधने के काम में और क्वाथ के रूप में पीने के काम में उपयोग में ली जाती है। जलोदर में भी यह उपयोगी मानी जाती है।

कोचीन चायना में इसका पौधा ज्ञानतन्तुओं की शिकायतों में और जलोदर रोग में उपयोगी माना जाता है

प्लाइनी के मतानुसार इसके पौधे को कुचल कर शराब के साथ मिलाकर देने से सर्प विष में लाभ होता है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सर्प विष में निरुपयोगी है।

——::०::——

पारस पीपल

नाम—

संस्कृत—गर्दभांड, कमंडलु, कंदराल, फलीश, कपितन, कुबेराक्ष, नन्दी, पारिश, फालिश, सुपार्श्वक। हिन्दी—पारस पीपल, गजदंड, भेंडी, गजहनोल, पारसझाड़। बङ्गाल—पलाश पीपल, गजशुंडी। मध्यप्रांत—रानभेंडी। गुजराती—भेंडी, पारसपीपल। मराठी—भेंडी, पारसपीपल पारसचा झाड। पञ्जाब—पहाड़ी पीपल, पारसपीपल। उर्दू—गु जोस्तो, पोरस पीपली। तामील—कञ्चाल पीराम, पुवारसु। तेलगू—गंगा रावी, गगेरनी। इङ्गलिश—Portia Tree (पोर्टिया ट्री)। लेटिन Thespesia Papulnea (थेसपेसिया पोपुलनिया)।

वर्णन—

पारस पीपल के वृक्ष पीपल के वृक्ष के समान होते हैं। इसके पत्ते पीपल के पत्तों से कुछ मिलते हुए होते हैं। इसके भिंडी के फूल के समान घटाकार पीले रंग के फूल लगते हैं। इसके फलों में पीले रंग का चिकना दूध रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिकमत—आयुर्वेद के मत से पारस पीपल मधुर, वीर्यवर्धक, खट्टा, कसेला, कठिनाई से पचनेवाला, कफकारक, स्निग्ध, कृमिकारक तथा वात, पित्त, हृदयरोग, दाह और कंठरोग को दूर करता है। इसके फल खट्टे और मीठे, इसकी जड़ कसेली और इसकी मज्जा स्वादिष्ट होती है।

पारस पीपल के २ या ३ बीजों को शक्कर के साथ देने से संग्रहणी, बवासीर, सुजाक और पेशाब की गर्मी में लाभ होता है इसके पके हुए फलों की राख तेल में मिलाकर लगाने से और इसका काढ़ा बनाकर पिलाने से दाद और खुजली में लाभ होता है।

कोकण में इसके फूल खुजली को दूर करने के उपयोग में लिये जाते हैं और इसके पत्ते संधियों की अकड़न और सूजन पर लेप करने के काम में लिये जाते हैं।

इसके फलों का पीला रस गीली खुजली और दूसरे चर्म रोगों में बाह्य लेप करने के लिये एक बहुमूल्य औषधि है। इसका उपयोग करने के पहले रोगग्रस्त अङ्ग को इसकी छाल के काढे से धो डालना चाहिये।

इसकी छाल एक संकोचक वस्तु है और फिलीपाइन में इसकी छाल का काढा रक्तातिसार को रोकने के लिये दिया जाता है। इसके फल, पत्ते और जड़ गीली खुजली और दूसरे चर्म रोगों में बाह्य उपचार की तरह काम में लिये जाते हैं।

इसके ताज़ा फलों को कुचलकर मस्तक शूल को दूर करने के लिये ललाट पर लेप किया जाता है। इसका पीला रस जो कि इसके फलों में से निकलता है वह विषैले जानवरों के खास करके कनखजूरे के विष पर बाह्य उपचार की तरह बहुत उपयोगी माना जाता है। इसी प्रकार यह मोच, चोट, रगड़ और सब प्रकार के चर्म रोगों पर उपयोगी माना जाता है।

मेडागास्कर में इसकी छाल का काढ़ा पुराने अतिसार और चर्म रोगों पर आम तौर से उपयोग में लिया जाता है। इसका रस दाद तथा विसर्पिका पर बाह्य उपचार में काम में लिया जाता है।

रफियम लोग इसकी भीतरी लकड़ी को पित्त प्रकोप, कॉलिक उदरशूल और मलाया के अन्दर विशेष रूप से होने वाली प्ल्यूरोडिनिया (Pleurodynia) नामक बीमारी में जिसमें कि पसलियों के अन्दर तीव्र वेदना होती है और श्वास कष्ट बढ़ जाता है, बहुत उपयोगी मानते हैं।

कोमान के मतानुसार इसके पत्ते पीसकर लेप के रूप में बच्चों के एक्झिमा पर लगाये गये और इसी प्रकार इसकी अन्तर् छाल को नारियल के तेल में सिद्ध करके उस तेल को

गीली खुजली, विसर्पिका और दूसरे चर्म रोगों पर लगाने के उपयोग में लिया गया। इसके फल का पीला रस और इसके बीज कोष (Capsule) दाद पर बाहरी उपचार की तरह काम में लिये गये। इसकी छाल का काढ़ा चर्म रोगों में पिलाने के काम में लिया गया। इसके पीसे हुए पत्ते और इसके फलों का रस एक्जिमा और दाद के ऊपर लेप करने के काम में लिया गया। इसकी छाल और इसके बीज कोषों से तैयार किया हुआ तेल मूत्रनाली की सूजन और सुजाक के अन्दर दिया गया और इन सबके परिणाम सतोष जनक रहे।

उपयोग—

पित्त विकार—इसकी लकड़ी के बीच के हिस्से को घिस कर लेप करने से पित्त के विकार और छाती की पीडा मिटती है।

खुजली—इसके फल के पीले रस का लेप करने से और इसकी छाल के क्वाथ से स्नान करने से अथवा इसके फूलों को पीसकर मालिश करने से खुजली और त्वचा के दूसरे रोग मिटते हैं।

रुधिर विकार—इसका काढ़ा बनाकर उस काढ़े को ७॥ से लेकर १० तोले तक की मात्रा में पीने से रुधिर शुद्ध होता है।

पित्त की सूजन—इसके पत्तों को पीस कर गरम करके लेप करने से जोड़ों की सूजन और पित्त की सूजन मिटती है।

दाद—इसके फूल के रस का लेप करने से दाद मिटता है।

नारू—नारू से पैदा हुए छाले और घाव को मिटाने के लिये इसके पत्तों पर तेल चुपड़ कर गरम करके बांधना चाहिये।

उदर शूल—इसकी लकड़ी के गर्भ का क्वाथ करके पिलाने से उदरशूल मिटता है।

—:०.—

पारिजात

नाम—

संस्कृत— पारिजात, प्राजक्त, हार शृंगार, नालकुंकुम, रागपुष्पी, खरपत्रक। हिन्दी— हार-सिंगार, सियारी, निवारी, कुटी, पारिजात। बङ्गाल— हारसिंगार, सेफालिका। बम्बई— हारसिंगार पारिजातक, शिउली। मध्यप्रान्त— शिराली, सिराळू। देहरादून— कूरी। गढ़वाल— कुरी। गुजराती — जयपारवती। मराठी— खरामली, पारिजातक। पञ्जाब— हारसिंगार, कुरि, लादुरी, पकुरा, शियालो। तामील— मञ्जतपु, पेरिसादम। तेलगू— कृष्णवेणी, पारिजातम्। उर्दू— गुल-जाफरी, हारसिंगार। लेटिन— Nyctanthes Arbor-tristis (निक्टैंथिस आरबोरट्रिस्टिस)। अङ्गरेजी— Coral Jasmine (कोरल जेस्मिन)।

वर्णन—

पारिजात के वृक्ष बड़े सुन्दर होते हैं। इनकी ऊंचाई ५ से लेकर १२ फुट तक होती है। इसके पत्ते जासूद के पत्तों के समान होते हैं। इसके फूल सफेद और फूलों की डण्डी केसरिया रंग की होती है। इन फूलों में बहुत मनोहर सुगन्ध आती है। इसके फल चपटे होते हैं। इसके फूलों की डण्डियों को पीस कर इनसे रंग तैयार किया जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत— इसके पत्तों का रस कड़वा, और चरपरा होता है। यह ज्वर के अन्दर लाभदायक है। इसकी छाल ब्रोंकाइटीज़ में लाभ पहुचाती है। इसके पञ्चांग का काढ़ा तिल्ली के बढ़ने के ऊपर उपयोगी माना जाता है। इसकी छाल का तेज़ आंखों के दर्द में उपयोगी माना जाता है। इसकी छाल को पान में रख कर खाने से खांसी दूर होती है। पारिजातक ज्वरनाशक, कफ को दूर करने वाला, यकृत को उत्तेजना देने वाला, शामक और चर्म दोषों को दूर करने वाला होता है। इसके पत्ते सेंटिनोन के समान कृमि नाशक और कटु पौष्टिक तथा पित्तद्रावक होते हैं।

इसके पत्ते ज्वर और सधिवात के अन्दर उपयोगी होते हैं। हड्डी के अन्दर घुसे हुए जीर्ण मलेरिया ज्वर को दूर करने के लिये इसके पत्तों का रस शहद और त्रिकुटे के साथ में देने से अच्छा लाभ होता है। इस प्रयोग से ज्वर से बढा हुआ यकृत और तिल्ली भी ठीक हो जाती है। अगर रोगी का रंग बहुत ही फीका हो गया हो तो इस प्रयोग के साथ थोडी सी लोह भस्म भी मिला देनी चाहिये। इस प्रयोग के साथ पथ्य में दूध, घी और शक्कर का अधिक प्रयोग करना चाहिये।

गृध्रसी रोग में इसके पत्तों का बहुत हलकी आंच पर तैयार किया हुआ काढ़ा देने से लाभ होता है। इसके ६।७ ताजे और तरुण पत्तों को कुचल कर थोडे सोंठ के पानी के साथ मिला कर हठीले मलेरिया और पार्यायिक ज्वरों के अन्दर देने और से पथ्य मे सिर्फ शाग, भाजी और फल पर रहने से अच्छा लाभ होता है। इसके बीजों का चूर्ण सिर की गञ्ज पर लाभदायक माना जाता है।

कोकण में कफ रोग और दमे को दूर करने के लिये इसकी सुखाई हुई छाल को २ से २॥ रत्ती की मात्रा में नागर वेल के पान में रख कर दिन में ३।४ बार देते है जिससे कफ पतला होकर आसानी से छूटने लगता है।

इसकी छाल पित्त नाशक और कफ नाशक होती है और यह पैत्तिक ज्वरों में उपयोगी होती है।

इसके पत्तों का ताजा रस पित्त निःसारक, मृदुविरेचक और कटु पौष्टिक होता है। इसको थोड़ी सी शक्कर के साथ बच्चों को देने से उनकी आँतों के गोल और चपटे कीड़े निकल जाते हैं। इस प्रकार के अनेकों केसों में इस औषधि से सफलता प्राप्त हुई हैं।

केस और महस्कर ने इस औषधि के पत्तों को ३४ मलेरिया के केसों पर प्रयोग किया। इनमें से २६ रोगियों का ज्वर बिल्कुल दूर हो गया।

यूनानी मत— यूनानी मत से इसके फूल कड़वे, खराब स्वाद वाले, अग्निवर्धक, शांतिदायक, आंतों के लिये संकोचक, सूजन दूर करने वाले, और बालों की जड़ों को मज़बूत करने वाले होते हैं। इसके पत्ते हठीले ज्वरों में लाभदायक, तथा इसके बीज बवासीर और चर्म रोगों में लाभदायक हैं।

हकीम शरीफ खां के मत से इसके पत्ते, छाल और फूल की सफेद पत्तियां सर्द और खुश्क होती हैं। फूल की केशरिया डण्डी दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क होती है।

इसके ६।७ माशे नरम पत्तों को पीस कर थोड़े से अदरक के रस के साथ लेने से पुराना ज्वर जाता रहता है मगर दही, दूध, घी, तेल, मांस तथा मछली से परहेज करना चाहिये। इसके पत्तों को पीस कर लेप करने से दाद नष्ट हो जाता है मगर इस लेप से जलन बहुत होती है। छाजन भी इन पत्तों के लेप से मिट जाती है। इसके फूल की सफेद पत्तियां उष्ण प्रकृति वाले व्यक्तियों के हृदय को बल देती है। और गर्मी को दूर करती हैं। इसके फूल की डण्डी गरम और कामोत्तेजक होती है। इसके बीज को पानी में पीस कर उस पानी से सिर धोने से सिर के अन्दर रहने वाली मुस्की और लीखें दूर हो जाती हैं। इसके फूल को पीने से रक्त सम्बन्धी उपद्रव और खूनी बवासीर में लाभ होता है। इसका गोंद और जड़ कामोत्तेजक होती है। इसकी छाल के बारीक टुकड़े करके ५ काली मिर्चों के साथ पीस कर पीने से बवासीर में लाभ होता है।

उपयोग—

गठिया — इसके फूलों का क्वाथ बनाकर पिलाने से गठिया में लाभ होता है।

जीर्ण ज्वर— इसके पत्तों के रस में शहद मिला कर पिलाने से जीर्ण ज्वर मिटता है।

गृध्रसी— बिल्कुल हलकी आंच पर इसके पत्तों का क्वाथ बनाकर पिलाने से किसी भी औषधि से न मिटने वाली गृध्रसी मिटती है।

पित्त विकार— इसके पत्तों के रस में मिश्री मिला कर पिलाने से पित्त विकार मिटता है।

सूखी खांसी— इस के पत्तों के रस में शहद मिला कर पिलाने से सूखी खांसी मिटती है।

कृमि— इसके पत्तों के रस में नमक डाल कर पिलाने से पेट के कृमि मर जाते हैं।

बच्चों का ज्वर— इसके पत्तों की फांट बना कर पिलाने से बच्चों का ज्वर पसीना देकर उतर जाता है।

उदक प्रमेह— इसके पत्तों का क्वाथ बनाकर पिलाने से उदक प्रमेह मिटता है।

मासिक धर्म की अधिकता— इसकी कोंपलें और ७ काली मिर्च पीस कर छान कर पिलाने से मासिक धर्म में अधिक रुधिर का जाना बन्द होता है।

दाद— इसके पत्तों को पीस कर लेप करने से दाद मिटता है।

नेत्र रोग— इसकी छाल को तेल, कांजी और सेन्धे नमक के साथ पीस कर लेप करने से नेत्र रोग मिटते हैं।

बवासीर— इसके १ तोले बीज और ३ मासे काली मिरच को पीस छान कर पानी के साथ गोलियां बनाकर ३ मासे की मात्रा, में ठण्डे जल के साथ लेने से बवासीर में लाभ होता है।

मात्रा—इसकी छाल की मात्रा ३ रत्ती से ६ रत्ती तक और पत्तों की मात्रा ४ से लेकर ६ पत्ते तक।

—:०:—

पारू

नाम—

बङ्गाल— पारू। बरमा— तान्कीट, थून। अरबी— किरास। लेटिन— Allium Porrum (एलियम पोरम)।

वर्णन, गुण दोष और प्रभाव—

यह प्याज के वर्ग की एक वनस्पति है। इसका कन्द बाल तोड़ या स्फोटक को जल्दी पकाने के लिये काम में लिया जाता है। इसका कच्चा कन्द एक उत्तेजक कफ निस्सारक पदार्थ है। इसका रस किडनी (गुर्दे) को उत्तेजित करता है और मूत्राशय की पथरी को गला देता है।

हाथ और पैरों की फटी हुई बिवाई पर इसके कन्द का दबा कर निकाला हुआ रस मक्खन में मिला कर लगाने से बहुत लाभ होता है।

कम्बोडिया में यह सारा पौधा मूत्रल और चमड़े को मुलायम करने वाले पदार्थ की तरह उपयोग में लिया जाता है।

—×—

पारद (पारा)

नाम—

संस्कृत—पारद, रसधातु, रसेन्द्र, चपल, शिववीर्य, मृत्युनाशक, दिव्यरस, रसायन श्रेष्ठ इत्यादि। हिन्दी—पारा। बंगाल—पारा। मराठी—पारा। गुजराती—पारो। तेलगू—पारद रसमु। फ़ारसी— सिमाब। अरबी— जीवक। अंग्रेजी— Mercury। लेटिन— Hydrargyrum. (हैड्रारजीरम)।

वर्णन—

पारद भारतीय चिकित्सा शास्त्र और भारतीय रस शास्त्र की एक सबसे अधिक महत्व पूर्ण वस्तु है। इसके मिश्रण से आयुर्वेद के अन्दर अत्यन्त प्रभावशाली और तत्काल असर पैदा करने वाले रस तैयार किये जाते हैं। अत्यन्त सक्षेप में यों कहा जासकता है कि भारतीय चिकित्सा शास्त्र में से अगर

इस एक वस्तु को अलग करदी जाय तो उसका आधे के करीब महत्व नष्ट होजाता है। ऐसी उपयोगी वस्तु के सम्बन्ध में यहाँ कुछ विशेष रूप से वर्णन देना बहुत उपयोगी होगा।

पारद की उत्पत्ति

पारद की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए रस रत्न समुच्चय नामक ग्रथ के प्रसिद्ध कर्ता लिखते हैं कि—

शैलेस्मिन्छिवयो प्रीत्या परस्पर जिगीषया।
स प्रवृत्ते च संभोगे त्रिलोकी क्षोभकारिणि॥
विनिवार यितुवह्नि' सभोग प्रेषित सुरे.।
कपोत रुपिण प्राप्त हिमवत्कन्दरेऽनलम्॥
अपच्छिमाव सक्षुब्ध स्मरलीला विलोकिनम्।
तद्दृष्ट्वा लज्जित शम्भुर्विरतः सुरतात्तदा॥
प्रच्युतश्चरमोधातुर्गृहीत' शूलपाणिना।
प्रक्षिप्तो वदने वह्नेर्गंगा यामपि सोऽपतत्॥
बहिः क्षिप्तस्तया सोऽपि परिदह्य मानया।
सजाता स्तन्मलाधानाद्धातवः सिद्धि दायकाः।
यावद्गग्नि मुखाद्रेतोन्यपतद्भुवि सर्वतः॥
शतयोजन निम्नास्ते (विस्तीर्णाः) जाताकूपास्तु पचच॥
तदाप्रभृतिकूपस्थ तद्रेत. पचधाऽभवत्।
(रसरत्न समुच्चय पूर्व खड अ० १ पृष्ठ ६)।

अर्थात्—एक बार हिमालय पर्वत पर भगवान शिव और पार्वती परस्पर प्रेम पूर्वक सम्भाषण करते हुए सम्भोग क्रिया में प्रवृत्त हुए। जिससे तीनों लोक में क्षोभ छागया। तथा देवताओं ने उस सम्भोग क्रिया का निवारण करने के लिये अग्नि को वहा पर भेजा। अग्नि कपोत का रूप धारण करके हिमालय की कन्दरा में पहुँची। अपनी कन्दरा में कपोत रूपिणी अग्नि को देख कर सम्भोग लीला से सक्षुब्ध शभु बहुत लज्जित हुए। उस समय उनके शरीर से जो अतिम वीर्यपात हुआ उसको अग्निने अपने मुख में ले लिया और उसके बाद उसको गगा में छोड़ दिया। वह वीर्यपात अग्नि के ससर्ग से परम सिद्धि देने वाले पारद के रूप में उत्पन्न हुआ। यह पारद अग्नि के प्रभाव से जमीन के गर्भ में १०० योजन नीचे जाकर पच कूप रूप में हुआ।

ऊपर का वर्णन प्राचीन वर्णन शैली के अनुसार अलकार रूप में किया गया है। जिसका मतलब यह निकाला जासकता है कि जब पृथ्वी के गर्भ में भूकम्प को पैदा करने वाला भयकर सघर्ष पैदा होता है तब ससार को क्षुब्ध करने वाला भयकर भूकम्प होता है जिससे पृथ्वी फट कर उसमें से ज्वाला

मुखी का उद्गम होता है। जब ज्वाला मुखी के आग्नेय पाषाण क्रमशः शीतल होने लगते हैं तब उसके अन्तरद्वि में उड़ने वाले खनिज द्रव्य जल के साथ मिल कर भाप के रूप में ऊपर आकर जमने लगते हैं। इन्ही जमे हुए खनिजों में पारद भी पाया जाता है।

पाश्चात्य भूगर्भ शास्त्रियों के मतानुसार संसार में पारद आर्कियन से क्वाटर्नरी आयु प्रदर्शित करने वाले शिलाव्यूहों में पाया जाता है। यह आयु १ करोड़ ७५ लाख वर्ष से ५० लाख वर्ष के लगभग मानी जाती है। इनमें पाया जाने वाला पारद अनेक प्रकार के रूप रंग वाले विभिन्न जातीय जलज और आग्नेय पाषाण खडों में, व्याप्त मिलता है।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध भूगर्भ शास्त्री रैंसम् और स्पर नामक विद्वानों के मतानुसार पारद सदा ज्वाला मुखी आग्नेय पाषाणों के सिलसिले ही में पाया जाता है। क्योंकि इसका अस्तित्व अधिकांश में अर्वाचीन ज्वाला मुखी पाषाणों में ही पाया गया है।

मगर इस सिद्धान्त का खडन करने वाली कुछ बातें ऐसी हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जासकती। स्पेन देश की अल माडम नामक बड़ी और अत्यन्त प्राचीन खदानों में पारद ११०० फीट की गहराई पर पाया जाता है। इसी प्रकार अमेरिका देश की केलिफोर्निया, न्यूइड्रिया और न्यूअमाडन (जिसमें कि पारद १२०० फीट की गहराई पर मिलता है) नामक खदानें भी ऐसी हैं जिनमें पारद मिलता है और जिनका सम्बन्ध ज्वालामुखी से नहीं हैं।

इटली और अमेरिका के अन्दर पारद के कूप मिलते हैं। जिनकी गहराई २४५० फीट तक है। कहीं २ पर भूगर्भ के अन्दर पारद निकाल ने के लिये सौ २ मील की गहरी खुदाई भी हुई है। रस रत्न समुच्चय के कर्ता ने जहां पांच कूपों का उल्लेख किया है वहाँ इस समय संसार में १८ कूप (Shafts) ऐसे पाये जाते हैं जिनसे पारद निकाला जाता है।

इससे पता चलता है कि पारद एक खनिज द्रव्य है जो ज्वला मुखी के पाषाण खडों के अतिरिक्त भूगर्भ के गहरे कूपों से भी प्राप्त किया जाता है। यही एक ऐसी धातु है जो पृथ्वी से द्रव रूप में प्राप्त होती है, शेष सब धातुएँ ठोस रूप में प्राप्त होती हैं। इसीलिये इसको अंग्रेजी में "क्विक सिल्वर" भी कहते हैं।

——:×:——

पारद का इतिहास

प्राचीन आर्य ग्रथों से पता चलता है कि जिस प्रकार वेदों के आदि प्रवर्तक ब्रह्मा और आयुर्वेद के आदि प्रवर्तक अश्विनिकुमार हैं, उसी प्रकार रसतंत्र और रसायन विद्या के आदि प्रवर्तक भगवान

शिव हैं। ऐसा कहा जाता है कि पारद के द्वारा देह की सिद्धि और लोह सिद्धि (लोहे से सोना बनाना) का ज्ञान सबसे पहले महादेव ने पार्वती को कराया।

यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि आर्य संस्कृति के सबसे प्राचीन ग्रंथ- ऋगवेद में पारद का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। उसमें सोना, चाँदी और तांबा इन तीन धातुओं का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद में कृष्ण आयस के नाम से लोहे का उल्लेख भी मिलता है। उसके पश्चात् अथर्व वेद में इन चार धातुओं के साथ कांसा, पीतल, इत्यादि मिश्रित धातुओं का उल्लेख भी मिलता है मगर उसमें भी पारद या दूसरी किसी द्रव धातु का उल्लेख नहीं मिलता। वैदिक काल के पश्चात् ब्राह्मण ग्रंथों, ग्रह्य सूत्रों और दर्शन ग्रंथों में भी पारे का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

दर्शन ग्रंथों के समकालीन या उनसे कुछ पीछे अथवा ईसा से करीब १ हजार वर्ष पूर्व महर्षि आत्रेय के समय में जब कि आयुर्वेद ने स्वतंत्र विज्ञान का रूप धारण किया उस समय भी पारद का उल्लेख किसी ग्रंथ में नहीं मिलता, यहां तक कि आत्रेय संहिता नामक आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ में भी इसका उल्लेख नहीं है। आत्रेय संहिता का प्रतिसंस्कार ईसवी सन् ७८ में आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध विद्वान महर्षि चरक ने किया जो इस समय चरक संहिता के नाम से प्रसिद्ध है। उस में भी सोना, चांदी, तांबा लोह और वंग इन पांच धातुओं का उल्लेख पाया जाता है। पारद का वर्णन उसमें भी नहीं मिलता।

हां सुश्रुत संहिता के अन्दर लेप वर्ग की औषधियों में एक स्थान पर पारद का वर्णन पाया जाता है, जो कि उसके आरम्भिक ज्ञान का द्योतक है।

इस सारे घटना चक्र मे कई विद्वान इस बात का कि पारद के द्वारा देह सिद्धि और लोह सिद्धि का ज्ञान महादेव ने पार्वती को कराया, खण्डन करते हैं। इस खण्डन की पुष्टि में वे यह दलील देते हैं कि यदि शिवको रस शास्त्र का प्रथम आचार्य माना जाय तो उनका रचा हुआ रस तंत्र भी उतना ही पुराना होना चाहिये जितने पुराने वे स्वयं हैं अर्थात् जिस प्रकार शिव की उत्पत्ति सृष्टि के आरंभ से हैं उसी प्रकार रसतंत्र की उत्पत्ति भी सृष्टि के आरम्भ से ही होना चाहिये। और उसके साथ ही, रस शास्त्र के अधिनायक पारद की स्थिति भी उतनी ही प्राचीन मानी जाना चाहिये परन्तु अभी तक कोई भी प्रमाण ऐसा उपलब्ध नहीं है जो पारद के ज्ञान को २ हजार वर्ष से अधिक पुराने समय में ले जा सके। जब पारद ही २ हजार वर्ष की पुरानी चीज है तो उसके प्रवर्तक महादेव का सृष्टि के आरंभ में होना एक असंगत बात है।

आधुनिक ऐतिहासिक भित्ती पर अगर देखा जाय तो यह दलील वास्तव में बहुत कुछ सत्य मालूम होती है और यह भी एक हमारे देश में आम रिवाज सा रहा है कि अगर कोई विद्वान किसी नवीन वस्तु की खोज करता था तो उस खोज के पीछे उसकी पुष्टि के लिये उसके स्थापन कर्ता के नाम

पर अपने किसी इष्ट देव या किसी प्रसिद्ध ऋषि का नाम लगा दिया करता था। सम्भव है रसतंत्र के विद्वानों ने भी इसी पद्धति के वश होकर अपने अन्वेषणों के पीछे शिव का नाम लगा दिया हो।

मगर केवल ऐतिहासिक भित्ति के ऊपर निर्भर रहकर किसी तत्त्व के संबन्ध में अंतिम राय देदेना हमारे ख्याल से बहुत भूल भरी बात होगी। क्योंकि यह तो एक निश्चित बात है कि इतिहास अभी तक अपनी पूर्णावस्था को नहीं पहुचा है और न पुरातत्व के विद्वान भी इस का दावा कर सकते हैं कि उनका शास्त्र पूर्ण हो गया है। अभी तक तो यह हालत है कि कोई दिन भी ऐसा नहीं बीतता कि जिस दिन इन शास्त्रों के सम्बन्ध में नवीन खोज नहीं होती हो और जिससे प्राचीन खोजों का खडन न होता हो। जो शास्त्र अभी तक ऐसी प्रयोग की हालत में चल रहा हो और जिसमें नित्य परिवर्तन हो रहे हों, उसके आधार पर यह कह देना कि मनुष्य जाति को तीन हजार वर्ष पहिले पारद का ज्ञान नहीं था, युक्ति संगत नहीं जचता।

बात यह है कि हमारे देश के साहित्य को समय के ऐसे २ भीषण प्रहार सहन करने पडे हैं कि जिन प्रहारों से उसकी असलियत भी कई अशों में नष्ट हो गई। जिस देश के साहित्य को जला २ कर बड़ी २ फौजों ने महिनों तक खाना पकाया हो, उस देश के साहित्य के अवशिष्ट अश से जो इतिहास बना हो, उस इतिहास के आधार पर किसी निश्चित सत्य पर पहुँचना बहुत कठिन है। हमारा ख्याल तो ऐसा हैं कि जिस प्रकार वेदों से और धर्म शास्त्रों से हमारा आयुर्वेद शास्त्र एक स्वतंत्र अस्तित्व रखता है, उसी प्रकार हमारे यहां का रस तत्र भी आयुर्वेद शास्त्र से अपना स्वतत्र अस्तित्व रखता है। जिस प्रकार आयुर्वेद शास्त्र में पाई जाने वाली सभी जडी बूंटियों के नाम वेदों में और धर्मशास्त्रों में नहीं पाये जाते उसी प्रकार समव है रस तंत्रों के रसों के नाम आयुर्वेद और धर्म शास्त्रों ने न ग्रहण किये हों। सिर्फ इसी बात के ऊपर इस सत्य की स्थापना की प्राचीन समय में हमारे यहां पारद का ज्ञान नहीं था, नहीं की जा सकती।

जहां तक हमारा ख्याल है, जिस प्रकार आयुर्वेद का विकास उत्तरीय और मध्य भारत में विशेष प्रकार से हुआ उसी प्रकार रस तत्र का विकास मद्रास की तामील सभ्यता के अन्दर विशेष रूप से हुआ। जब हम मद्रास गये थे तब हमने देखा तो नहीं मगर सुना था कि वहाँ के चिकित्सा व्यवसायियों के पास ऐसे २ हजारों वर्ष के प्राचीन ग्रंथ हैं जो अभी तक अप्रकाशित हैं और जिनमें पारद के सम्बन्ध में कई अद्भुत बातों का वर्णन है।

इन सब बातों से हमारा विश्वास तो यही मानने के लिये तैयार होता है कि जिस प्रकार आयुर्वेद इस देश की प्राचीन वस्तु है उसी प्रकार रस तंत्र भी हमारे यहां की बहुत प्राचीन वस्तु है। अन्तर सिर्फ इतना ही है कि आयुर्वेद जहां आर्य संस्कृति की उपज है, वहां रस तंत्र द्राविड संस्कृति की उपज हैं। आयुर्वेद के देवता जहां ब्रम्हा हैं वहां रस तंत्र के देवता शिव हैं, दोनों वस्तुएँ प्राचीन हैं।

पारद के सम्बन्ध का जो ऐतिहासिक विवेचन हमने ऊपर किया है उसके सम्बन्ध में हम इतना और स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस वस्तु का महत्त्व प्राचीन काल में देह सिद्धि की अपेक्षा लोह सिद्धि के (कीमियागिरी, लोहे और तांबे से सोना बनाना) सम्बन्ध में अधिक रहा है। हलकी धातुओं से पारद के द्वारा सोना बनाने की कला हमारे यहां बहुत प्राचीन काल से रही है। इस विद्या में बहुत अनेकों सिद्ध हमारे यहां हुए हैं। इन सिद्धों में नागार्जुन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये नागार्जुन सन् १७२ के करीब राजा शालिवाहन के समय में हुए थे। इन्होंने रस रत्नाकर और रसेन्द्र मंगल नामक दो ग्रंथ लिखे हैं। रसेन्द्र मङ्गल के साथ कक्षपुट नामक एक छोटा सा ग्रन्थ और जुड़ा हुआ है। इस ग्रन्थ में रसायन विद्या या कीमियागिरी का वर्णन प्रश्नोत्तर के रूप में दिया हुआ है। इस ग्रन्थ में इन्होंने गुरु वशिष्ठ और माण्डव्य का नाम दिया है इससे मालूम होता है कि उनके पहले भी उसी परम्परा में वशिष्ठ और माण्डव्य भी हुए थे।

इन नागार्जुन के पश्चात् सन् ८१० में दूसरे नागार्जुन, सबरपाद इत्यादि और अनेक सिद्ध हुए जिनके लिखे कई ग्रन्थों का अनुवाद तिब्बती भाषा में मिलता है। मगर अप्रासंगिक होने से जिनका विवेचन करना यहां उचित नहीं समझा जा सकता।

भारतवर्ष ही की तरह मिश्र, यूनान, यूरोप इत्यादि देशों में भी कीमियागिरी के लिये पारद का महत्त्व बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है और इन देशों में भी इसके सम्बन्ध में कई अन्वेषण हुए हैं।

इस प्रकार समस्त संसार में पारद के द्वारा लोह सिद्धि और देह सिद्धि के सम्बन्ध में अनेकों प्रकार के अन्वेषण हुए मगर फिर भी भारतवर्ष में, इस सम्बन्ध में जितनी जानकारी प्राप्त की गई उतनी शायद दूसरे देशों में आज तक नहीं हो सकी। लोह सिद्धि अथवा कीमियागिरी के सम्बन्ध में जो ज्ञान यहां उपार्जित हुआ वह तो गुरु परंपरागत होने के कारण प्रायः लुप्त हो गया। अगर कहीं है भी तो बहुत दबा छिपा हुआ। उसके सम्बन्ध में विश्वसनीय रूप से कुछ कह सकना असंभव है।

मगर देह सिद्धि के सम्बन्ध में पारद का ज्ञान शास्त्र परंपरागत होने की वजह से किसी न किसी रूप में आज भी हमारे यहां विद्यमान है। यद्यपि उसके अष्टादश संस्कार और उसको बुभुक्षित करने की पद्धति का ज्ञान हमारे यहां से करीब २ लुप्त हो गया है। फिर भी जितना ज्ञान हमारे पास सुरक्षित है उसके लिये हम कह सकते हैं कि वह आज भी सर्वोत्कृष्ट है। शरीर की कायाकल्प के लिये या धातु परिवर्तन के लिये यह एक दिव्य वस्तु है। यूरोप इत्यादि देशों में आज भी यह अमूल्य वस्तु, लेप मालिश, इत्यादि बाह्यउपचार में ही विशेष रूप से काम में ली जाती है। भीतरी उपचार में वहां के लोग इसका उपयोग बहुत ही कम और डरते २ करते हैं। मगर हमारे देश में इस पदार्थ के संयोग से सैंकड़ों प्रकार के ऐसे कूपी पक्व रसों का निर्माण किया जाता है जिन्हें हमारे यहां के वैद्य दिन रात अपने

रोगियों को खिलाते हैं और मनुष्य जीवन के कठिन से कठिन प्रसंग में वे मन्त्र शक्ति की तरह काम करते हैं।

आचार्य प्रफुल्लचन्द्रराय ने रसार्णव नामक १ रस विद्या का ग्रंथ प्रकाशित किया है। इसमें पारद के महात्म्य का वर्णन करते हुए ग्रंथकार ने लिखा है कि जनता केदारेश्वर वगैरह में शिवलिंग के दर्शनार्थ जहां तहां फिरती है। उन स्थानों में जाकर दर्शन करने से जितना पुण्य होता है उतना पुण्य घर में बैठे पारद के दर्शन से हो जाता है। षट दर्शन ने मनुष्य को जो मुक्ति का मार्ग बतलाया है वह मुक्ति मनुष्य को मरने के बाद मिलती है किन्तु पारद के प्रभाव से वह मुक्ति हस्तारमलकवत् जीवित ही मिल जाती है।

पारद के खनिज

भूगर्भ के अन्दर से पारद अपने विशुद्ध रूप में कहीं २ यत्किंचित ही पाया जाता है प्रायः विशेषकर यह दूसरे यौगिक तत्वों के द्वारा ही निकाला जाता है। इन यौगिक खनिजों में प्रधान खनिज सिंगरफ, प्रवालाभ (Coralline), चर्मार (metacinnabar) हीरक द्युति (Calomel) प्राकृतिक पारद (Native mercury) रजत पारद (Silver Amalgam) इत्यादि खनिजों में यह पारद पाया जाता है। इसके सिवाय और भी कई गौण खनिज ऐसे रहते हैं जिनमें भी पारद का अंश रहता है। मगर इन सब द्रव्यों में सिंगरफ या हींगलू ही एक ऐसा प्रधान खनिज है जिस से विशेष रूप से पारद प्राप्त किया जाता है।

प्राचीन और आधुनिक पारद मे भेद

आज से कुछ वर्षो पूर्व जो पारद बाजारों में मिलता था वह आज मिलने वाले पारद की अपेक्षा अधिक अशुद्ध रहता था। क्योंकि उस समय पारद से खनिज अंशों को दूर करने की विधियां विशेष दोष पूर्ण थीं। इसलिये उसमें खनिज द्रव्यों का अंश विशेष रूप से रहता था। लेकिन आजकल जिन कारखानों में पारद को खनिज द्रव्यों से भिन्न किया जाता है, वहां खनिज से भिन्न करने के पश्चात् उसको शोरे के हलके तेजाब में डाला जाता है जिससे उसमें रहने वाले वंग, नाग, अंजन, इत्यादि खनिज तत्व उस तेजाब में घुलते चले जाते हैं और पारद धीरे २ उन धातुओं के मिश्रण से मुक्त होता हुआ चला जाता है। पूर्व काल में शोरे के तेजाब का पता न होने से पातन विधि के सिवाय पारद को शुद्ध करने की दूसरी विधि अप्राप्य थी। इसलिये उस समय जो पारद बाजारों में बिकता था वह आज के पारद से बहुत अधिक अशुद्ध रहता था।

पारद के गुण दोष

आयुर्वेदिक मत—भावप्रकाश के मत से पारा मधुर, अम्ल, कटु, तिक्त, कषाय, लवण रसान्वित स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, रसायन, योगवाही, महावृष्य और दृष्टि तथा बल को बढ़ाने वाला होता है। यह

सर्व रोग नाशक और विशेष करके कुष्ट रोग नाशक होता है। ऐसे असाध्य रोग जो दूसरी चिकित्सा से आराम नहीं होते पारे के सेवन से जरूर दूर हो जाते हैं।

पारा देह शुद्धि कारक, रोग विनाशक, पौष्टिक, मृत्युहारक और दीर्घजीवी करने वाला होता है। यह राजयक्ष्मा रोग को दूर करता है और पान के साथ भक्षण करने से सब रोगों को दूर करता है।

मूर्छित पारा—रोग नाशक और आकाश गमन की शक्ति देने वाला होता है। वधा पारा अर्थदायक होता है। पारे की भस्म यौवन, कान्ति और दृष्टि को बढ़ाने वाली होती है। यह वीर्य वर्धक, मृत्युनाशक, स्त्रियों को आनन्दजनक और योगवाही है।

अशुद्ध पारे के दोष—अशुद्ध पारे में मल, विष, अग्नि, गिरिदोष और चपलता ये पांच दोष स्वभाव से रहते हैं और रांगा तथा सीसा ये दो दोष इसमें उपाधिज होते हैं। इस प्रकार इसमें ७ दोष रहते हैं। मल के दोष से मुर्च्छा, विष के दोष से मृत्यु, अग्नि के दोष से दाह और शरीर पीड़ा, गिरिदोष से जड़ता, चचलता के दोष से वीर्य नाश, वग दोष से कुष्ट और नाग दोष से नपुसकता पैदा होती है। इस कारण इसको विधी पूर्वक शुद्ध करना चाहिये। जो मनुष्य अशुद्ध पारे का सेवन करता है वह अनेक प्रकार की व्याधियों का शिकार होता है।

पारद प्रशसा—निघंटु रत्नाकर में लिखा है कि मिट्टी के गुणों से अधिक करोड़ गुण सुवर्ण के दर्शन करने में हैं। सुवर्ण के गुणों से अधिक करोड गुण मणि के दर्शन करने में हैं, मणि के गुणों से अधिक करोड़ गुण बाण के दर्शन करने में हैं और बाण के गुणों से अधिक करोड़ गुण पारे के दर्शन करने में हैं, पारे से अधिक गुण वाला पदार्थ न हुआ और न होगा।

पारद की शुद्धि और सस्कार

रस कामधेनु नामक ग्रथके कर्ता ने पारद में ७ कॅचुल, १ भूमिज, १ गिरिज, १ जलज, १ नाग, और १ वग इस प्रकार कुल १२ दष पारद के अदर बतलाये है। इन दोषों को दूर करना पारद की शुद्धि में आवश्यक है। इन दोषों को दूर करने के लिये प्राचीन रसायनाचार्यों ने पारद के १८ सस्कार करने की व्यवस्था दी है। मगर इन १८ सस्कारों की आवश्यकता वहां होती है जहां पारद के द्वारा कम मूल्य की धातुओं को अधिक मूल्य की धातुओं में परिवर्तन करना हो। जहां पर पारद को सिर्फ औषधि कार्य के काम में लेना हो वहां इसके सिर्फ ८ सस्कार ही पर्याप्त होते हैं। इन आठ संस्कारों को देने के पश्चात् पारद बिलकुल विशुद्ध, चमकदार, स्वच्छ और चांदी के समान उज्वल आभा वाला हो जाता है।

रसेंद्र चूडामणि के मतानुसार स्वेदन, मर्दन, मूर्छन, उत्थापन, पातन, रोधन, नियमन और दीपन ये आठ स स्कार पारद को शुद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं। इसके अतिरिक्त गगन भक्षणमान, सं चारण गर्भद्रुति, बाह्यद्रुति, जारण, ग्रास, सारण कर्म, सं क्रामण, बेधन, और शरीर योग ये दस स स्कार

और होते हैं। इनके अतिरिक्त बोधन, रंजन और अनुवासन संस्कार भी माने गये हैं। शुरू के आठ संस्कार करना वैद्यों के लिये अधिक कठिन नहीं हैं। किन्तु बाकी के संस्कारों में विशेष रासायनिक कुशलता की आवश्यकता होती है। दूसरे इन संस्कारों के सम्बन्ध में रासायनिक ग्रंथों में इतना विरोधाभास है किसी एक निर्णय पर पहुंचना असम्भव है। इसलिये यहां पर आठ ही संस्कारों का विवेचन किया जा रहा है।

(१) स्वेदन संस्कार—राई, नमक, त्रिकुटा, चित्रक, अदरक और मूली ये प्रत्येक वस्तु जितना पारा हो उसका सोलहवां भाग लेकर, काजी में मिलाकर दौला यंत्र में आधे हिस्से तक भरदें। फिर दौला यंत्र के बीच में लगी हुई लकडी में पारद की कपडे में पोटली बनाकर उस लकड़ी पर इस पोटली को इस प्रकार बांधें कि वह पोटली उस हांड़ी में भरी हुई कांजी से कम से कम २ अंगुल ऊपर रहे। उसके बाद नीचे हलकी २ आंच लगाकर ३ दिन तक स्वेदन करना चाहिये।

रसेंद्र कल्प द्रुम के मतानुसार कपास के पत्तों का रस निकाल कर उसमें सोंठ, मिरच और पीपल तीनों में से प्रत्येक वस्तु पारद का १६ वां हिस्सा लेकर कपास के पत्तों के रस में मिला दें और उस रस को दौला यंत्र में भर कर ७ दिन तक पारद का स्वेदन करें।

रस सार नामक ग्रंथ के मतानुसार ६४ दिव्यौषधि, सेहजने की जड़, राई, नमक, त्रिकुटा, सज्जी और सब प्रकार के विष और उपविष, गाय, भैंस, बकरी और दूसरे पशुओं के मूत्र इन सब वस्तुओं में से प्रत्येक पारद का १६ वां भाग लेकर कांजी में मिला लें और उस कांजी को दौला यंत्र में भरकर २१ दिन तक पारद का स्वेदन करें। इससे पारद शक्तिमान और तीव्र प्रभावी हो जाता है।

यहां पर यह ख्याल में रखना चाहिये कि जब एक दिन पारद का स्वेदन हो जाय तो उसको उस पोटली में से निकाल कर नागबला, अतिबला, केंचुए, मेषश्रृंगी और चौलाई इन सब चीजों के साथ एक २ घन्टा खरल करके कांजी के साथ बराबर धोते जायें। ऐसा ६ बार करें। उसके पश्चात् दूसरी बार दौला यंत्र में स्वेदन के लिये चढावें।

बहुत से वैद्य दौला यंत्र में कांजी और दुसरी स्वेदनीय औषधियों को भरकर उसमें पारे की पोटली को ऐसी लटका देते हैं कि वह पोटली उस कांजी में डूब जाती है। मगर ऐसा नहीं होना चाहिये। दौला यंत्र वास्तव में स्वेदन देने वाला यंत्र है। इसलिये पारद की पोटली को कांजी से इस प्रकार ऊंची रखना चाहिये कि वह उसमें डूबे नहीं बल्कि उसकी भाफ उसको लगती रहे।

(२) मर्दन संस्कार—रस रत्न समुच्चय के मतानुसार घर का धुंआ, ईंट का चूरा, दही, गुड़, सेंधानिमक और राई इन सब चीजों में से प्रत्येक वस्तु पारे का १६ वां हिस्सा लेकर उनमें पारद को तीन दिन तक मर्दन और प्रक्षालन करने से पारद का मर्दन संस्कार हो जाता है।

रसेन्द्र मगल नामक ग्रंथ के मतानुसार भेड़ की जली हुई, ऊन, हल्दी, नमक, ईंटका चूरा, घरका धुआं, सरसों और राई इनमें से प्रत्येक वस्तु पारद मे १६'वां भाग लेकर, कांजी और नींबू के रस के साथ मिलाकर उसमें पारद को डालकर खूब खरल करें। दिन भर खरल करके शाम को कांजी में उस को अच्छी तरह से धोलें। दूसरे दिन फिर इसी प्रकार मर्दन करके कांजी में धोलें। इस प्रकार ३ दिन तक मर्दन करने से पारद निर्मल हो जाता है।

(३) *मूर्च्छन संस्कार*—जब पारद मर्दनीय द्रव्यों के साथ घुटता हुआ अपनी चपलता को छोड़कर कज्जल सदृश अर्थात् आभा, प्रभा रहित होकर उन मर्दनीय औषधियों में मिल जाय तब समझना चाहिये कि पारद मूर्च्छित हो गया।

रसेन्द्र मंगल के मतानुसार राई, कपास, मकोय, मेढासिंगी, और काला धतूरा इनमें पारद को घोटकर कांजी में धोकर धूप में सुखाना चाहिये। ऐसा ७ बार करने से पारद का मूर्च्छन संस्कार होता है।

रस सार नामक ग्रंथ के कर्ता इसके मूर्च्छन संस्कार की एक और विधि बतलाते हैं। उनके मतानुसार पारद को पहले विष और त्रिफला में मर्दन करे। फिर कटेरी, सातों उपविष, ककोड़ा कद, क्षीरकंद, चित्रक और घीगवार के रस में अलग २ एक २ प्रहर तक उसको खरल करके कांजी से बार २ धोने और सुखाते जायँ। फिर एक मिट्टी का सराव लेकर उस सराव में उपरोक्त औषधियों की लुगदी का पाव इन्च मोटा लेप लगा कर सुखा लें। जब वह सूख जाय तब उस लेप पर नीचे कुछ पीसा हुआ सेंधानिमक बिछा दें। फिर जितना पारद उसमें रखना हो उतने ही वजन का नौसादर पीस कर उसमें से आधा नौसादर सेन्धे निमक पर बिछा दें। उस नौसादर पर पारद को रख कर बाकी का आधा नौसादर उस पर ढँक दें। फिर उस सराव का खाली हिस्सा पिसे हुए निमक से दबा २ कर भर कर उसके किनारे दबा दें। फिर उस पर ढक्कन लगा कर उसकी सन्धियों को अच्छी तरह बन्द करदें। इस यन्त्र को किन्नर यन्त्र कहते हैं। जब यह यन्त्र तैयार होजाय तब इसे चूल्हे पर चढा कर उस चूल्हे के नीचे दीपक के समान अग्नि लगा कर १ प्रहर तक रखें। इस क्रिया से कुछ पारद रस कपूर के रूप में परिणित होजाता है और कुछ वैसा ही रह जाता है। जो पारद रस कपूर के रूप में परिणित जाता है वही मूर्छित समझा जाता है। और उसी के लिये फिर चौथा उत्थापन संस्कार किया जाता है।

(४) *उत्थापन संस्कार*—किन्नर यन्त्र से मूर्च्छित किये हुए पारद को निकाल कर उसका उत्थापन करना चाहिए। रस सार नामक ग्रंथ का कर्ता लिखता है कि जितना मूर्च्छित पारद हो उससे सोलवां भाग अमूर्छित पारद जो कि मूर्छित होने से बच जाता है। उसमें मिला देना चाहिये। फिर उसको खरल में डाल कर उसमें नमक, सुहागा और शहद मिला कर मर्दन करना चाहिये। फिर उस सारी पिस्टी को निकाल कर वस्त्र में बांध कर दौला यन्त्र में स्वेदन देना चाहिये। ऐसा एक दिन करने से पारद अपने पूर्व रूप में आजाता है अर्थात् उसका उत्थापन हो जाता है। इस प्रकार पारद

को २१ बार मूर्च्छित करके उत्थापन करने से पारद शुद्ध होता है ।

(५) *पातन संस्कार*—कूपीपक्वरसनिर्माण के लेखक वैद्य राज हरिशरणानंदजी लिखते हैं कि मूर्छित पारद को पूर्व रूप में लाने के लिये अथवा उसका उत्थापन करने के लिये ही पातन संस्कार की आवश्यकता हुई है। क्योंकि जो पारद यौगिक में परिणित हो जाता है उसे पूर्व रूप में लाने के लिये, यह पंचम संस्कार ही ऐसा संस्कार है जो पारद को पूर्णतया यौगिक से भिन्न कर सकता है। अन्य जितने भी पारद को मूर्च्छन के बाद उत्थापन करने के संस्कार बतलाये हैं उनमें प्रायः पारद नष्ट पिष्ट होजाता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि जो पारद रस कपूर जैसे यौगिक में परिणित हो जाता है, वह जल या कांजी आदि द्रव्यों में घुलनशील होता है। यदि ऐसे मूर्च्छित पारद को उत्थापन के लिये दौला यन्त्र में स्वेदन करें तो जो बाष्प उसको उड़ कर लगती रहती है उस बाष्प के प्रभाव से वह जल में घुल जाता है। फिर जब उसे कांजी मे धोवें तो जितना मूर्छित पारद होगा सब उस कांजी में घुल मिल कर बह जायगा। इस तरह पारद की बहुत हानि होती है। इसलिये पारद को मूर्च्छन के बाद उत्थापन करने के लिये सीधे पातन विधि का प्रयोग करना चाहिये। उत्थापन तो पारद को पूर्व रूप में लाने का नाम है कोई विशेष संस्कार नहीं।

रस ग्रंथों में पातन की तीन प्रकार की विधियां बतलाई हैं। अधः पातन, उर्ध्व पातन और तिरियक पातन। पारद को ऊपर की ओर उड़ा कर शीतल करने की विधि को उर्ध्व पातन, नीचे की ओर लेजा कर शीतल करने की विधि को अधः पातन और तिरछी ओर लेजा कर शीतल करने की विधि को तिरियक पातन कहते हैं।

पातन सस्कार की प्राचीन विधि इस प्रकार है। उत्थापन संस्कारित पारद ६४ पल लेकर उसमें १ पल शुद्ध तांबे का चूर्ण, १६ पल नींबू का रस, और ३२ पल सेन्धा नमक मिला कर इतना खरल करें कि तांबे और पारे की पिष्टी बनजाय। इस पिष्टी को अधः पातन या उर्ध्व पातन यन्त्र के द्वारा पातन करके फिर स्वेदन करें तथा फिर उसी प्रकार ताम्र लेकर नींबू के रस और सेन्धे नमक के साथ पिष्टी बनावें और फिर उसे सुखा कर उसका पातन करें। इस प्रकार ७ बार करने से नाग और बंग दोष की जो शका रहती है वह भी दूर हो जाती है।

दूसरे एक ग्रन्थ में लिखा है कि त्रिफला, राई, सेहजने की जड़, त्रिकुटा, नमक, चित्रक और धान्याभ्रक सब पारद के बराबर लेकर कांजी डाल कर इतना खरल करें कि पारद की पिष्टी बनजाय फिर उसे सुखा कर तेज अग्नि पर उसका पातन करें। इस तरह ७ बार करने से पारद नाग और बंग के सूक्ष्म दोषों से रहित हो जाता है।

पारद के अष्ट संस्कारों में पातन संस्कार सब से अधिक महत्व का संस्कार है। इस संस्कार के

द्वारा पारद के अन्दर रहने वाली सब प्रकार की खनिज अशुद्धियां दूर हो जाती हैं। इसीलिये कई ग्रन्थों में यह विधान दिया है कि हींगलू से पातन संस्कार द्वारा निकाला हुआ पारद बिलकुल शुद्ध होता है और वह हर औषधि के कार्य में लिया जा सकता है। इस पातन संस्कार की अनेक विधियां हमारे प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित है। मगर आज कल के नवीन पाश्चात्य आविष्कारों में Quartz नामक एक प्रकार के चमकीले पत्थर से तिरियक पातन यन्त्र बनाये जाते हैं। ये यन्त्र विलायती कम्पनियों के यहां बने बनाये मिलते हैं। ये कांच के समान स्वच्छ और पारदर्शी होते हैं और अग्नि पर इनको चढाने से इनके टूटने का या तड़कने का डर नहीं रहता। इन यन्त्रों में विशेषता यह रहती है कि इनमें एक नली ऐसी लगाई जाती है जिससे यन्त्र के भीतर की हवा खींच कर एक दम बाहर निकाली जा सके।

इस यन्त्र के आविष्कारकों का विश्वास है कि यत्र के अन्दर से अगर हवा बिलकुल निकाल दी जाय तो पारद कम समय में कम गरमी से ही उड़ने लगता है और उसमें जो अशुद्धियां होती हैं वे नीचे बैठी रह जाती हैं। इस यत्र के द्वारा और भी जटिल मिश्रण जो किसी दूसरी विधि से भिन्न नहीं होते थे वे आसानी से भिन्न हो गये। यह अवश्य ख्याल रखना चाहिये कि इस यन्त्र के नीचे अग्नि अगर एक समान तापक्रम की रही तो बहुत उत्तम परिणाम नजर आता है। इसके लिये आज कल बिजली की भट्टियां बनाई गई है। इन भट्टियों के द्वारा जितनी आंच हम देना चाहें उतनी ही दी जा सकती हैं। ऐसे निश्चित उत्ताप पर जब पारद को उड़ाया जाता है तो पारद में जो भी खनिजांश घुले हुए होते हैं उन सबों को वह नीचे छोड़ देता है और जो वाष्पें इसकी दूसरी ओर शीतल होती हैं वे विशुद्ध पारद की होती हैं।

(६) *रोधन संस्कार*—पातन संस्कार के पश्चात् जो तीन संस्कार पारद के होते हैं वे पारद को वीर्यवान बनाने के लिये किये जाते हैं। क्योंकि प्राचीन रसाचार्यों का मत है कि मर्दन मूर्च्छनादि प्रथम पांच संस्कारों के बाद पारद नपुंसकता को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् उसकी कार्य कारिणी शक्ति जाती रहती है। इसलिये इसको दूर करके उसकी शक्ति को पुनर्जीवित करने के लिये ये तीन संस्कार किये जाते हैं।

राई, चित्रक, हींग, नमक, सोंठ, मिरच, पीपल, सज्जीखार इन सबको पारद से चौथाई भाग लेकर, सहजने के रस में पीस कर लुग्दी बना कर केले के पत्र में रख कर, उसके बीच में पारद रखकर, लट्ठे के कपडे की ४ तह बना कर उसमें इस पोटली को बांध दें। फिर एक घड़े में क्षार, अम्ल व मूत्र वर्ग के मूत्र भर कर उसमें वह पोटली लटका कर तीन दिन तक स्वेदन करें तो वह पारद नपुंसकता को छोड़ कर वीर्यवान बन जाता है।

रसेन्द्र चूड़ामणि नामक ग्रंथ के कर्ता लिखते हैं कि जल और सेन्धा निमक के सहित पारद को

तीन दिन तक घड़े में रखने से पारद वीर्यवान हो जाता है।

रस सारोद्धार पद्धति के कर्ता लिखते हैं कि सेन्धे निमक के चूर्ण के बीच में पारद को रख कर उसको ३ दिन या ७ दिन तक दौला यन्त्र में स्वेदन करने से उसकी नपुन्सकता दूर होकर वह वीर्यवान हो जाता है।

(७) *नियमन संस्कार*—पारद की चपलता को दूर कर उसमें स्थिरता लाने को नियमन संस्कार कहते हैं। रसार्णव नामक ग्रंथ के कर्ता लिखते हैं कि जो पारद नियमन संस्कार से युक्त होता है वह पारद इधर उधर लुढ़कता नहीं, न अग्नि पर रखने से धुआं देता है। न टूट कर उसके कण इधर उधर बिखरते ही है, न उसमें बुद बुदे उठते हैं, नियमन सस्कारित पारद को चूल्हे की अग्नि में डाल दिया जाय तो भी नहीं उड़ता। नियमन संस्कार की विधि इस प्रकार है—एक मजबूत मिट्टी चढी हुई कांच कूपी में शुद्ध पारद को डालें। उस पारद से १६ वां भाग सुहागा पीस कर उस कूपी में उसके ऊपर डाल दें। फिर उस कूपी का मुँह वज्रमुद्रा से दृढता से बंद करदें। फिर शीशी को जमीन के अन्दर गड्ढा खोद कर इतनी गहरी उतार दें कि उसकी गर्दन मात्र बाहर रहे। फिर उस खड्डे में उस शीशी के चारों तरफ इतनी बालूरेत भर दें कि वह जमीन के बराबर होजाय फिर उस रेती पर करीर या चीडकी लकड़ियों की अग्नि जलावें। अगर ये लकडियां न मिले तो धान्य तुष की अग्नि से भी काम लिया जा सकता है। २१ दिन तक इस अग्नि को बराबर जलाते रहने से पारद अग्निस्थायी हो जाता है और वह अपनी चपलता को छोड़ देता है।

रससार नामक ग्रंथ के मतानुसार लाल सेंधा नमक और त्रिकटू, इन दोनों को नीबू के रस में पीस कर इनकी २ मूस बना कर सुखा लें। इनमें से एक मूस में नौसादर को पीस कर बिछा दें, फिर उसके मध्य में पारद को रख कर उस पारद पर और नौसादर पीस कर डाल दें। फिर उस पर दूसरी मूस रख कर वज्र मुद्रा से बन्द करदें। फिर उन दोनों मूसों पर दृढ मिट्टी चढ़ा कर सुखा लें फिर जमीन में ८ अंगुल गड्ढा खोद कर उसमें उस मूस को रख कर उस गड्ढे को बालू से भर कर जमीन के बराबर करदें। फिर उस पर रोज ४ प्रहर करीर चीड़, या धान्य के तुषों की अग्नि जलाते रहें। प्रातः काल जब वह शीतल होजाय तब उस पारद को निकाल कर फिर उन्हीं चीजों की नई मूस बना कर उसी क्रिया से फिर ४ प्रहर की अग्नि दें। इस प्रकार १० दिन तक करने पर पारद अग्नि स्थाई हो जाता है।

(८) *दीपन संस्कार*—दीपन सस्कार से पारद बुभुक्षित होकर सुवर्ण के समान धातुओं को पचाने में समर्थ हो जाता है ऐसा प्राचीन रसाचार्य्यों का मत है। इस दीपन संस्कार की विधी रससार में इस प्रकार लिखी हुई है।

पहले पारद को क्षार, अम्ल, विष और मद्य में स्वेदन करलें। फिर एक बिजौरा नीबू लेकर उसको एक तरफ से काटकर उसमें पारद से १६ वां भाग नौसादर पीसकर भरदें। फिर उसमे पारद

भरदें। फिर उस कटे हुए टुकडे से उसका मुह बन्द करके कपड़े में बांधकर दोला यन्त्र में लटका कर कांजी में ४ पहर तक स्वेदन करें। फिर उस पारद को निकाल कर कांजी से धो डालें और उसी क्रिया को दूसरी बार दूसरे बिजोरे नीबू में करें। इस प्रकार २१ दिन तक इस क्रिया को करने से पारद का दीपन सस्कार होता है और उसमें समस्त धातुओं को खाने की शक्ति पैदा हो जाती है।

रूद्रयामल नामक ग्रथ में लिखा है कि पारद को सहजने के रस की ५०, अंकोल के छाल के रस की २५, चित्रक की जड़ के रस की १३, राई के रस की १२, घी गुवार के रस की ११, शंख चूर्ण की १०, बकायन की छाल के रस की ६, भांगरे के रस की ८, काले धतूरे के रस की ७, भाँग के रस की ६, शतावरी के रस की ५, आकडे के रस की ४, बावची के रस की ३, त्रिफला के क्वाथ की २, त्रिकटू के क्वाथ की १, सेन्धे नमक की १ और केंचुए की ५ भावनाएं दें। १ भावना के बाद दूसरी भावना पारद को बिना धोते ही देते जाना चाहिये। इन भावनाओं में पारद को इतना मर्दन करना चाहिये कि वह छोटे २ कणों में विभक्त होकर भावित द्रव्य के साथ मिल जाय। जब सब भावनाएँ पूर्ण हो जायँ तो उसे इतना खरल करें कि भावना के द्रव्य सूखकर पारद को छोड दें। ऐसे पारद को निकाल कर यत्न के साथ सुरक्षित रख लेना चाहिये।

पार्वती से शिवजी कहते हैं कि इस पारद के परम रहस्य को मैं तुम्हें बतलाता हू। यह पारद राक्षस मुख वाला होकर सोना, चांदी, तांबा, इत्यादि धातुओं को समुद्र की वड़वाग्नि के समान भक्षण कर लेता है। मगर यदि इस पारद का पातन सस्कार से पुनः संशोधन किया जाय तो इसकी शक्तियां नष्ट हो जाती हैं।

बुभुक्षित पारद के सम्बन्ध में मत भेद

पारदकी बुभुक्षा के सम्बन्ध में आज कल के वैद्य समाज में बहुत मतभेद है। प्राचीन रस ग्रथों में लिखा है कि जब पारद बुभुक्षित हो जाता है तब उस पारद में सोने को पचाने की शक्ति पैदा हो जाती है। उस पारद में जो सोना डाला जाता है, वह उसमें मिल जाता है और उसके मिल जाने पर भी उस पारद का वजन नहीं बढता।

इस विषय को लेकर यहाँ के वैद्य समाज में दो मत हैं। एक मत के अनुसार पारद में सोना मिल तो जाता है, मगर उसके मिलने पर जितना वजन सोने का होता है उतना वजन पारद का जरूर बढ जाता है। दूसरे मत के अनुसार अगर नियम पूर्वक सस्कार किये गये हों तो उसमें बिना वजन बढे सोने को जीर्ण करने की शक्ति पैदा हो जाती है।

इस विषय की पहली चर्चा सम्भवत. उस समय चली जिस समय काशी के प्रसिद्ध वैद्य स्वर्गीय श्याम सुन्दराचार्य ने इस बात की घोषणा की कि मैंने पारद को बुभुक्षित किया है जो स्वर्ण को पाचन कर जाता है और फिर भी उसका वज़न नहीं बढ़ता है।

उक्त वैद्यराज जी ने पारद को बुभुक्षित करने की विधी अपने रसायनसार नामक ग्रंथ में इस प्रकार लिखी है।

" हलाहल, ब्रह्मपुत्र, प्रदीपन, हलदिया, सींगिया, बच्छनाग, सौराष्ट्रिक, सक्तुक और कालकूट। इन ९ प्रकार के विषों में से प्रत्येक में तीन तीन बार अथवा सात सात बार शुद्ध पारद को घोटकर डमरू यंत्र में उड़ाते जायँ और क्षार वर्ग तथा अम्लवर्ग में दौला यत्र से स्वेदन करते जायँ। जितना पारद का वजन हो उससे अष्टमांश उग्र विष और चतुर्थांश मन्दविष लेना चाहिये और क्षार तथा अम्ल का पानी डालकर उस पारद को उस विष के साथ तब तक घोटना चाहिये जब तक पारद दीखना बन्द हो जाय और द्रव पदार्थ सूख जाय। फिर उसको डमरु यत्र से उड़ाना चाहियें। इस प्रकार नौ ही विषों में ६३ बार पारद को घोट २ कर डमरु यत्र में उड़ाना पड़ता है तथा ६३ बार ही दौला यत्र में स्वेदन करना पडता है। आचार्य श्याम सुन्दराचार्य लिखते हैं कि इतने विष मुझे प्राप्त नहीं हो सके थे इसलिये मैंने सिर्फ बच्छनाग, सींगिया और हलदिया इन तीनों ही विषों में पारद को ६३ बार घोट घोटकर डमरु यत्र में उड़ाया था।

इस क्रिया के पश्चात् ७ प्रकार के उपविष अर्थात् थूहर का दूध, आंक का दूध, धंतूरे की जड़, कलिहारी, कैनेर की जड़, चिर मिटी की जड और अफीम इन सातों चीजों में भी पारद को सात सात बार क्षार और अम्ल के पानी के साथ घोट २ कर डमरु यंत्र में उडावें और दौला यन्त्र में स्वेदन करें।

इसके पश्चात् उस पारद को सर्प विष और कांजी में घोटकर डमरु यत्र में रखकर उड़ालें और दौला यत्र में स्वेदन करलें। इतनी क्रिया के पश्चात् पारद बुभुक्षित होकर ग्रास ग्रहण करने के लिये समर्थ होता है। ग्रास ग्रहण करने के पश्चात उसका मुखी कारण किया जाता है वह इस प्रकार है।

शखद्राव, सुहागा, प्रतिसारणीय और पाचनीयक्षार, सैंधवादि लवण तथा स्वर्ण इत्यादिक धातुओं को शोधने में जिन जिन औषधियों के स्वरस काम में आते हैं उन सब के क्षार निकाल कर उनके साथ पारद को घोटने और स्वेदित करने से ग्रास ग्रहण करने के लिये पारद का मुखी करण हो जाता है। मुखी करण के पश्चात इसका जागरण संस्कार किया जाता है। उसकी विधी इस प्रकार है।

नारंगी, अम्बाड़ा, बिजोरा नींबू, जम्भीरी नींबू, कागजी नींबू, चूका, कच्चा आम, अमलवेत और करोंदा इत्यादि अम्ल वर्ग की कांजी में पारद का मर्दन स्वेदन करने से पारद ग्रास ग्रहण करने के लिये जागरूक हो जाता है।

बुभुक्षित पारद की परीक्षा

आचार्य श्याम सुन्दराचार्य लिखते हैं कि उपरोक्त विधि के साथ पारद को बुभुक्षित करके उसकी इस प्रकार परीक्षा करना चाहिये। बुभुक्षित पारद में शुद्ध किया हुआ असली सुवर्ण चौथाई भाग डाल कर २ दिन तक खूब घोटें, बाद में गाढे कपडे में उसको छाने, यदि उस कपडे में से पारद और स्वर्ण

का मिश्रण बिलकुल निकल जाय, ऊपर कुछ भी न बचे तो उस पारद को बुभुक्षित समझें। अगर कुछ अंश कपड़े के ऊपर बच जाय तो समझना चाहिये कि पारद की बुभुक्षा में अभी कुछ कसर है। ऐसी स्थिति में फिर क्षार और अम्ल वर्ग में उसका स्वेदन और मर्दन करना चाहिये।

अगर इससे भी विशेष परीक्षा करना हो तो स्वर्ण मिश्रित पारद को डमरू यंत्र में रखकर १ प्रहर की आग देकर उठालें। जब यंत्र ठण्डा हो जाय तो उसकी मुद्रा को खोलकर नीचे की हांडी में देखें। यदि स्वर्ण न मिले और वह पारद के साथ ऊपर उड़ जाय तो समझना चाहिये कि पारद बुभुक्षित होकर सुवर्ण को खागया। अगर कुछ सुवर्ण नीचे हांडी में बच जाय तो फिर उस पारद का स्वेदन मर्दन करना चाहिये। यह खयाल रखना चाहिये कि जिस समय पारद में स्वर्ण का ग्रास नहीं दिया गया था उस समय जितना पारद का वजन था उतना ही वजन, पारद में सुवर्ण का ग्रास देकर डमरू यन्त्र में उड़ाने के बाद भी बना रहे तो समझना चाहिये कि पारद पूर्ण बुभुक्षित हो गया है। अगर उसका वजन कुछ बढे तो समझना चाहियें कि पारद बुभुक्षा विधि में अवश्य कुछ न्यूनता रही है।

वैद्य श्याम सुन्दराचार्य लिखते हैं कि बुभुक्षा विधि को मैंने स्वय अनुभव में ली है और इस प्रकार बुभुक्षित पारद के योग से जो रस तैयार किये जाते हैं वे बहुत प्रभावशाली होते हैं।

ऊपर हमने श्याम सुन्दराचार्य जी की पारद बुभुक्षा की विधि और उस पर उनके मत को उद्धृत किया है। मगर इस सम्बन्ध में उन्हीं के जमाने में वैद्यों के अन्दर काफी वाद विवाद हुआ था। उसी समय उपरोक्त वैद्य जी से कुछ वैद्यों ने पर्याप्त मूल्य पर बुभुक्षित पारद का नमूना भी मांगा था जिसके उत्तर में उपरोक्त वैद्य जी ने यह कहा था कि जितना पारद मेरे पास था उसके रस बन चुके है। और पारद मेरे पास शेष नहीं है और इस प्रकार यह प्रश्न उस समय ज्यों का त्यों खड़ा रह गया था। उसके पश्चात अगर हम भूलते नहीं हैं तो अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन से भी बुभुक्षित पारद के लिये ५ हजार या १० हजार का पारितोषिक घोषित किया गया था मगर वह पुरस्कार भी अभी तक किसी वैद्य ने प्राप्त नहीं किया। इसलिये यह विषय अभी तक शंकास्पद ही बना हुआ है।

हाल ही में बनारस के कृष्ण राम शास्त्री नामक एक वैद्य ने पारद को बुभुक्षित करके सुवर्ण जारण करने की घोषणा की थी मगर उनके प्रयोग भी अभी तक सफल प्रयोगों की तरह वैद्य समाज ने मान्य नहीं किये हैं।

दूसरी तरफ पंजाब के सुप्रसिद्ध वैद्य कूपीपक्व रस विज्ञान के रचयिता कविराज हरिशरणानद जी ने भी पारद को बुभुक्षित करने के लिये शास्त्रोक्त विधि से प्रयोग किये थे। उसमें उनको सफलता नहीं मिली। अंत में उन्होंने लिखा कि बुभुक्षित पारद के जो लक्षण ग्रंथकारों ने लिखे हैं वे लक्षण किसी व्यक्ति के संस्कारित पारद में आज तक नहीं पाये गये। पारद का बुभुक्षित होना, उसका सोने को पचाना उसका भार नहीं बढना ये बातें आधुनिक रसायन शास्त्र के विरुद्ध हैं।

हींगलू से पारद को निकालना

हम ऊपर लिख आये हैं कि हींगलू एक ऐसा खनिज पदार्थ है जिसके द्वारा पारद बहुत आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। प्राचीन ग्रंथों के मतानुसार यदि अष्ट संस्कारित पारा न मिले तो उसकी जगह पर हिंगलू का निकाला हुआ पारा उपयोग में ले सकते हैं, क्योंकि यह पारद भी पातन संस्कार के द्वारा सब प्रकार के खनिज और भूमिज दोषों से मुक्त हो जाता है।

हींगलू से पारद को निकालने की प्राचीन काल से कई विधियां प्रचलित हैं। उनमें से एक विधि उत्तम हींगलू को नींबू के रस में घोटकर डमरू यंत्र के द्वारा उसमें से पारद को उड़ा लेने की आम तौर से प्रचलित है। उसके विवेचन की तो हम यहां पर आवश्यकता नहीं समझते। मगर एक नवीन विधि वैद्यराज हरिशरणानद जी ने अपने कूपीपक्व रस विज्ञान में बतलाई है उसको हम पाठकों के लाभार्थ यहां पर ज्यों की त्यों उद्धृत कर देते हैं।

हिंगुल से पारद निकालने की कई विधियां है जिन में से कुछ विधियां तो ऐसी हैं जिनके द्वारा पारद निकालने के समय बहुत सा पारद उड़ जाता या क्षीण हो जाता है और कम मात्रा में पारद वैद्यों के हाथ लगता है। इसीलिये हम उन्हें ऐसी सरल विधि बतलाते हैं जिसमें ७० तोला हिंगुल में से ६० तोला पारद प्राप्त हो सकता है।

हिंगुल को प्रथम खरल में अम्ल द्वारा भावित करके उसकी छोटी २ टिकिया बनालें और उसे धूप में रखकर खूब सुखा लें। जब वे टिकियां सूख जाय तो उनको एक मलमल के कपडे में बांध दें। अब एक मलमल का इतना बडा कपड़ा लें जो उस हिंगुल की पोटली पर २।३ तह में लपेटा जा सके उस कपडे को चावल के मांड में भिगोकर उस पर बारीक पिसे हुए कोयले को भुरभुरा कर उसकी तह चढा दें जब इस कोयले की मामूली तह चढ़ जाय तो इसे सुखा लें, जब यह सूख जाय तो इसको हिंगुल की पोटली पर लपेट दें। अब इसमें जब आप दियासलाई दिखा देंगे तो वह बराबर सुलगता रहेगा। इसे जलाकर १ मिट्टी के बडे घडे में जो भीतर से अच्छा चिकना हो रख दीजिये और उस घडे को उठाकर किसी निर्वात स्थान में रख दीजिये। घडे का आधा मुँह खुला रहने दीजिये। धीरे २ सिंगरफ से पारद निकलना आरम्भ होगा और वह उड २ कर घडे के भीतर ही लगता रहेगा दूसरे दिन जली हुई पोटली की राख निकाल दीजिये और घड़े में चारों तरफ हाथ मारिये, पारद सब एकत्र हो जायगा। उस पारद को निकाल कर लट्ठे के कपडे में डालकर पांच सात बार छान लीजिये, निर्मल पारद आपको प्राप्त होगा। इस विधि से १२ तोले हिंगुल से १० तोला पारद प्राप्त हो जायगा। कई व्यक्ति घड़े के पैंदे के २ इंच बगल में एक छोटा हवा जाने का मार्ग और बना देते हैं, ताकि सुलगती अग्नि बुझ न जाय। ऐसा पारद यद्यपि दोष रहित होता है तथापि अष्ट संस्कारि पारद जितना वीर्यवान् नहीं होता।'

मानव शरीर के ऊपर पारद के प्रभाव

मनुष्य शरीर के अन्दर जाकर पारद किस प्रकार अपनी क्रिया करता है और शरीर के भिन्न २ अवयवों पर उसके क्या २ असर होते हैं इस बात पर भी प्रकाश डालना यहाँ पर आवश्यक है।

पाक स्थली, आँत और मलस्रोत पर पारद का प्रभाव—पारद से बनाये जाने वाले रसकपूर इत्यादि क्षार पाकस्थली में जाकर मुँह, मसूड़े और दाँतों की जड़ों के द्वारा बाहर निकलते हैं। यही कारण है कि जो वैद्य उपदंश के रोगियों को बड़ी मात्रा में रसकपूर खिलाते हैं, उनके रोगियों के मसूड़े सूज जाते हैं। दांत हिलने लग जाते हैं और मुँह से अविरत लार बहने लगती है। पारद के क्षार आमाशय में पहुँचने पर विशेष जटिल यौगिक के रूप में परिवर्त्तित होकर पहले अघुलन शील होजाते हैं लेकिन फिर आमाशय के अन्दर जो नमक का अंश होता है उसकी अधिकता से घुलन शील होकर शीघ्र सारे शरीर में प्रवेश कर जाते है। यही कारण है कि वैद्य लोग पारद या रसकपूर का प्रयोग करते समय रोगी से नमक का परहेज कराते हैं। लघु आंत के ऊपरी भाग और ग्रहणी में खनिज पारद, कज्जली, रसपर्पटी, ग्रेपाउडर, अथवा केलोमल जाकर स्थानीय ग्रंथिरस (Grandular Accretions) और आँत की गति (Perist Alsis)-को बढाते हैं। इस प्रभाव का फल यह होता है कि आन्त्रिक द्रव इतनी शीघ्रता से नीचे की ओर गति करने लगते हैं कि जिससे साधारण पित्त जो स्वभाविक दशा में शरीर में पुनः शोषित हो जाता है वह नहीं होपाता और दस्त गहरा हरा होने लगता है। इसीलिये पारदीय क्षारों को रेचक माना जाता है। यह रेचक शक्ति दूसरे क्षारविरेचनों के योग से अधिक होजाती है और यही कारण है कि पाश्चात्य चिकित्सक रात्रि में ब्ल्यूपिल, अथवा केलोमल खिला कर प्रातः काल रोगी को मेगनेशिया सलफाज या और कोई क्षार विरेचन पिलाते हैं। जिससे साफ विरेचन हो जाता है। अगर किसी व्यक्ति को केलोमल आदि वस्तुएँ लेने पर किसी शारिरिक क्षमता की वजह से विरेचन न हो तो यह चीजें शरीर में दूसरे प्रकार की विकृति पैदा कर देती हैं। इसलिये रोगी की पारदीय क्षमता का पूरा विचार कर सावधानी से इसका प्रयोग करना चाहिये। पारद के यौगिक लघु आंत में होने वाली सड़ाइन को भी दूर करते हैं। इसलिये रस चिकित्सक रसपर्पटी, पंचामृत पर्पटी, स्वर्ण पर्पटी आदि प्रयोग व्यवहार में लगते हैं। ऐसे प्रयोगों से फूले हुए दस्त बन्द हो जाते हैं। पेट फूलना बद हो जाता है और रोगी के शरीर में शक्ति पैदा होती है। मगर इन प्रयोगों के साथ नमक वाले भोजन बद कर देना चाहिये।

रक्त पर पारद के प्रभाव—रक्त के अन्दर लालकणों की वृद्धि करने के लिये और रक्त की शक्ति बढ़ाने के लिये पारद के आयुर्वेदिक यौगिक बहुत सफल माने जाते हैं। मकरध्वज, चन्द्रोदय, रससिंदूर, स्वर्ण सिंदूर, मल्लसिंदूर, इत्यादि वस्तुएँ इस कार्य के लिये काम में लीजाती है और इनका बहुत उत्तम प्रभाव देखा जाता है। पारद के अधिक मात्रा में सेवन करने से कभी कभी विपरीत असर

होकर पांडुरोग हो जाया करता है। यह प्रभाव पाचन शक्ति की विकृति होने के कारण होता है या उन्नति होने के कारण इसका ठीक ठीक निर्णय अभी तक नहीं होने पाया है।

गुर्दे पर पारद का प्रभाव— केलोमल या ब्ल्यू पिल का प्रयोग करने से उसका गुर्दे पर मूत्रल प्रभाव देखा जाता है। यह प्रभाव डिजिटेलिस के योग से और भी अधिक हो जाता है। गुर्दे के रोगों में सावधानी के साथ केलोमल इत्यादि वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिये। हृदय की दुर्बलता के कारण यदि जलोदर रोग होजावे तो उसमें इसका प्रयोग लाभदायक हो सकता है।

उपदंश रोग के लिये पारद एक विशिष्ट औषधि मानी जाती है। विशेष कर उपदंश की प्रथम और दूसरी अवस्था में इसके प्रभाव विशेष अनुकूल होते हैं। पारद के अन्दर रक्त में फैले हुए उपदंश के कीटाणुओं को नष्ट करने की शक्ति है। इसीलिये उपदंश के ऊपर इसके यौगिक विशेष रूप से लाभ पहुंचाते हैं।

मनुष्य की आयु, शक्ति, प्रकृति और स्वभाव के भेद से पारद के प्रभाव में भी भेद पड़ जाता है। युवा की अपेक्षा बालक और स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष इसको विशेष रूप से सहन कर सकते हैं। गुर्दे के रोग, कठमाल, रक्तपित्त इत्यादि के रोगियों पर इसके प्रभाव बहुत शीघ्र मालूम देते हैं। कुछ विशेष व्यक्तियों पर पारद के विष का प्रभाव इतना शीघ्र होता है कि सिर्फ १ मात्रा केलोमल के देने से ही उनके मुँह से लार का बहना प्रारम्भ होने लग जाता है। डॉक्टर घोष का कथन है कि उन्होंने १ रोगी को ३ ग्रेन केलोमल को लोसिंथ के सतके साथ मिला कर दिया उसको विरेचन भी होगया, मगर फिर भी उसके मुँह से लार बहने लगी और पारदीय विष के प्रभाव उत्पन्न होगये।

शरीर पर पारद के विष के लक्षण—

पारद के सेवन से संखिया इत्यादि उग्र विषों की भांति तत्कालिक भयकर विष प्रभाव नहीं होते। फिर भी रस कपूर इत्यादि पारदीय क्षारों को उग्र विष ही समझना चाहिये। इनके अधिक या अनियमित प्रयोग से पाकाशय के अन्दर भयकर प्रभाव होता है। जिससे वमन, शूल, विरेचन, रक्तातिसार, मूर्च्छा, और कभी २ मृत्यु तक हो जाया करती है।

पारद के यौगिक अधिक लम्बे समय तक लेने से शरीर में स्थायी विष लक्षण भी दिखलाई देने लगते हैं। इसके विष का प्रथम लक्षण श्वास में दुर्गंध आना और मसूड़ों में सूजन का उत्पन्न होना है। इन लक्षणों के देखते ही अगर किसी पारदीय प्रयोग का सेवन कराया जा रहा हो तो उसे बद कर देना चाहिये। इन प्राथमिक लक्षणों के पश्चात् रोगी के मुख में धातु का सा अरुचिकर स्वाद अनुभव होने लगता है। मसूडे ऐसे सूज जाते हैं कि उनको छूने से ही उनमें खून बहने लगता है। दाँत हिल जाते हैं, मुँह से लार बहना प्रारम्भ हो जाती है और श्वास की नाली मे सूजन हो जाती है।

इसके पश्चात् जबान में चीरे पड़ने लगते हैं और यह सूज जाती है। कर्ण मूल और हनुमूल ग्रंथियां सूज जाती हैं और मसूढ़ों में व्रण होजाते हैं। धीरे धीरे लार गाढ़ी और चिकनी होकर निरन्तर मुँह से बहने लगती है। ज्वर होता है और रोगी बहुत क्षीण हो जाता है। यदि पारद की मात्रा बड़ी और अधिक समय तक ली जाय तो ये लक्षण और भी भयङ्कर होजाते हैं। इसके साथ ही दांत प्रायः गिर-जाते हैं और सारे मुख में व्रण शोथ हो जाता है। क्षय, शरीर शैथिल्य और पांडु इत्यादि रोग होजाते हैं और बार बार रक्तस्राव होने से रोगी की मृत्यु हो जाती है।

बाह्य प्रयोग में यदि पारद की भाफ से रोगी के शरीर का लगातार सम्बन्ध रहे तो उसमें एक विशेष प्रकार का शरीर कंप होने लगता है। यह कम्पन पहिले मुख मण्डल पर दिखाई देने लगता है। बाद में धीरे धीरे हाथ और पैरों की ओर बढ़ता है। जिन मांस पेशियों पर इसका प्रभाव पड़ता है वे अत्यन्त दुर्बल हो जाती हैं साथ ही मानसिक दौर्बल्य और ज्ञानेंद्रियों का क्षय होने लगता है। सामान्य लकवे में और इसमें यह भेद है कि इसका कंपन ऐच्छिक होता है। किसी कार्य की इच्छा करके मांस पेशियों को गति देते समय इसका प्रकोप अनुभव होने लगता है।

बाहरी शरीर पर पारद के प्रभाव

चमड़े पर रगड़ने से अथवा धुआं देने से पारद के यौगिक रोम कूपों के द्वारा शरीर में प्रविष्ट होते हैं। इनका असर चमड़े के ऊपर कृमि नाशक और संक्रमण नाशक होता है। एक भाग रस कपूर ५ लाख भाग जल में घोलकर उसका घोल शरीर पर छिड़कने से कीटाणुओं की वृद्धि रुकती है और एक भाग रस कपूर का २५ हजार भाग पानी में तैयार किया हुआ घोल साधारण जीवाणुओं को नष्ट करता है। १०० भाग पानी में १ भाग रस कपूर का बनाया हुआ घोल प्लेग के कीटाणुओं को तत्काल नष्ट कर देता है। चौथाई ग्रेन रस कपूर का १ औंस जल में तैयार किया हुआ घोल सूजन नाशक, सङ्को-चक, और उत्तेजक, माना जाता है।

भयंकर खुजली और कंडू की खुजली को दूर करने के लिये १ ड्राम रसकपूर को १ औंस व्हेस-लीन में मिलाकर (अंग्रेजी में इसे केलोमल आइण्टमेण्ट कहते हैं) लगाने से बहुत लाभ होता है। पारद के अनेक प्रकार के लेपों का प्रयोग गण्डमाला, गलगण्ड, अर्बुद (अस्थिका का अर्बुद, चिर कालिक) सन्धिशोथ, आदि रोगों में किया जाता है। ऐलो पैथी में पारद के योग से अंगवेंटम, हाइड्रार्जिरम, आयो-डाइडम, तथा रुब्रम नाम के मरहम तैयार किये जाते है जो कि गलगंड की एक उत्तम औषधि हैं। इसको लगाकर आंच के पास बैठने से विशेष लाभ होता है। आंखों के कुछ विशेष प्रकार के रोगों में केलोमल का अञ्जन विशेष लाभदायक होता है। सूजन को नष्ट करने के लिये हलका सिट्रिन आइंटमेंट ग्रंथियों पर लगाकर प्लास्टर लगाने से वे शीघ्र फट जाती हैं। अनेक प्रकार की स्नायुवेदना में ओलियेरम हैड्रो रजरी का द्रव ५ फी सदी मारफाइन मिलाकर लगाने से विशेष लाभ होता है।

जिन व्रणों में उपदंश के उपद्रव का सन्देह हो उनको ५०० भाग पानी में १ भाग रस-कपूर का घोल बनाकर धोने से बहुत लाभ होता है। उपदंश जन्य लिंगव्रण, जिव्हाव्रण और गुदाव्रण को धोने के लिये सायनाइड आफ मरक्यूरी का घोल बहुत उत्तम वस्तु है। उपदंश से होने वाले भयंकर नेत्र रोग मे केलोमेल का सूक्ष्म चूर्ण आंजने से लाभ होता है मगर इसको लगाते समय पोटेशियम आयोडाइड का प्रयोग पीने की दवाइयों में नहीं करना चाहिये नहीं तो कभी २ आंखों पर भयंकर सूजन आ जाती है।

उपदंश रोग और पारद

पारद उपदंश के विष का एक सुप्रसिद्ध प्रति विष है। उपदंश की पहिली और दूसरी अवस्था के विकारों मे इसका प्रभाव बहुत जल्दी नजर आता है। उपदंश की तीसरी अवस्था में इसके क्या प्रभाव होते हैं इसके विषय मे अनेक मत भेद है, उपदंश जनितलिंगव्रणों पर पारदीय औषधि का प्रयोग भीतरी और-बाहरी दोनों तरह करना चाहिये। मगर पारद के विष के लक्षण पैदा होते ही उनके प्रयोग कुछ समय के लिये बन्द कर देना चाहिये।

उपदंश की तीसरी अवस्था मे कई चिकित्सक पारद की औषधियों का प्रयोग करने की सलाह नहीं देते हैं मगर डाक्टर घोष पोटाशियम आयोडाइड के साथ इसका प्रयोग करके कई बार उत्तम लाभ उठा चुके हैं। डॉक्टर कीजका मत है कि छोटी मात्रा में लगातार २ वर्ष तक पारदीय यौगिक खिलाने से उपदश का विष शरीर से सदा के लिये नष्ट किया जा सकता है। इस कार्य के लिये अब तक ग्रीन आयोडाइड का प्रयोग करने की प्रथा चली आती है मगर उसका प्रभाव एकसा नहीं होता, इसलिये आज कल उसको कम पसन्द किया जाता है। ग्रेपाउडर भी पारिवारिक उपदश के उपद्रवों के लिये एक उत्तम वस्तु है।

मेचनी काफ में परीक्षा करके देखा है कि उपदश का विष यदि बन्दर के शरीर में या मनुष्य के शरीर में प्रवेश कराकर घंटे या २ घण्टे के बाद इन्जेक्शन करने के स्थान पर यदि पारद के लेप मसल दिये जावें तो फिरग का कोई उपद्रव पैदा नहीं होता। अगर किसी उपदश वाली स्त्री के साथ सम्भोग करके ३।४ मिनिट के बाद पारद का कोई लेप लिंगेंद्रिय पर लगा लिया जाय तो उपदश होने का खतरा कम हो जाता है।

उपदश जन्य विकारों को दूर करने के लिये चार प्रकार से शरीर में पारद को प्रविष्ठ किया जाता है। पहिला मुह के द्वारा, जिसमें ब्ल्यूपिल, कैलोमल, ग्रेपाउडर, रसकपूर, इत्यादि औषधियां मुह के द्वारा रोगी को खिलाई जाती है। शरीर में इन औषधियों का शोषण श्लेष्मधरा कला के द्वारा होता है। यह कला मुख से लगाकर गुदा पर्यंत सारे आमाशय में आवृत रहती है।

दूसरी विधी गुदा के द्वारा पारद को प्रविष्ट करने की है। ग्लेसरिन सपोजिटेरि की तरह पारे की

मरक्यूरियल सपोजिटेरी बनाई जाती है। यह उपदंश जन्य गुदा के विकार में गुदा के अंदर प्रविष्ट की जाती है।

तीसरी विधी नाक के द्वारा नस्य की तरह पारद को प्रविष्ट करने की है। इसका प्रयोग कभी २ उपदंश जन्य नाक के विकारों में किया जाता है।

चौथी विधी पारद के भाफ का स्नान करने की है। इस स्नान के द्वारा भाफ के द्वारा पारद रोगी के शरीर में पहुचाया जाता है। इस कार्य के लिये हेंड्रीली का यंत्र बहुत उपयोगी होता है। इस यंत्र में १ स्पिरिट लैम्प लोहे की जाली से चारों तरफ मढ़ा हुआ रहता है। जाली के ऊपरी भाग में चीनी की तश्तरी लगी रहती है। उसमें १ औंस के करीब जल भर दिया जाता है और लॅप जला दिया जाता है। जब पानी उफलने लगता है तब उसमें २० से ३० ग्रेन के लगभग केलोमल डालकर रोगी के पलंग या कुर्सी के नीचे रखकर उस पर रोगी को नगा करके रबड़ के क्लोक नामक चौंगे से गले तक इस प्रकार ढक कर बैठा दिया जाता है जिससे वह चोंगा शरीर से चिपटे नहीं और, समस्त शरीर ढक जाय। बीच २ में क्लॉक उठाकर भाफ को मुह तक लाने का प्रयत्न भी किया जाता है। यह क्रिया १५ मिनिट तक की जाती है। इस क्रिया में किसी सुयोग्य चिकित्सक की देख रेख बहुत आवश्यक रहतो है। अन्यथा रोगी के मूर्च्छित होने का भय रहता है। इस क्रिया के समाप्त होने पर चोंगे सहित रोगी को सावधानी के साथ उठाकर लेटा देते हैं और फिर चोंगा हटाकर, शरीर पोंछकर साफ वस्त्र पहिना देते हैं।

इस क्रिया से रोगी को बहुत दुर्बलता और कमजोरी प्रतीत होती है। मगर बहुत से डॉक्टरों का ख्याल है कि शरीर में पारद जाने से पाचन और रेचन क्रिया की जो विकृति पैदा होती है वह नहीं होने पाती और रोगी को लाभ हो जाता है। बहुत से रोगियों को मुह के द्वारा पारद के योग खिलाने पर लाभ नहीं होता उनको भी पारद के धूम्रीकरण और लेपन से अच्छा लाभ होता है।

पारद को शरीर में प्रविष्ट करने की पांचवी विधी लेपन क्रिया के द्वारा होती है, शरीर के किसी अंग पर ब्ल्यू आईंटमेंट, लिनिमेंट या पारद के ओलियेट रगड़ने से पारद रक्त के अन्दर प्रवेश कर जाता है। इस कार्य के लिये जघा का भीतरी हिस्सा या हाथ की बगल विशेष उपयोगी स्थान माने जाते हैं।

उपदश रोग के अन्दर पारद या रसकपूर का प्रयोग करने के पहिले रोगी की भली प्रकार जांच कर लेना आवश्यक है। जरासी असावधानी से भयकर अनिष्ट होने की सम्भावना रहती है। रोगी की पाचन क्रिया यदि शुद्ध न हो तो मुंह के द्वारा पारदीय यौगिक का सेवन नहीं कराना चाहिये। दुर्बल, पांडु रोगी, कंठमाला के रोगी, और गुर्दे के रोगियों को पारद कम माफिक आता है। शरीर के किसी अधिक लबे, चौड़े, भाग पर पारद को लगाने से वह शोषण होकर विष प्रभाव कर सकता है। इसलिये जहां तक सम्भव हो थोड़े से स्थान में ही पारदीय लेप को लगाना चाहिये। योनि और गर्भाशय में पारद के सोल्यूशन्स का इंजेक्शन नहीं करना चाहिये। जिन रोगियों को पारद या रसकपूर का सेवन कराया

जाय उनको शराब, आसव, अरिष्ट, तम्बाकू, सिगरेट, पेठा, ककड़ी, करेला, तरबूज, केला, मकोय का शाग, कुल्थी, तिल, अलसी का तेल, उड़द, मांस, सिरका, दही, भात, बेर, नारियल, आम, राई, सरदी, रात्रि जागरण और स्त्री प्रसंग से बचना चाहिये।

पारद से बनने वाले कूपीपक्व रसायन

यह बात ध्यान में रखने की है कि आयुर्वेद में अकेले पारद का उपयोग औषधि प्रयोग के लिये बहुत कम होता है। विशेष करके गंधक के साथ इसको मिलाकर इससे कूपीपक्व रस तैय्यार किये जाते हैं। इन रसों में मकरध्वज, चंद्रोदय, रससिंदूर, सुवर्ण सिंदूर, मल्लसिंदूर, इत्यादि रस आम तौर से प्रसिद्ध हैं। इन रसों को बनाने के लिये विशेष प्रकार की विधियां प्रचलित हैं। जिनका ज्ञान प्रत्येक वैद्य के लिये आवश्यक है। आयुर्वेदिक रसायन शाला में कूपीपक्व रस निर्माण के यंत्र और उनकी विधियां प्रधान स्थान रखती हैं। इसलिये यहां पर कूपीपक्व रस निर्माण के सम्बन्ध में थोड़ा सा प्रकाश डालना आवश्यक है।

कूपीपक्व रसों को तैयार करना वैद्य समाज के अन्दर बहुत कठिन माना जाता है। कई दफे धातुएँ कच्ची रह जाती हैं और कई दफे जैसा चाहिये वैसा रस तैयार नहीं होता। रसों के निर्माण में होने वाली सफलता पर जब हम विचार करते हैं तो हमें इसकी तह में दो तीन कारण प्रधान दिखाई देते हैं।

(१) सबसे पहिला कारण इन रसों को दी जाने वाली आंच के सम्बन्ध में हमारा अज्ञान है। धातुवाद या रसायन शास्त्र के अन्दर आंच की उचित मात्रा का ज्ञान होना बहुत आवश्यक है। गंधक और पारद के यौगिक बनाने के लिये कितनी आंच की आवश्यकता होती है उसका ज्ञान जब तक हमको नहीं होगा, तब तक हम कूपीपक्व रसायन की कला में सफल नहीं हो सकते। इसके लिये निम्न लिखित ४ बातों का ज्ञान होना, हर एक व्यक्ति के लिये आवश्यक है।

(१) जो यौगिक बनता है वह कितने उत्ताप पर यौगिक के रूप में परिणित होता है।
(२) यौगिक बन जाने पर वह कितने उत्ताप पर जाकर उड़ने लगता है।
(३) यौगिक निर्माण और वाष्पी करण के उत्ताप में कितना अंतर रहता है।
(४) कितने उत्ताप पर जाकर इसका यह यौगिक विच्छेद होता है।

ये बातें यदि प्रत्येक यौगिक निर्माण के समय हमें ज्ञात हों तो रस तैयार करते समय उसके बिगड़ने या यौगिक के बदलने या शीशी के टूटने का भय नहीं रहता है। इसमें कोई संशय नहीं कि साधारणतया हमारे प्राचीन ग्रंथों में मन्द आँच, मध्यम आँच, और तीव्र आंच के रूप में आंच के तीन भेद हमारे रसाचार्यों ने कर दिये थे। किन्तु मन्द से कितने मन्द आंच की तरफ रसाचार्यों का संकेत था यह न तो उन्होंने ही हमको बतलाया और न हम ही किसी दूसरे सूत्र से उसे जान सके। यही बात

मध्यम और तीव्र उत्ताप के सम्बन्ध में भी कहीं जा सकती हैं। जो लोग रसक्रिया के करने में अभ्यस्त हैं वे तो फिर भी उत्ताप के इस असर को समझ सकते हैं मगर जो लोग इस विषय में नवीन प्रवेश करना चाहते हैं उन लोगों के लिये उत्ताप के इस भेद का निर्णय करना बहुत कठिन होता है और यही कारण है कि हमारे यहां कई वैद्यों के हाथ से कूपीपक्व रसायन कभी तो बड़ी सफलता से बन जाते हैं और कभी हजार मगज पच्ची करने पर भी उनमें सफलता नहीं होती।

इसी कमी को दूर करने के लिये पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने कई प्रकार के तापमापक यन्त्र बनाये हैं, जिनके द्वारा हम किसी भी आंच का प्रमाण बिलकुल सही तौर पर मालूम कर सकते हैं। इन यन्त्रों में एक यन्त्र थर्मोस्कोप नामक होता है जो भट्टी के द्वार के सामने रक्खा जाता है इसमें एक लाल रंग का कांच लगा रहता है यह कांच आंच की किरणों को शोषित करता है और उन किरणों के प्रभाव से उसके अन्दर की सुई घूमती है। जितनी आँच होती है उसी अंक पर वह सुई जाकर ठहर जाती है। एक दूसरा यन्त्र थर्मो कपुल (Thermo Cowple) नाम का बनाया गया है। इस यन्त्र में तांबे, लोहे, निकल, क्रोमियम आदि मिश्र धातुओं के तारों को लेकर उनके सिरे परस्पर मिला दिये जाते हैं। इसी तरह दूसरे सिरे भी मिलाकर एक कर देते हैं। तारों का मध्य भाग अलग २ रहता है। इन तारों के एक सिरे को भट्टी में रख देते हैं और दूसरे सिर को बर्फ में दबा देते हैं। इन दोनों सिरों के बीच अपने आप बिजली की शक्ति उत्पन्न होकर उस कुंडली में फिरने लगती है। एक ओर अत्यन्त शीतल और एक ओर खूब गरम, दोनों तारों के सिरे पर जितना ताप क्रम का अन्तर होता है उसके अनुसार उसमें उतना ही शक्तिमान, विद्युद्धारा का प्रभाव उस चक्र में फिरने लगता है। इन तारों के बीच में विद्युत् धारा को नापने वाला यन्त्र लगा हुआ रहता है। उस यन्त्र में उस धारा की मात्रा के द्वारा ताप क्रम का ठीक २ पता लग जाता है। इस यन्त्र में २०० से लेकर ४०० शतांश तक गरमी के लिये तांबा, निकल, लोहा और क्रोमियम आदि धातुओं के द्वारा कॉनसेटेन नामक मिश्रित धातु तारों को जोड़ कर बनाते हैं और इससे अधिक ४०० शतांश से लेकर १६०० शतांश तक की गरमी को देखने के लिये प्लेटिनम तथा रेडियम और प्लेटिनम मिश्रित एर्विडियम नामक मिश्र धातु के तार को काम में लेते हैं। ताप नापने के लिये ये यन्त्र इतने विश्वस्त हैं कि इनसे ताप की मात्रा का बिलकुल सही ज्ञान हो जाता है। इसी यन्त्र के सिद्धांत पर कुछ ऐसे छोटे यन्त्र भी बनाये गये हैं जो सूक्ष्म से सूक्ष्म ताप की मात्रा को भी ठीक २ नाप देते हैं यहां तक कि मीलों दूर जलती हुई मोमबत्ती का भी कितना ताप है यह भी वे बतला देते हैं।

इसके अतिरिक्त आजकल कुछ बिजली की भट्टियां और कुछ कोल वायु भट्टियां ऐसी बनी हैं जिनमें बार बार किसी ताप मापक यन्त्र के लगाने की आवश्यकता ही नहीं होती, क्योंकि बिजली की भट्टी में जो तार लगे हुए होते हैं वे एक निश्चित गर्मी को ही पैदा करते हैं। इसके अतिरिक्त उनके अन्दर जो रेग्यूलेटर लगाये जाते हैं वे एक निश्चित ताप को विभाजित कर देते हैं और उसमें प्रतिबन्ध के द्वारा लगे हुए नम्बरों से यह मालूम कर लिया जाता है कि किस नम्बर का कहां तक उत्ताप

बढ़ सकता है उस नम्बर के अनुसार ताप को एक मात्रा में बांध दिया जा सकता है जिसमें जरा भी अंतर नहीं पड़ सकता। यही बात कोलवायु की भट्टी में भी पाई जाती है।

मतलब यह कि चाहे उत्ताप मापक यन्त्र के द्वारा हो, चाहे विद्युत् भट्टियों के द्वारा हो, चाहे और किसी प्रकार से हो अगर कूपीपक्व रस बनाते समय हमको आंच की मात्रा का सही २ ज्ञान रहा तो हमारी क्रिया कभी असफल नहीं हो सकती।

(२) दूसरी बात जिन चीजों को हम रस निर्माण के लिये उपयोग में लेते हैं उनकी शुद्धता और उनकी उत्तमता तथा उनके परिमाण के तरफ हमको पूरा लक्ष्य देना चाहिये। शास्त्रोक्त विधियों में में जो क्रियाएँ लिखी हैं उन क्रियाओं का अन्ध अनुकरण करने की अपेक्षा अगर उनके वैज्ञानिक तत्व को समझ कर हम निर्माण कार्य को करेंगे तो हमें अपेक्षा कृत अधिक सफलता मिलेगी। रस-सिन्दूर, मकर ध्वज, इत्यादि कूपीपक्व रसों को बनाते समय हम उसमें दुगुना, चौगुना, छः गुना और १०० गुना तक गंधक जला देते हैं और यहभी एक निश्चित बात है जितना ही अधिक गधक हम डालते जायंगे उतनाही अधिक वह यौगिक प्रभाव शाली होगा मगर गधक जलने से उस यौगिक की रसायन क्रिया में क्या २ प्रभाव पैदा होते हैं और वह क्यों अधिक प्रभावशाली होता है, इस बात का अगर हमको ज्ञान हो तो हमारी क्रिया विशेष रूप से सफल हो सकती हैं। इस विषय का अधिक ज्ञान स्वामी हरिशरणानन्द कृत कूपी पक्वरस निर्माण विज्ञान नामक ग्रन्थ से प्राप्त करना चाहिये।

कूपी पक्व रसों के भेद

कूपी पक्व रस अनेक प्रकार के होते हैं उन सबों को समझने के लिये उनके साधारणतया दो भेद किये जा सकते हैं। पहला तल लग्न रस और दूसरा ऊर्ध्व लग्न रस।

तल लग्नरस—तल लग्न रस उनको कहते हैं जिनकी वाष्पें बना कर जमाने की आवश्यकता नहीं होती। केवल उन्हें तल भाग में ही कुछ प्रहर मन्द या मध्यम आंच देकर उनका यौगिक बना लिया जाता है या यौगिक का परस्पर विनिमय कर लिया जाता है। तल लग्न रस तीन प्रकार के होते हैं।

(१) प्रथम तल लग्न रस—ऐसे होते हैं जिनमें धातुएँ और अधातुएँ अपने मौलिक रूप में इसलिये डाली जाती हैं कि गर्मी के प्रभाव से वे आपस में मिल कर एक यौगिक के रूप में हो जायँ। जैसे—प्रथम अग्निकुमार रस। इस अग्निकुमार में पारद और नाग दो धातु तत्व और गधक अधातु तत्व रहता है। कूपी में चढा कर इन तीनों के मेल से १ यौगिक बना लिया जाता है।

(२) दूसरे तल लग्न रस—ऐसे होते हैं जिनमें कुछ धातुएँ और अधातुएँ तो अपने मौलिक रूप में डाली जाती हैं और कुछ यौगिक रूप में ही डाली जाती हैं जैसे:—दूसरा अग्निकुमार रस।

इसमें पारद तो अपने मौलिक रूप में डाला जाता है। गन्धक और संखिया भी मौलिक रूप में ही डाला जाता है। किन्तु अभ्रक भस्म, हींगलू, हरताल, व ताम्र ये चारों इसमें यौगिक के रूप में पड़ते है। जब इन सबों को मिला कर और किसी वनस्पति में खरल करके कूपीपाक करते है तो जो मौलिक तत्व होते हैं वे यौगिक के रूप में परिणित होजाते हैं और जो यौगिक हैं उनमें कुछ यौगिक विनियम अवश्य होता है। ऐसे रस मन्द तथा मध्यम अग्नि पर बनाये जाते हैं।

(३) तल लग्न रस—तीसरी प्रकार के तल लग्न रस ऐसे होते हैं जिनमें समस्त तत्व प्राय यौगिक के रूपमें ही डाले जाते हैं। जैसे.—तीसरा अग्नि कुमाररस—इसमें रससिन्दूर, अभ्रक, लोह इत्यादि सब चीजें यौगिक के रूप में ही पड़ती हैं और ये सब यौगिक अग्नि प्रभाव से एक नवीन यौगिक का रूप धारण करते हैं। जिससे इनके गुणों में वृद्धि और परिवर्तन हो जाता है।

२— ऊर्ध्व लग्न रस—उर्ध्व लग्न रस भी दो प्रकार का होता है।

(१) पहला-उर्ध्व लग्नरस वह होता है जिसमें केवल एक ही धातु किसी अधातु या वायु तत्व से यौगिक में परिणित कराकर वाष्पी भूत करके कणों के रूप में जमा लिया जाता है। जैसे.—रस-सिन्दूर, रसकपूर इत्यादि।

(२) दूसरा उर्ध्व लग्न रस—वह होता हैं जिसमें धातु, अधातु कुछ मौलिक और कुछ यौगिक रूपमें मिले होते हैं। जैसे.—तालसिन्दूर, समीर पन्नगरस इत्यादि। इनमें पारद, गंधक और संखिया आदि मौलिक रूप में डाले जाते हैं और हरताल, मैनशल इत्यादि यौगिक रूपमें पड़ते हैं।

कूपी पक्वरस बनाने में आवश्यक यन्त्र

कूपी पक्व रसों के निर्माण में बालुका यन्त्र, दौलायन्त्र, वालुका गर्भपाताल यन्त्र, डमरूयन्त्र, नलिका डमरूयन्त्र इत्यादि अनेक प्रकार के यन्त्रों और सर्वार्थकरी भट्टी, गजपुट, तालादि भस्म करी भट्टी इत्यादि भट्टियों की जरूरत रहती है। इन सब यन्त्रों और भट्टियों का वर्णन यहाँ पर देने से ग्रंथ का विस्तार बढ़ जाने का बहुत डर है और यह विषय कुछ लोगों को अप्रासंगिक भी मालूम हो इस-लिये जिन लोगों को इसकी विशेष जानकारी की आवश्यकता हो उनको श्यामसुन्दराचार्य कृत रसायनसार अथवा स्वामी हरिशरणानन्द कृत कूपी पक्वारस निर्माण विज्ञान देखना चाहिये।

कूपी पक्व रसों के सम्बध में कुछ अन्य आवश्यक बातें:—

पारद के साथ धातुओं को मिलाना:—पारद के साथ नाग, बंग, स्वर्ण, चांदी इत्यादि धातुओं को मिलाना हो तो उनको दो प्रकार से मिलाया जा सकता है। (१) एक विधि तो यह है कि धातुको अग्नि पर गलाकर गली हुई हालत में ही पारद उसमें डालकर उसे अग्नि पर से उतार लें।

दूसरी विधी:—सोने, चांदी इत्यादि के वरक बना कर उन्हें खरल में पारद के साथ डालकर घोटलें।

दूसरी विधी से पहली, विधि अच्छी है।

पारद के साथ गधक मिलाना—गधक के साथ पारद को डाल कर खरल में घोटने से काले रग की कजली बन जाती है। कूपीपक्व रसों को बनाते समय जहां गधक और पारद की कजली की गई हो वहां दूसरी अधातुओं को मिलाने से पहिले इस कजली को बना लेना चाहिये। अगर पारद में धातुओं का मिश्रण करना हो तो पहले धातुओं का मिश्रण करके फिर गंधक के साथ उसकी कजली बनाना चाहिये।

भावना देनाः—रस ग्रन्थों में कई स्थानों पर कूपीपाक करने वाली औषधियों को भावना देने का विधान रहता है। ऐसी भावनाओं में जिस वनस्पति के रस की भावना देना हो उसका रस एक साथ ही नहीं डालना चाहिये। आवश्यकतानुसार जितने रसमें दवा तर हो जाय उतना रस डाल कर दवा को घोटना चाहिये। ज्यों २ दवा गाढ़ी होती जाय त्यों २ थोड़ा २ रस और देना चाहिये। जब १ वनस्पति के रस की भावना पूरी होजाय तब उस दवा को इतनी सुखा लेना चाहिये कि उसकी खरल में घुटाई नहीं होसके। पश्चात् दूसरे वनस्पति के रस या क्वाथ की भावना देना चाहिये। आखिरी भावना लगने के पश्चात् औषधि को खूब अच्छी तरह सुखा कर शीशी में भर लेना चाहिये।

तेलों की भावना—कई रसों में कई प्रकार के तेलों की भावना देने का विधान रहता है। ऐसे स्थानों पर जहाँ तेल की कोई निश्चित मात्रा न लिखी हो वहां उस औषधि में तेल इतना ही डालना चाहिये कि जिसमें वह दवा कठिनाई से घोटी जासके। फिर उसे खूब जोर लगाकर घोटना चाहिये जिससे वह तेल का अश सूख जाय। अगर घुटाई न हो तो कुटाई करना चाहिये। जब एक तेल सूख जाय तब दूसरे तेल की भावना देनी चाहिये। तेलों की भावना देने के पश्चात उसे यदि स्वेदन या पुटपाक करना हो तो इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि उसमें वह तेल का अंश जलने नहीं पावे।

कूपीपक्व रस बनाते समय अगर उस कूपी में शास्त्र विधान के अनुसार यौगिक निर्माण से अधिक गंधक डाला जाता है तो उसका बाष्पी भवन होने के बाद जलना आवश्यक हो जाता है। ऐसे समय में जब कि शीशी के मुँह पर गधक जलने लगता है और शीशी के मुह से गन्धक की ज्वालाएं उठने लगती हैं तो कई वैद्य लोग घबरा जाते हैं कि कहीं शीशी टूट न जाय और वास्तव में यदि शीशी का मुह तंग हो और उस तंग मुह में गन्धक भर जाय तो शीशी के टूटने का डर रहता है। ऐसे समय में लोहे की छड़ लेकर उसको शीशी के गले में फेरना चाहिये। यदि गन्धक जम गया हो तो उस लोहे की सलाई को लाल करके उससे उस गन्धक को शीशी के नीचे गिरा देना चाहिये। इस प्रकार शीशी का मुह उस वक्त तक खुला रखना चाहिये, जब तक वेग से लबी लबी ज्वाला निकलना बन्द न हो जाय। यदि अग्नि तेज लग रही हो तो घन्टे १॥ घण्टे में यह क्रिया पूरी हो जाती है। जब गन्धक जल जाता है तब यौगिक निर्माण होता है। उस समय उस शीशी का मुंह किसी डाट से बन्द कर देना चाहिये।

उर्ध्व लग्न रसों में जब कि गन्धक यौगिक निर्माण से अधिक डाला जाता है। उसका जलना निश्चित और आवश्यक बात होती है। कई बार जब आंच कम लगती है और गन्धक जलने में नहीं आता तो रस का शीघ्र परिपाक करने के लिये भट्टी की गरमी बढाना पड़ती है। यदि ऐसी स्थिति हो और शोशी के भीतर काफी आंच न पहुच रही हो तो एक मिट्टी का छोटा घड़ा लेकर उसके पैंदे में एक छेद इतना बड़ा कर लेना चाहिये जो उस शीशी के मुह भाग को खुला रखकर बाकी बालुका यत्र को अपने पेट में छिपा लें। उस घडे को उस बालुका यत्र पर इस प्रकार औंधा ढक देना चाहिये जिससे वह बालुका यत्र चारों तरफ से ढक जाय। इस क्रिया से थोड़ी देर में ही बालुका यत्र में इतनी गरमी बढ़ जायगी कि गन्धक जलने लगेगा और उसकी ज्वालाए निकलने लगेंगी। गधक जब वेग से जलता है तब कूपी के भीतर २८० से २६० डिग्री के भीतर याने बीच गर्मी की मात्रा होती है। जब गधक जल जाय तब शीशी में डाट लगाकर उस घडे को हटा देना चाहिये।

गधक की ज्वाला केवल रस सिन्दूर, मकरध्वज, इत्यादि रसों में ही नहीं उठती प्रत्युत जितने भी उर्ध्व लग्नरस है सब में न्यूनाधिक गन्धक जलकर ज्वाला अवश्य देता है और उस ज्वाला के उत्पन्न होने पर ही इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि अब गधक के जलने पर रस निर्माण होगा। जब तक गधक न जलेगा तब तक रस चाहे भले ही यौगिक निर्माण करले किंतु वह तल में ही बैठा रहेगा। (कूपी पक्वरस निर्माण विज्ञान)

पारद से बनने वाले कुछ प्रसिद्ध रस

बल, ओज और काम शक्ति वर्धक रस—

चद्रोदय रस—रसायन शास्त्री स्वर्गीय श्यामसुन्दराचार्य अपने रसायन सार नामक ग्रथ में चन्द्रोदय बनाने की विधि को बताते हुए लिखते हैं कि चन्द्रोदय दो प्रकार का होता है। एक अन्तर धूम चन्द्रोदय अर्थात् जिसका धुआं बाहर नहीं निकलने पावे और शीशी के अन्दर ही पारद में जीर्ण होजाय। दूसरा बहिर्धूम चन्द्रोदय अर्थात् जिसका धुआं शीशी के मुख से बाहर निकलता रहे।

बहिर्धूम चद्रोदय—स्वर्णग्रसित बुभुक्षित पारद पाव भर, शुद्ध किया हुआ आंवलासार गधक आधा सेर इन दोनों चीजों को खरल में दो दिन तक घोटकर कजली बनाले। इस तीन पाव कजली को बटजरा के अङ्कुर के स्वरस की अथवा क्वाथ की ५ भावना दें। अर्थात् उस क्वाथ में उस कजली को घोट २ कर ५ बार सुखावें। जब कजली बिलकुल सूख जाय तब उसको विधि पूर्वक कपड़ मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भरदें और उस शीशी को बालुका यत्र में रखकर चद्रोदयादि भट्टी पर चढ़ादें।

इस भट्टी में चन्द्रोदय बनाने के लिये मन्द, मध्यम और तीव्र- तीनों प्रकार की आंच क्रमानुसार चार दिन तक देना पड़ती है। इसलिये पहले पहर में बहुत हलकी आंच देना चाहिये। जिसमें अग्नि के

वेग को शीशी सहन करने लगे तथा कजली अग्निपाकर कमजोर हो जाय। उसके पश्चात् क्रम से अग्नि बढ़ाते हुए मन्द, मध्यम और तीव्र करदें।

बारंबार दो दो घन्टे में शीशी के गले को स्पर्श करते रहें। जब शीशी का गला इतना तप्त हो जाय कि उसको छू न सकें, तब भट्टी से लकड़ी निकाल कर आंच को मदी कर देना चाहिये और जब उसका गला छूने के योग्य हो जाय तब आँच को फिर तेजकर देना चाहिये। रस निर्माणकर्ता को चाहिये कि शीशी के तरफ ध्यान रखकर उसी जगह बैठा रहे नहीं तो कदाचित अधिक अग्नि लगने से शीशी फूट जायगी।

दो दिन रात लगातार अग्नि लगने पर शीशी में सलाई डालकर परीक्षा करे। यदि मोर की गरदन के समान नील वर्ण प्रकाशित होने लगे तो समझ लेना चाहिये कि शीशी एकाएक फूट नहीं सकेगी। इसलिये शीशी के मुख पर दृढ मुद्रा कर देना चाहिये। इस मुद्रा का दूसरा प्रयोजन यह भी है कि बाकी बचे हुए गंधक का धूम्र पारद में जीर्ण होने से चन्द्रोदय बहुत सुन्दर और अधिक गुणकारी बनता है। अगर सम्पूर्ण गधक का धूम्र पारद में जीर्ण होजाय, तब तो वह चन्द्रोदय बहुत ही उत्तम बनता है। अन्त में तीन घटे की तीव्र तम अग्नि देकर जो अंश कच्चा रह गया हो उसे भी पकालें और यंत्र को उतारलें। जब यत्र ठण्डा होजाय तब शीशी को बालुका यंत्र से निकाल कर उसको पानी से धोकर कपड़ मिट्टी हटा लें। बाद में सावधानी से शीशी के गले पर लगे हुए चंद्रोदय के रवों को निकाल लें।

यदि शीशी के फोड़ने से चद्रोदय के टुकडे बिखर कर कांच के टुकड़ों में मिल जाय तब उनको उपयोग में न लें।

इस प्रकार एक बार में पारद के साथ दुगुना गंधक जलता है। अगर इस प्रकार तीन बार उस को दुगुने दुगुने गंधक के साथ घोटकर आतशी शीशी में भरकर उड़ा लिया जाय तो वह षड् गुण बलि जारित चद्रोदय हो जाता है।

चन्द्रोदय की दूसरी विधि—स्वामी हरिशरणानन्द ने अपने कूपी पक्व रस निर्माण विज्ञान में चन्द्रोदय बनाने की विधि इस प्रकार लिखी है। :—

शुद्ध किया हुआ सुवर्ण या सुवर्ण के वर्क ५ तोले, शुद्ध पारद ४० तोले और शुद्ध गधक ६४ तोले इन तीनों को लाल फूलके कपास के रस में और घी गुवार के रसमें तीन २ दिन तक अग्निपर पकावें। कई लोगोंका विचार है कि सुवर्ण की जितनी मात्रा डाली जाती है वह पारद के साथ ऊपर उड़कर लगना चाहिये पारद ऐसा बुभुक्षित होना चाहिये जो सोने को लेकर उड़ जाय और जहां पारद जमें वहीं उसके साथ स्वर्ण भी जम जाय, मगर आधुनिक रसायन शास्त्र की दृष्टि से यह बात पूर्णतया सम्भव नहीं है। क्योंकि पारद और गधक का यौगिक २७५ डिग्री गरमी पर बाष्पीभूत होजाता है। किन्तु स्वर्ण १९५५ डिग्री गर्मी पर जाकर

बाष्पी भूत होता है। इन दोनों के उत्ताप की मात्रा में बहुत अन्तर है। इसलिये पारद के साथ स्वर्ण का उड़ना बहुत कठिन होता है। कई लोगों का विचार है कि जब पारद बुभुक्षित हो जाता है तब उसमें यह शक्ति पैदा हो जाती है कि वह स्वर्ण को अपने साथ लेकर उड़ जाय। मगर आधुनिक रसायन शास्त्र इस बात का कायल नहीं है। हां, यह अवश्य है कि जो धातुएँ उसके बराबर या उसके लग भग गर्मी पर बाष्पीभूत होजाती हैं उन धातुओं का कुछ अंश पारद के साथ ऊपर को उड़जाता है। मगर स्वर्ण में यह बात नहीं है। १०६३ डिग्री गर्मी पर तो सुवर्ण सिर्फ गलता है और १६५५ डिग्री आंच पर वह भाफ के रूप में परिणित होता है। ऐसी स्थितियें ३०० डिग्री पर उड़ने वाले पारद के साथ वह कैसे उड़ सकता है।

तीन दिन की अग्नि के पश्चात् चन्द्रोदय के रवे उस शीशी के मुँह पर जमे हुए मिलते हैं उनको निकाल लेना चाहिये और शीशी के पैंदे में जो सोने का अंश बचा हुआ रहता है उसको निकाल कर अलग उपयोग ले लेना चाहिये।

इस चन्द्रोदय रस को कपूर भीमसेनी, जायफल, मिर्च, लौंग इन सब चीजों के साथ समान भाग लेकर थोड़ी कस्तूरी डालकर तीन तीन रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिये। इन गोलियों को नियमित रूप से सेवन करने से मनुष्य का वीर्य, ओज और शक्ति बहुत बढ़ती है। वृद्धावस्था का दमन होता है। अकाल मृत्यु से रक्षा होती है और मनुष्य शरीर में होने वाले अनेक रोग नष्ट होते हैं।

तालचन्द्रोदय—उत्तम जाति की तबकिया हरताल को लेकर उसको तीन बार पेठे के बीच में शुद्ध करके, सुखा कर कपड़ छन करलें। फिर मिलामें के तेल में अथवा दूध या घी में शुद्ध किया हुआ गंधक २ भाग, उपरोक्त शुद्ध हरताल १ भाग, और सुवर्ण ग्रासित बुभुक्षित पारद १ भाग लेकर तीनों चीजों की तीन दिन तक घोट कर कजली करे। उस कज्जली को आतशी शीशी के चतुर्थांश भाग तक भरदें।

इस शीशी को बालुका यंत्र में रख कर सर्वार्थकरी भट्टी पर चढ़ा कर पहिले से ही तेज आंच देवें। इसमें मन्द, मध्यम, तीव्र आंच का अवलम्बन नहीं करें वरना पारद उड़ जायगा।

इस प्रकार २४ घण्टे तक तेज आंच देने पर प्रातःकालीन सूर्य के समान लाल वर्ण का परम विशुद्ध ताल चन्द्रोदय बनता है।

यह ताल चन्द्रोदय रक्त शुद्धि के लिये एक अनुपम वस्तु है। कुष्ट, दाद, खाज, विसर्पिका इत्यादि चर्म रोगों में इसके देने से बड़ा लाभ होता है। दूसरे रोगों में भी इसको उचित अनुपान के साथ देने से यह लाभ पहुंचाता है।

दूसरा तालचन्द्रोदय—पाव भर सुवर्ण ग्रासित बुभुक्षित पारद में १॥ सेर शुद्ध गंधक डाल कर उसकी कजली करे। उस कजली को नलिका डमरू यन्त्र में रख कर, २ दिन रात की अग्नि देकर

पहले षड् गुण गन्धक का जारण करले। यन्त्र के ठंडा होने पर नली के चारो तरफ लगे हुए षड्गुण गन्धक जारित चन्द्रोदय को निकाल कर उसमें समान भाग शुद्ध हरताल का चूर्ण और उतना ही शुद्ध गंधक डाल कर घोट कर कजली करलें। उस कजली को आतशी शीशी में भर कर बालुका यन्त्र में रख कर सर्वार्थकारी भट्ठी पर उस यन्त्र को रख कर, प्रातःकाल से ही अग्नि लगावें। चार प्रहर की अग्नि लगने के बाद यन्त्र को ठण्डा करके शीशी के गले पर लगे हुए सप्त गुण गंधक जारित ताल चंद्रोदय को निकाल लें।

यह ताल चन्द्रोदय ज्वर रोग के अन्दर एक अनुपम औषधि है। किसी प्रकार के परिचित ज्वर में अथवा ऐसे ज्वर में जिसका पता नहीं लगता हो कि यह कौनसा ज्वर है इसको १ रत्ती की मात्रा में शहद, तुलसी अथवा नागर बेल के पान के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। प्रायः ऐसे रोगी भी देखे जाते हैं जो कहते हैं कि मुझे भूख भी लगती है, दस्त भी साफ होता है। ज्वर और खाँसी भी नहीं है लेकिन तबियत प्रसन्न नहीं रहती। वैद्य को निदान करने में भी कठिनाई होती है। ऐसे समय में भी इस रसको देने से यह अवश्य अपना चमत्कार बतलाता है। (रसायन सार)

शिला चन्द्रोदय—अद्रक के रस में शुद्ध किया हुआ मैंशिल १ भाग, सुवर्ण ग्रासित बुभुक्षित पारद १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग। इन तीनों चीजी को खरल में डालकर कजली करलें। फिर उस कजली को कपड़ मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भरकर चार दिन रात की अग्नि दें। इसके बाद उसको उतार कर ठण्डी करके शीशी के गले में लगे हुए रस को निकाल लें।

यह शिला चन्द्रोदय कुष्ट, रक्त विकार इत्यादि रोगों को दूर करने के लिये अच्छी वस्तु है। इसकी मात्रा शरद काल में तरुण पुरुष के लिये २ रत्ती तक है बालक या वृद्ध के लिये अथवा ग्रीष्म काल में इसकी मात्रा १ चांवल से ४ चांवल तक है।

दूसरा शिला चन्द्रोदय-हलदी के योग से निकाला हुआ संखिये का तेल, हलदी के योग से निकाला हुआ हरताल का तेल बच्छ, नाग का तेल, जमाल गोटे का तेल और मिलामें का तेल (ये सब तेल बालुका गर्म पाताल यन्त्र से निकाले जा सकते हैं।) इन पांचों प्रकार के तेलों में अलग २ अथवा पांचों को इकट्ठे करके उसमें मैंसल को डालकर मन्दी २ आच से कड़ाही में गला लें। जितना मैंसल हो उससे चौथाई वजन का तेल लें। जब तेल और मैंसिल एक हो जायँ, तब उस कड़ाही में दही डालकर चमचो से चलावें। फिर उस कड़ाही में गरम पानी डालकर मैंसल को धो डालें। परन्तु यह खयाल रखें कि पानी के ऊपर तैरते हुए तेल को किसी शीशी में इकट्ठा करके रख छोड़ें। यह तेल गज चर्म, दाद खाज, श्वेतकुष्ट, इत्यादि रोगों पर लगाने से अच्छा लाभ पहुँचाता है। अगर उस धोये हुए मैंसिल में कुछ चिकनाई और रह जाय तो दो एक बार गरम जल से और धो डालें। फिर उस मैंसल को धूप में सुखाकर उसके बराबर शुद्ध गंधक और उतना ही सुवर्ण ग्रासित बुभुक्षित पारद लेकर इन तीनों

चीजों को लोहे की कड़ाही में डाल दें। उस कड़ाही को चूल्हे पर रखकर मंदी २ आंच दें और लोहे की चमची से तीनों चीजों को हिलाते जायँ। जिससे वे तीनों चीजें एक जीव हो जायं। फिर उस कड़ाही को चूल्हे से उतार कर उन चीजों को खुरच कर निकाल लें। ठण्डी होने पर वे काली मिट्टी के समान हो जायँगी। उनको कपड़े में छान लें।

इस कजली को कपड़ मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भरकर शीशी को बालुका यन्त्र में चढ़ा कर चार प्रहर की आंच दें। ठण्डा होने पर शीशी के गले पर लगे हुए शिला चन्द्रोदय रस को निकाल लें।

यह शिलाचन्द्रोदय बहुत गरम होता है। इसकी ९ चांवल से ४ चांवल तक की मात्रा मक्खन के साथ देने से, रक्त के सब दोषों को निकाल कर शरीर की सब धातुओं को पुष्ट करती है। (रसायन सार)

मल्ल चन्द्रोदय—उत्तम जाति का संखिया लेकर उसको थूहर के दूध की तीन भावनाएँ देकर खूब सुखा लें। पश्चात् यह संखिया १ भाग, स्वर्ण ग्रसित बुभुक्षित पारद १ भाग और शुद्ध गंधक २ भाग लेकर तीनों को १ दिन तक खरल में घोट कर कजली करलें। उस कजली को कपड़ मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भरकर उस शीशी को बालुका यन्त्र में रखकर चन्द्रोदय बनाने वाली भट्टी पर चढ़ा दें। २ पहर तक तो शीशी का मुंह खुला रखकर धुआं निकलने दें। जिससे कजली का वेग घट जाय और शीशी न फूट सके। फिर लिखने की चाक का डाट बनाकर शीशी के मुंह में डाल दें और गुड़ चूने से उस पर मुद्रा कर दें। पश्चात् १॥ दिन तक बबूल की लकड़ी की तेज आंच दें। फिर ठण्डा होने पर शीशी के गले पर लगा हुआ मल्ल चन्द्रोदय निकाल लें।

इस चन्द्रोदय को भीमसेनी कपूर, जायफल, लौंग, कस्तूरी, अंबर, छोटी इलायची के बीज इन चीजों के साथ घोटकर शीशी में भरकर रख छोड़ें। इसकी १ रत्ती से ४ रत्ती तक की मात्रा शहद के साथ चाटने से वीर्य के सब दोष और मदाग्नि इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। यह वस्तु बहुत कामोद्दीपक है। (रसायनसार)

अंतर्धूम चंद्रोदय—जिस आतशी शीशी में तीन सेर कजली समा जाती हो, उस शीशी में अन्तर्धूम चन्द्रोदय बनाने के लिये अष्टमांश अथवा १॥ पाव कजली भरना चाहिये, इससे अधिक कजली भरने से शीशी फूटने का डर रहता है। जिस शीशी में अंतर्धूम चन्द्रोदय बनाना हो उस शीशी के ऊपर ७ कपड़ मिट्टी करके तेज धूप में सुखा लेना चाहिये। फिर उस शीशी के मुंह पर खड़िया मिट्टी का डाट लगाकर गुड़ चूने से उस डाट की दर्जों को बन्द कर देना चाहिये। फिर मिट्टी में सने हुए चार तह कपड़े को शीशी के मुख पर लपेट कर उसको सुतली से खूब मजबूत बांध देना चाहिये। जिससे मुद्रा खिसकने न पावे। उस सुतली पर भी मिट्टी का लेप कर देना चाहिये। जब शीशी खूब सूख जाय तब उस शीशी को बालुका यंत्र में रखकर और शीशी के गले तक बालू भरकर इस बालुका यन्त्र को भट्टी पर रखकर शुरू में दो मन्द आंच देना चाहिये। फिर प्रति दिन अग्नि को क्रम से तीव्र करते जाना चाहिये।

लेकिन बालू के ऊपर निकले हुए शीशी के गले को हमेशा स्पर्श करते रहना चाहिये। यदि शीशी का गला इतना तप्त हो जाय कि जिसको स्पर्श नहीं किया जासके तो समझ लेना चाहिये कि कजली गले तक उफन कर आगई है। इसलिये तुरन्त ही भट्टी से लकड़ी को निकालकर अग्नि को कम कर दें नहीं तो शीशी जरूर फूट जायगी। जब शीशी के गले को स्पर्श करने से हाथ नहीं जले तब समझना चाहिये कि गंधक अपने स्थान पर जा बैठा। तब फिर तेज अग्नि देना शुरू करना चाहिये, परन्तु बार बार शीशी के गले को स्पर्श करके परीक्षा करते रहना चाहिये। जब २ गला अधिक गरम मालूम पड़े तब २ आंच को मन्दी करते रहना चाहिये।

इस प्रकार अग्नि को प्रतिदिन तेज करते हुए आंच देना चाहिये। प्रति दिन तेज करने का अभिप्राय यह है कि जब तक कजली का बल नहीं घटा है तब तक लगातार तेज आच देने से शीशी फूट जाती है और यदि कजली का बल नहीं घटने तक अथवा ८ दिन तक मन्दाग्नि को ही लिये बैठे रहेंगे तो एक महिने में भी शीशी नहीं पकेगी, इसलिये आंच को कम ज्यादा करते रहना चाहिये। ८ दिन की अग्नि देने के पश्चात् जब तेज आच देने पर भी शीशी का गला गरम न हो तब समझना चाहिये कि चन्द्रोदय तैयार होगया है।

यह अंतर्धूम चन्द्रोदय, बहिर्धूम चन्द्रोदय की अपेक्षा बहुत अधिक प्रभावशाली, गुणकारी और उग्र वीर्य होता है। बहिर्धूम क्रिया के द्वारा ताल चन्द्रोदय, मल्लचन्द्रोदय इत्यादि जितने भी प्रकार के चन्द्रोदय बनाये जाते हैं वे सब इस अंतर्धूम विधि से भी बनाये जासकते हैं। और बहुत अधिक प्रभावशाली होते हैं। मगर इस विधि का उपयोग सिर्फ अनुभवी वैद्यों को ही करना चाहिये जिनको आंच के सम्बन्ध का पूरा ज्ञान हो। हर एक व्यक्ति के लिये यह क्रिया खतरनाक है क्योंकि जाने अनजाने यदि शीशी फूट गई तो भयकर चोट लगने और प्राण जाने तक का भय रहता है। (रसायन सार)

मकरध्वज—हीरे की भस्म, सोने की भस्म, तांबे की भस्म, रससिंदूर, अभ्रकभस्म और लोह भस्म। सब क्रम से विवर्धित भाग लेकर घी गुवार के रस में तीन दिन तक और सेमर के रस में तीन दिन तक खरल करके आतशी शीशी में भरकर बालु का यंत्र में रखकर तीन पहर की मदाग्नि पर पकावें। फिर निकाल कर थूहर के दूध, आक के दूध और मूसली के काढ़े में एक एक दिन तक खरल करके, सम्पुट में बन्द करके, भूधर यत्र में स्वेदित करें पश्चात् निकाल कर पीसकर रखलें।

इस रस को एक रत्ती की मात्रा में पीपल, सफेद मूसली, मुलैठी और कौंच बीज के सम्मिलित चूर्ण में मिलाकर घी मिश्री के साथ खाने से और ऊपर से गाय का शुद्ध दूध पीने से मनुष्य अनेक युवतियों से रमण करने योग्य काम शक्ति को प्राप्त करता है। (रस रत्नाकर)

मकरध्वज दूसरा—३२ तोले बुभुक्षित पारद में चार तोले शुद्ध सुवर्ण के वरक घोटकर बाद में ६४ तोले गंधक के साथ उसकी कजली करलें। इस कजली में नांदनवन कपास के लाल फूलों के स्वरस

की ५ भावना दें और घी गुवार के रस की भी ५ भावना दें। जब घोटते घोटते कजली सूख जाय तब कपड़ मिट्टी की हुई आतशी शीशी में उस कजली को भरदें। इस शीशी को बालुका यन्त्र में रखकर चन्द्रोदय बनाने वाली भट्टी पर ५ दिन रात तक, मृदु, मध्यम और तीव्र के क्रम से बबूर की लकड़ी की आंच दें और चन्द्रोदय की तरह ही शीशी के तरफ ध्यान रक्खें। जिससे शीशी फूटने नहीं पावे। ठंडा होने पर शीशी के गले पर लगे हुए मकरध्वज को निकाल लें। यह मकरध्वज भी हरताल के मेल से ताल मकरध्वज, सखिया के मेल से मल्लमकरध्वज, मेंसिल के मेल से शिलामकरध्वज, इत्यादि कई प्रकार का बन सकता है। इसी प्रकार अंतर्धूम और बहिर्धूम की विधि से भी यह बनाया जा सकता है।

यह मकरध्वज उचित अनुपान के साथ देने से अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करता है और मनुष्य की कामशक्ति, जीवन की शक्ति और रोग प्रति रोधक शक्ति को हमेशा बनाये रखता है।

मदन कामदेव रस—पारद चार भाग, गंधक चार भाग, चांदी की भस्म एक भाग, सुवर्ण भस्म एक भाग। इन सब चीजों को सेमर, काकोली, दूधी, विदारी कन्द और शतावरी के रस में तीन तीन दिन मर्दन करके, आतशी शीशी में भरकर बालुका यन्त्र में रखकर हलकी आंच पर चार प्रहर तक पकावें। फिर उसमें से उसको निकाल कर कमल, तालमखाना, शतावरी, विदारीकंद, मूसली, नागबला, सेमल, कमल फूल, अंगूर, गन्ने का रस, असगंध, आंवला, वराहीकंद, सुगंधबाला और हस्तीकंद के स्वरस की अथवा क्वाथ की सात सात भावना देकर, चार चार रत्ती की गोलियां बना लेना चाहिये।

इस रस की एक गोली को शक्कर या मुनक्का के साथ लेकर ऊपर से दूध पीना चाहिये और पौष्टिक पदार्थों का सेवन करना चाहिये। इस औषधि के सेवन से मनुष्य के अंदर सैकड़ों स्त्रियों से रमण करने की शक्ति पैदा होती है। वृद्ध मनुष्यों में भी यह रस घोड़े के समान काम शक्ति को पैदा करता है। इस रस को सेवन करने वाले मनुष्य की काम शक्ति कभी क्षीण नहीं होती। (रसामृत)

मदन कामदेव रस (दूसरा)—पारद को एरण्ड, अदरक और मकोय के रस में अलग अलग खरल करके उसके दोषों की शुद्धि करले, फिर पुनर्नवाकी जड़ को कूटकर उसकी मूस बनाकर उस मूस में पारद को रखकर भूधर यन्त्र में सात बार स्वेदित करे। हर बार नई मूस को काम में लें। तत्पश्चात् समान भाग गंधक मिलाकर मकोय के रसमें दोनों को खरल करलें। फिर आतशी शीशी में उसको डाल कर, आतशी शीशी के ऊपर कपड़ मिट्टी करदें और उस शीशी के मुंह पर खड़िया का डाट लगाकर मुंह के ऊपर दो उंगल गाढी मिट्टी का लेप कर देना चाहिये। फिर उस शीशी को बालुका यन्त्र में रखकर तीन प्रहर की हलकी आंच पर पकाना चाहिये। इसके पश्चात् ठंडा होने पर शीशी में से रस को निकाल लेना चाहिये।

यह मदन कामदेव रस दो रत्ती की मात्रा में पान के साथ सेवन करने से ८० वर्ष का वृद्ध भी युवा पुरुष के समान स्त्रियों से रमण कर सकता है। (रसेंद्र कल्पद्रुम)

प्रमदेभांकुश रस—पारद को धतूरे के तेल में १ महीने तक हल्की आँच में पकावें। फिर इसी प्रकार ८ दिन तक बेल के बीजों के तेल में बहुत मन्दी आँच पर पकावें। उसके पश्चात् तेल में से पारद को निकाल कर जितना उसका वजन हो उससे आठवां भाग सोने की भस्म मिलादें। फिर दोनों का जितना सम्मिलित, वजन हो उतना ही उसमें गंधक मिला कर कजली करलें। इस कजली को आतशी शीशी में भरकर बालुका यन्त्र में चढा कर, १२ प्रहर की मध्यम आँच दें। स्वांग शीतल होने पर शीशी में जमें हुए रससिन्दूर को निकाल लें।

इस रस सिंदूर को तीन भावनाएं पोस्त के क्वाथ की, ३ भावनाएँ भांग के बीजों के क्वाथ की, १ भावना जायफल के क्वाथ की और १ भावना तालमखाने के क्वाथ की देना चाहिये। फिर एक बिदारी कन्द का हरा फल लेकर उसके बीच में गड्ढा करके उसमें इस औषधि को रख कर उसका मुँह बन्द करके उस सारे फल पर मिट्टी की मोटी तह चढ़ा कर ४-५ सेर ऊपलें कंडों की आग में भून लें। उसके पश्चात् उसको निकाल कर उसमें अभ्रक भस्म, जावत्री और लौंग, ये चारों चीजें पारद से दो २ भाग, नाग भस्म पारद से ३ भाग, रौप्य भस्म पारद से २ भाग, कान्त लोह भस्म पारद से ८ भाग, मीठा तेलिया, केशर, तज, पत्रज, इलायची और बंगभस्म ये सब पारद से २ भाग। अफीम, सोनामक्खी की भस्म पारद से आधा २ भाग। इन सब को मिला कर खरल में घोट लें। फिर इस सम्मिलित औषधि को बिदारीकंद, आक के फूल, त्रिफला, बलबीज, तांबूल-रस, सेमर, कौंचबीज, गाय का दूध, छोटीगोरखमुडी केला, सौंफ, बड़ी गोरखमुडी, अजमोद, जायपत्री, बलबीज, कंघी, मुलेठी। इन सब चीजों के स्वरस की अथवा इनके क्वाथ की तीन २ भावना देकर गोला बना लें। फिर इस गोले को कपड़े में बांध कर दौला यंत्र में लटका कर पोस्त के क्वाथ में १ दिन स्वेदन करें। फिर निकालकर १ भावना समुद्रशोष के तेलकी, २ भावना धतूरे के तेलकी २ भावना भांग के बीजों के तेलकी, २ भावना जायफल के तेल की देवें। फिर इसका गोला बनाकर उसको बिदारीकंद के फल के बीच में रख कर उस फल पर २ उंगल मोटी मिट्टी की तह चढ़ा कर ५ सेर ऊपले कंडों की आग में भून लें। फिर उस गोले को निकाल कर केशर, कस्तूरी, केवड़ा, तुलसी, गुलाब, हारसिंगार और खसके रस की या क्वाथ की तीन २ भावना देकर तयार करलें।

बृहद्योग तरंगिणी के लेखक का कथन है कि इस रसको १ रत्ती से लेकर ६ रत्ती तक की मात्रा में, १॥ रत्ती भीमसेनी कपूर, ३ रत्ती लौंग, ६ माशे मिसरी और १ तोला शहद के साथ मिलाकर खाना चाहिये और ऊपर से दूध का पान करना चाहिये। इसके सेवन से मनुष्य की कामशक्ति बहुत प्रबल होती है। इस रस को सेवन करने वाले पुरुष के साथ जो नवांगना संसर्ग करती है वह जन्म भर उसकी दासी होती है। अनेको स्त्रियों के साथ रमण करने पर भी इस रसको सेवन करने वाले का तेज और कान्ति नहीं घटती। इस रस को सेवन करने वाले की काम शक्ति घोडे के समान और शौर्य सिंह

के समान होती है। नपुंसकता को नाश करने में और कामशक्ति को तीव्र करने में यह रस अद्वितीय है।

(बृहद् योग तरंगिणी)

राज यक्ष्मा और कूपी पक्व रस

मुक्ता मृगांक रस—सुवर्ण भस्म, कान्त लोहभस्म, चांदी भस्म और पारद सब एक २ भाग। बंग और नाग भस्म ढाई २ भाग। मोती १० भाग, गंधक २ भाग सुहागी ४॥ भाग। इन सब चीजों को एक दिन कांजी में खरल करके गोला बनालें। फिर उस गोले को मैनफल के पत्तों में लपेट कर सम्पुट में बन्द करके लवण यन्त्र में रख कर ४ प्रहर तक हल्की आंच पर पकावें। फिर उसको निकाल कर १ भावना धतूरे के रस की, १ भावना भांग के रस की, १ भावना खस खस की एक भावना तिल की और १ भावना घीगुवार के रस की देकर फिर सम्पुट में बंद कर लवणयन्त्र में रख कर, तीन प्रहर की हल्की आंच पर पकावें। फिर इसमें समान भाग कस्तूरी मिलाकर रखलें।

इस मुक्ता मृगांक रस को ३ रत्ती की मात्रा में उचित अनुपान के साथ देने से राजयक्ष्मा की भयकर व्याधि में बड़ा लाभ होता है। (रस पद्धति)

मृगांक रस—पारद और सोने के वर्क दोनों को समान भाग लेकर कचनार की फली और कलिहारी के रस में खरल करें। जब पिष्टी बन जाय तब सोने से दूने मोती की पिष्टी और सोने से चौथाई सुहागी का चूर्ण इसमें मिला दें। फिर इन सब चीजों का जितना वजन हो उतना ही गंधक मिला कर खरल करके १ गोला बनालें। फिर उस गोले को सम्पुट में बांध करके लवण यन्त्र में रख कर ४ प्रहर की आंच दें। ठंडा होने पर इसको निकाल कर उसमें समान भाग गंधक और पारद दोनों वस्तुएँ फिर मिला कर खरल करके, सम्पुट में बंद कर, गजपुट में फूंक दें।

इस मृगांक रस को २ रत्ती की मात्रा में घी और शहद के साथ लेने से राजयक्ष्मा, श्वास, खाँसी, मदाग्नि, संग्रहणी, धातु शोष इत्यादि रोगों में बहुत लाभ होता है। (शार्ङ्गधर संहिता)

मृगांक रस (दूसरा)—पारद और सोने की भस्म दोनों को समान भाग लेकर जम्मीरी नीबू के रस में खरल करके दोनों के वजन से दुगुनी तांबे की भस्म और तांबे के भस्म के बराबर सुहागी और सुहागी से दूना गंधक मिलाकर जम्मीरी नीबू के रस में १ दिन खरल करके गोला बना कर दौला यन्त्र में कांजी के द्वारा स्वेदन करें। फिर उस गोले को सरावसम्पुट में बंद करके लवणयंत्र में रख कर ४ प्रहर की मन्द, मध्यम और तीव्र आंच दें। इसके बाद इसको निकाल कर उपयोग में लें।

इस मृगांक रस को १ रत्ती से ३ रत्ती तक की मात्रा में शहद और पीपल के साथ लेने से राजयक्ष्मा रोग में बहुत लाभ होता है।

ज्वर और कूपी पक्व रस

अग्निकुमार रस—पारद, गंधक लोहाष्टक भस्म, सोने की भस्म, चांदी की भस्म, तांबे की भस्म,

नाग की भस्म, बंग भस्म, लोह भस्म, जस्त भस्म, अजन भस्म इन सबको समान भाग लेकर आक की जड़ के क्वाथ में ५ दिन तक खरल करके सुखा लें। फिर आतशी शीशी में भर कर, बालुका यंत्र में चढा कर १॥ दिन की मंद आंच पर पकावें।

इस भस्म को उचित अनुपान के साथ देने से हर प्रकार के ज्वर और सन्निपात में लाभ होता है। (रत्नाकर औषध योग)

अर्धनारी नटेश्वर रस—पारद १ तोला, गधक, २ तोला, वंग भस्म, ३ तोला, तीक्ष्ण लोह-भस्म, ४ तोला, हींगलू ५ तोला, ताम्र भस्म ६ तोला, सोना मक्खी की भस्म ७ तोला। इन सब चीजों को चित्रक के काढ़े की और रेहू मछली के पित्ते की एक २ भावना देकर आतशी शीशी में भरकर ६ घंटे तक बालुका यत्र में पकाना चाहिये। फिर निकाल कर उसमें शुद्ध जमाल गोटा, पारे से आठगुना मिला देना चाहिये फिर इसे चित्रक की जड़ के क्वाथ में और रेहू मछली के पित्ते में तीन २ दिन तक खरल कर के रख लेना चाहिये।

इस औषधि को ३ रत्ती की मात्रा में अदरक के रस के साथ देने से सब प्रकार के ज्वर में लाभ होता है। (रत्नाकर औषध योग)

जीर्ण ज्वर हर रस—नाग भस्म, वग भस्म, ताम्र भस्म, खपरिया भस्म, पारद, गंधक, सुहागा, मीठा तेलिया, जमालगोटा और हरताल। इन सब चीजों को बराबर १ लेकर, २ दिन तक बड़ के दूधमें खरल करके सम्पुट में बदकर बालुका यत्र में चढाकर चार प्रहर की हलकी आंच पर पकावें। ठण्डा होने पर औषधि को निकालकर, उस औषधि को एक भावना भांगरे के रसकी और एक भावना अदरक के रसकी देकर, दो २ रत्ती की गोलियां बना लेना चाहिये।

इस रस को अदरक के रस और शहद के साथ देने से सब प्रकार के जीर्ण ज्वर में लाभ होता है। (रसकोविद)

ज्वरांकुश रस—पारद एक भाग, गंधक दो भाग, मैंसिल तीन भाग, । इन तीनों चीजों को घी-गुवार के रस में एक दिन खरल करके गोला बना लें। उस गोले को बहुत पतले तांबे के संपुट में रख कर, उस सम्पुट पर तांबे का ढकना लगाकर कपड़ मिट्टी करके बालुका यत्र में आठ प्रहर की आंच दें। ठण्डा होने पर इसको निकालकर तीन २ रत्ती की गोलियां बनालें।

इन गोलियों को अदरक के रस और शक्कर के साथ देने से सब प्रकार के ज्वर दूर होते हैं। (रसराज सुन्दर)

तालकेश्वर रस—पारद और हरताल को समान भाग खरल में डालकर, सात दिन तक जगली करेले के रस में खरल करे। फिर इनका जितना वजन हो, उतने ही वजन की तांबे के पतले पत्तों की

कटोरी बनाकर उसमें उस औषधि को रखकर, सम्पुट करके वालुका यंत्र में चढाकर चार प्रहर की मध्यम आंच पर पकावें। फिर तांबे की कटोरी के सहित सब पीस कर रखलें।

इस औषधि को शक्कर और काली मिरच के चूर्ण के साथ तीन रत्ती की मात्रा में देने से सब प्रकार के मलेरिया ज्वर और विषम ज्वर दूर होते हैं। (रसायन संग्रह)

त्रैलोक्य चूडामणि रस—पारद, गंधक और हींगलू तीनों चीजें समान भाग लेकर एक दिन जम्मीरी नीबू के रस में खरल करें। फिर निगुंडी, भांगरा, चित्रक, हींग का पानी और कटसरैया के रस में तीन २ दिन तक खरल करलें। फिर पारद के बराबर वजन के तांबे के ऐसे पतरे बनावें जिनमें कांटा आर पार होजाय। उन पतरों पर इस औषधि का गाढ़ा २ लेप करके सुखालें और उन पतरों को सराव सम्पुट में बन्द करके चार प्रहर की मध्यम आंच दें। फिर उसको निकालकर गिलोय, त्रिकटु, और मकोय के रस में खरल करके सोलहवां भाग मीठा तेलिया मिलाकर रखलें।

इसको तीन रत्ती की मात्रा में गिलोय और सूंठ के हिम के साथ देने से ज्वर में बहुत लाभ पहुँचाता है। (रसदीपिका)

सन्निपात और कूपीपक्व रस

मृत संजीवन रस—गंधक, अभ्रक भस्म, हरताल. स्वर्ण माक्षिक, मैंसिल, पारद, असगंध, जमालगोटा, सुहागी, वच, रोहिणी, कुटकी, कड़वी तूम्बी के बीज, काली मिर्च, पीपल, महुए के बीज, बंग भस्म, ताम्र भस्म, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पांचों प्रकार के क्षार। ये सब चीजें समान भाग लेकर खरल में डालकर घोटलें। फिर सम्मिलित औषधि को करेला, नीम, जम्मीरी, धतूरा, बिजोरा, कुटकी, आक, इमली, पान, चित्रक और निगुंडी के स्वरस की एक एक भावना देकर सुखालें। सूखने के पश्चात् इस औषधि को आतशी शीशी में भरकर, वालुका यंत्र में रखकर चार घण्टे की मंद, चार घन्टे मध्यम और चार घण्टे की तीव्र आंच दें। स्वांग शीतल होने पर शीशी में से औषधि को निकाल लें।

इस मृत संजीवन रस को एक रत्ती की मात्रा में लेने से हर प्रकार का सन्नीपात आराम होता है। जो व्यक्ति मृत्यु के मुख में भी पहुंच गया हो, उसको भी एक बार यह रस चेतना प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त उचित अनुपान से देने पर, यह रस उन्माद, भ्रांति, सन्यास, खांसी, श्वास, शूल, पक्षाघात और जलोदर में भी लाभ पहुंचाता है। (रत्नाकर औषध योगः)

मृतोत्थापन रस—पारद, हींगलू, लौंग और तीनों क्षार ये पांच २ तोला। मैंसिल, हरताल, गंधक, वच, मस्तगी, मीठा तेलिया, कूट, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, और सुहागी दो दो तोला। इन सब चीजों को मिलाकर सरसों के तेल में खरल करके, आतशी शीशी में भरकर, वालुका यंत्र में रखकर दो प्रहर की मन्द आँच दें। फिर उसको निकाल कर ६ भावना लहसन के तेल की, एक

भावना जमालगोटे के बीजों के तेल की, एक भावना चित्रक के काढे की और एक भावना अदरक के रस की देकर एक २ रत्ती की गोलियां बनालें।

इसमे से एक २ गोली उचित अनुपान के साथ देने से मृत्यु के मुंह मे पहुंचा हुआ सन्निपात का रोगी भी एक बार उठकर बातें करने लगता है और उसकें सब उपद्रव शान्त हो जाते हैं। अगर इसके सेवन से शरीर मे दाह पैदा हो तो शरीर पर चन्दन का लेप इत्यादि शीतलोपचार करना चाहिये। (रसराज शंकर)

कुष्ट रोग और कूपीपक्व रस

कुष्टांकुश रस—पारद भाग, गंधक दो भाग। दोनों को बावची के बीजों के क्वाथ में और निगुंडी के रसमे एक २ दिन खरल करें। फिर ताँबे के बहुत पतले पतरे की कटोरी बनाकर उसमे इस कजली को रखकर तांबे के ढक्कन से उस कटोरी को बंदकर, बालुका यत्र में रखकर ६ प्रहर की मध्यम आंच दें। इस आँच से ताँबे की कटोरी का बहुतसा हिस्सा औषधि के रूप में बदल जाता है। अतः जितना ताँबे का अंश औषधि के रूप में बदल गया हो उसको उक्त रसके साथ पीसकर मिलालें और जितना सब औषधि का वजन हो उतना ही त्रिफला का चूर्ण और उससे चौथाई भाँगरे का चूर्ण उसमें मिलादें। फिर इन सब औषधियो का जितना वजन हो उतना ही बावची का चूर्ण उसमें मिलाकर खरल करें। फिर चित्रक, नीम, अमलतास, कनेर, करज, खैर और ढाक इन सातों औषधियों का क्वाथ बनाकर, उस क्वाथ को उक्त औषधि से आठ गुना लेकर कढाही में डालकर हल्की आँच पर सुखालें। फिर इस रस को आठ गुने गौमुत्र मे डालकर हलकी आँच पर गाढ़ा करलें। उसके पश्चात् उतार कर चार २ माशे की गोलियां बनालें।

इनमे से एक २ गोली नियमानुसार उचित अनुपान के साथ देने मे सब प्रकार के कुष्ट रोगों में लाभ होता है। (रस कामधेनु)

कुष्टारिरस—पारद, गंधक, हरताल तीनों एक २ तोला, ताँबे का बारीक चूर्ण १० तोला। इन चारों चीजों को थूहर के क्षार और भिलावें के तेल में ७ दिन तक मर्दन करके सम्पुट मे बन्द करके बालुका यत्र मे रखकर ६ प्रहर की मध्यम आँच दें। स्वांग शीतल होने पर उसको निकालकर एक २ रत्ती की गोलियाँ बनालें।

इस रसको उचित अनुपान के साथ देने से सब प्रकार के कुष्ट रोगों में लाभ होता है।
(रस कामधेनु)

खांसी, श्वास और कूपीपक्वरस

अग्निकुमार रस—पारद, गंधक और नाग तीनों को समान भाग लेकर पहले नाग को अग्नि पर गलालें और उस गले हुए नाग में पारे को मिलादें। फिर उसमें गंधक डालकर खरल करलें और एक

भावना हंसराज के रस की देकर सुखालें। फिर उसको आतशी शीशी में भरकर बालुका यन्त्र में रखकर १२ प्रहर की अग्नि से पकावें। ठंडा होने पर उसको निकाल कर उसमें ८ हिस्सा मीठा तेलिया और २ हिस्सा काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर दिनभर खरल करके रखलें।

इस अग्निकुमार रस को १ रत्ती की मात्रा में ताम्बूल के रस के साथ देने से सब प्रकार की खाँसी श्वास, यक्ष्मा, कफ वृद्धि, मंदाग्नि और वात रोगों में लाभ होता है। (रसरत्नप्रदीपिका)

सर्वाङ्ग सुन्दर रस—पारद, गंधक, बच्छ नाक, हरताल, सोनामक्खी, इन सबको समान भाग लेकर, पीसकर, हंसराज के रस में २ प्रहर तक खरल करके आतशी शीशी में भर कर बालुका यन्त्र में रख कर पकाना चाहिये। जब स्वांग शीतल होजाय तब उसको निकाल कर रख लेना चाहिये। इसको २ रत्ती की मात्रा में काली मिर्च और हरड़ के साथ पीस कर देने से काली खाँसी और दूसरी सब प्रकार की खाँसियों में लाभ होता है।

रस सिन्दूर—पारद ८ भाग, गंधक १२ भाग हरताल ६ भाग मैंशिल ३ भाग, ताम्र ३ भाग, खपरिया तीन भाग, इन सब चीजों को घीगुवार के रसमें १ दिन और अनार के रस में १ दिन तक खरल करके, आतशी शीशी में भरकर बालुका यन्त्र में तीन दिन तक मन्द, मध्यम और तीव्र आंच दें। ठंडा होने पर शीशी में तय्यार रस को निकाल लें।

यह रससिन्दूर जिसको वीर विक्रम रस भी कहा जाता है। २ रत्ती की मात्रा में उचित अनुपान के साथ देने से हर प्रकार की खांसी, क्षय, वातरक्त, भयंकर ज्वर, १३ प्रकार के सन्निपात, १८ प्रकार के कोढ़, आठ प्रकार के उदर रोग और ८४ प्रकार के वात रोगों में लाभ होता है। इसके निरन्तर सेवन से मनुष्य का बुढ़ापा दूर होजाता है। (रत्नाकर औषध योग)

उदय भास्कर रस—पारद, गंधक और धान्याभ्रक तीनों समान भाग लेकर अपामार्ग के रस में १ दिन खरल करके सुखालें। फिर एक प्याले में पीसा हुआ नमक बिछा कर उस नमक के ऊपर इस औषधि को बिछा दें। फिर उस औषधि पर इतना नमक डालें कि वह सारी ढक जाय। उस नमक को खूब अच्छी तरह से हाथ से दबा दें। फिर उस प्याले पर एक दूसरा प्याला ढककर दोनों की सधियों को कपड़ मिट्टी से अच्छी तरह बंद करदें। फिर उस प्याले को बालुका यन्त्र में इस तरह रक्खें कि दोनों प्यालों की संधि तक बालू भरी रहे। इस बालुका यन्त्र को मन्दी आंच पर ६ घण्टे तक रक्खें। फिर उसे उतार लें। ठंडा होने पर ऊपर के प्याले में जमी हुई सफेद रंग की पपड़ी को निकाल लें।

इस उदयभास्कर रस को २ रत्ती की मात्रा में कुटकी के चूर्ण और शहद के साथ देने से सब प्रकार के श्वास रोग में लाभ पहुंचता है। (निघण्टु रत्नाकर)

प्रमेह और कूपी पक्व रस

त्रैलोक्य मोहन रस—पारद, गंधक, बंग भस्म, शिलाजित और मोती सब समान भाग लेकर सबको खरल करलें। उसके पश्चात् पाषाण भेद का क्वाथ, घीगुवार का रस, मुरवा का क्वाथ, नीम-गिलोय का क्वाथ और त्रिफला के क्वाथ मे पाच २ दिन तक खरल करें। फिर आतशी शीशी में भर कर बालुका यन्त्र में रख कर मध्यम आंच पर पकावें। फिर ठडा होने पर उस को निकाल लें।

इस त्रैलोक्य मोहन रस को १ रत्ती की मात्रा में चोबचीनी के चूर्ण के साथ देने से सब प्रकार के प्रमेह और धातु बिकार दूर होते हैं। (रस प्रदीप)

प्रमेह रस—रससिन्दूर, ताम्रभस्म, रजतभस्म, सुवर्ण भस्म सब समान भाग लेकर हंसराज के क्वाथ में खरल करें। फिर सम्पुट में बन्दकर बालुका यन्त्र में रखकर २ प्रहर की मद आंच से पकावें।

इस रस को १ रत्ती की मात्रा में बकायन के क्वाथ के साथ देने से सब प्रकार के प्रमेह और विशेष कर हरिद्राप्रमेह में लाभ होता है।

प्रमेहान्तक रस—पारद, गंधक, बंग भस्म, नाग भस्म, अभ्रक भस्म, कान्त लोह भस्म, ताम्र-भस्म, तीक्ष्ण लोह भस्म, हींगलू, सुहागी और खपरिया। इन सब चीजों को समान भाग लेकर हंसराज के रस में तीन दिन तक खरल करें। फिर आतशी शीशी में भरकर बालुका यत्र में चढ़ाकर ४ प्रहर की मंद आच दें। फिर ठंडा होने पर निकाल कर उसमें कपूर, केशर, तज पत्रज, इलायची, नाग केशर, चंदन और जायफल इन सब चीजों का सम्मिलित चूर्ण रस के बराबर वजन का डाल कर कंदोरी के रस में तीन दिन तक मर्दन करें।

इस रस को ३ रत्ती की मात्रा में शक्कर और मक्खन के साथ लेने से सब प्रकार के प्रमेह दूर करता है। (वैद्य चिन्तामणि)

सुवर्ण राज वंगेश्वर—पारद १ भाग, वग २ भाग, गंधक ४ भाग, सुवर्ण भस्म आधा भाग, मिर्च १ भाग, कान्त लोह भस्म १ भाग, नाग भस्म १ भाग। इन सब चीजों को घी गुवार के रस में खरल करके आतशी शीशी में भरकर बालुका यत्र में कूपीपाक करलें। फिर उसे निकाल कर घीगुवार के रस में घोट कर कूपी पाक करें। इस प्रकार ७ बार कूपीपाक करने पर यह रस सिद्ध होता है।

इस रस को ४ रत्ती की मात्रा में देने से प्रमेह और मूत्रकच्छ्र, मूत्राघात इत्यादि रोगों में लाभ होता है। (रसायन सग्रह)

हर गौरी सृष्ट रस—पारद १ भाग, तांबे की भस्म आधा भाग, और गधक १॥ भाग। इन तीनों चीजों को दही के साथ खरल करके गोला बना कर सम्पुट में रखकर बालुका यंत्र में १ दिन तक

मदाग्नि पर पकावें। फिर निकाल कर १ भावना आंवले के रस की और १ भावना गोखरु के क्वा की देकर छै २ रत्ती की गोलियां बनालें। इन गोलियों को गरम घी में डाल कर पकालें।

इस हरगौरीसृष्टरस की १ गोली भैंस के चुल्लू भर दूध के साथ लेने से हर प्रकार के प्रमेह दू होते हैं। (रस रत्नाकर)

बवासीर, भगंदर और कूपीपक्व रस

कनकगिरि रस—सोने की भस्म १ तोला, पारद २ तोला, लोहचूर्ण, नागचूर्ण, और धान्याभ्र एक २ तोला, गंधक ८ तोला। इनमें से सबसे पहले सोने को पारे में मिलालें। फिर उसमें नाग क चूर्ण मिला कर इतना खरल करें कि एक जीव होजाय। फिर उसमें लोह चूर्ण, अभ्रक और गंधक डाल कर भी घीगुवार के रस के साथ खरल करें। खरल करने पर सब औषधि उत्पन्न होजायगी। जब यह शीतल होजाय तब सबको एकत्र करके किसी कांच या चीनी के प्याले में भरकर रखदें। फिर कुकु मुता नामक वनस्पति Agaricus Campestris का काढ़ा उस प्याले में इतना डालें कि वा औषधि तर होजाय। फिर इसको सूखने दें। जब यह सूख जाय तो इसी वनस्पति के काढे से एक बा और तर करदें। इस प्रकार इसकी २० भावनाएँ दें। फिर दस भावनाएँ हस्तीकर्ण पलाश के क्वाथ की, तीन भावनाएँ वच के क्वाथ की, ६ भावनाएँ चव्य के क्वाथ की, ३ भावनाएँ पीपलामूल के क्वाथ की, १३ भावनाएँ सोहांजन की छाल के क्वाथ की ३ भावनाएँ श्यामा तुलसी के रस की ३ भावनाएँ कंटकारि के क्वाथ की, २ भावनाएँ असगंध के क्वाथ की, ५ भावनाएँ चित्रक के क्वाथ की, ६ भावनाएँ पियंगु के क्वाथ की, ७ भावनाएँ कनेर के क्वाथ की, ३ भावनाएँ बिजोरा की छाल के क्वाथ की, ३ भावनाएँ खरेंटी के क्वाथ की और ३ भावनाएँ घीगुवार के रस की दें। जब यह रस सूख कर चूर्ण रूप होजाय, तब इसको सम्पुट में बंद कर बालुका यन्त्र में १ मास तक हल्की हल्की आंच दें। उसके बाद निकालकर कुमारी रस की एक भावना देकर इसका गोला बनालें। और फिर सम्पुट में बन्द करके कुम्भपुट में रखकर हल्की आंच पर पकालें।

इस कनकगिरि रसको १ माशे की मात्रा में उचित अनुपान के साथ देने से बवासीर, भगंदर, इत्यादि समस्त गुदा के रोगों को यह उसी प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार गरुड़ सर्प समूह को नष्ट कर देता है इसके अतिरिक्त यह रस मंदाग्नि, कंठमाला, उन्माद, प्रमेह, बहुमूत्र, अरुचि, खांसी, श्वास, हृदय रोग, कर्ण रोग, नेत्ररोग, योनिरोग, मुखरोग, कंठ रोग, स्त्रियों के रोग, क्षुद्ररोग, अर्बुद इत्यादि अनेक प्रकार के रोगों में फायदा पहुंचाता है।

निधीश्वर रस—पारद को लेकर उसे चौलाई, वच, हींग, लहसन, मकोय, धतूरा, नमक और घी गुवार के रस में एक दो दिन तक खरल करें। उस पारद की गोली बनालें। और उस पर हींग का लेप चढ़ा कर सम्पुट में बन्द करके बालुका यन्त्र में रख कर इतनी मंदी आंच दें कि जिससे पारद उड़ने

न पावे। फिर उसे निकाल कर मकोय, सरपखा और हमराज के क्वाथ में खरल करके समान भाग गन्धक मिला कर, कज्जली बना कर, सम्पुट में रख कर सामान्य आंच में पकावें। जब गंधक जीर्ण हो जाय तब उसे निकाल कर दूसरा गन्धक डालकर फिर पकावें। इस प्रकार ६ बार में ६ गुना गन्धक उसमें जलादें। फिर उसको निकाल कर मकोय के रस में खरल करके जितना पारद हो उतनी ही रूपामक्खी और उससे आधा सिंगरफ और सिंगरफ के बराबर मैंसिल मिला कर मकोय के रस में ७ दिन तक खरल करें। फिर इसे आतशी शीशी में भरकर ३२ प्रहर तक मंदी आंच पर पकाकर ठण्डा कर लें। फिर निकाल कर व्याघ्रीकन्द के रस में २१ प्रहर तक खरल करके फिर सम्पुट में बंद करके बालुका यन्त्र में रख कर पकाना चाहिये।

इस निधीश्वर रस को २ रत्ती की मात्रा में प्रति दिन लेते रहने से ६ महिने में मनुष्य का कायाकल्प हो जाता है और वह बुढ़ापे के दुख से बच जाता है। १०० वर्ष की उम्र तक भी वह कामिनियों के साथ रमण कर सकता है। इसके अतिरिक्त बवासीर, भगन्दर, गुल्म, शूल, उदर रोग, राजयक्ष्मा अतिसार, संग्रहणी, वातरोग, ज्वर, कामला, श्वास, बध्यापन और वातपित्त के रोगों में भी यह बहुत लाभ पहुँचाता है। इसको सेवन करने वाला दिव्य दृष्टि को प्राप्त करता है। —(रस सागर)

रवितांडव रस—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, दोनों चीजों की कजली करके घी गुवार के रस में खरल करें। और फिर तांबे के बहुत पतले २ पतरे (जिनमें कांटा आरपार हो जायँ) उस कजली के बराबर लेकर उन पतरों पर उस कजली को लपेट दे। जब वह सूख जाय तब उन्हें सम्पुट में बंद करके २ दिन की आंच दें। फिर निकाल कर जम्भीरी नींबू के रस में खरल करके हलकी आंच पर पकावें। इस प्रकार ७ बार करें।

इस रवितांडव रस में मूसली और सेंधानमक मिलाकर कांजी के साथ सेवन करने से भगंदर में बहुत लाभ होता है। इसकी मात्रा १ रत्ती की है। —[रसेन्द्रसार संग्रह]

उपदंश और कूपीपक्व रस

उपदंश दावानल रस— सिंगरफ, हरताल, सोमल, मैंसिल, रसकपूर, दालचिकना और नीलाथूथा सब समान भाग लेकर खरल में डालकर मद्य में ७ दिन तक घोंटें। फिर एक प्याली में पीसा हुआ नमक बिछा कर उस नमक पर उपरोक्त चूर्ण को बिछा दें और फिर उस चूर्ण पर दूसरा पीसा हुआ नमक भरकर अच्छी तरह से दबा दें। उस प्याली के ऊपर दूसरी प्याली रखकर उसकी सन्धियों को मजबूती से बन्द करदें और उसको अर्ध बालुका यन्त्र में चढ़ा कर हलकी आंच पर ७।८ घण्टे तक पकावें। फिर उतार कर यन्त्र को खोलें। ऊपर के प्याले में जो औषधि जमी हुई मिले उसको खुरच कर रखलें।

इस औषधि में से १ रत्ती औषधि लेकर मक्खन या हलवे में लपेट कर निगल जाना चाहिये। यह खयाल रखना चाहिये कि मुंह के यह औषधि लगने नहीं पावे। इस औषधि के सेवन से भयंकर उपदंश भी नष्ट होता है।

उपदंश नाशक योग—रस कपूर १ तोला लेकर उसे नींबू के रस में घोट कर टिकड़ी बनाकर छाया में सुखा लेना चाहिये। फिर उसे १ मिट्टी के सरावले में रखकर ऊपर दूसरा सरावला ढक कर सन्धियों को कपड़ मिट्टी से अच्छी तरह बन्द कर देना चाहिये। फिर उसे चूल्हे पर चढा कर नीचे एक दीपक रख कर उसमें अरण्डी का तेल भरकर उसमें उंगली के बराबर मोटी बत्ती बनाकर जला देना चाहिये। इस प्रकार उस दीये की ४ प्रहर की आंच देना चाहिये। और ऊपर के सरावले के ऊपर भीगा हुआ कपड़ा ४ तह करके हमेशा रखा रहना चाहिये। ज्यों २ वह गरम होता जाय त्यों २ उस पर ठण्डा पानी डालते रहना चाहिये। ४ प्रहर की आँच पूरी होने पर जब सरावले ठण्डे हो जायँ तब उनको खोलकर ऊपर के सरावले में जमा हुआ रसकपूर का सत्व निकाल लेना चाहिये। यह सत्व १॥ माशा, काली मिर्चें ६ माशा, इलायची के बीज ३ माशे, लौंग ३ माशे और सुपारी को जला कर की हुई राख ८ रत्ती और बीज निकाले हुए मुनक्का दाख २१। इन सबको मिला कर खरल करके ३० गोलियां बना लेना चाहिये।

उपदंश के रोगी को पहले हलका जुलाब देकर फिर प्रति दिन सवेरे आधी छटांक दही के साथ १ गोली खिलाना चाहिये और पथ्य में सिर्फ गेंहुँ और चने की रोटी तथा घी देना चाहिये जिससे ३० दिन में बिना मुँह आये हुए चाहे जैसा उपदंश का रोग नष्ट हो जाता है।

—[जङ्गलनी जड़ी बूटी]

पारद की गोली बनाने की कुछ क्रियायें

रस शास्त्रों के अन्दर पारद की गोली बनाने का बड़ा महत्व बतलाया गया है। पारद की गोली देह सिद्धी और धातु सिद्धी दोनों ही कामों में उपयोगी मानी गई है। प्राचीन ग्रन्थों में ६४ वनस्पतियां ऐसी मानी गई हैं जिनके रस के संसर्ग से पारद की गोली बनाई जा सकती है। हमने भी इस ग्रन्थ के पहले भाग में उसरण नामक वनस्पति के प्रकरण में और इस ग्रन्थ के पाँचवे भाग में पारे की गोली बनाने की क्रियाएँ दी हैं।

रसेन्द्र चूड़ामणि नामक ग्रथ में बतलाया गया है कि कांगलेत्री नामक एक वनस्पति की बेलें होती हैं। इसके पत्ते छत्री के आकार के होते हैं और उनको तोड़ने से उनमें दूध निकलता है। इसकी जड़ में एक ही कद होता है। इस वनस्पति के रस में इतनी प्रबल शक्ति है कि उसके स्पर्श मात्र से पारद की गोली बन्ध जाती है और उस गोली को ताँबे अथवा चांदी के रस में डालने से सोना बन जाता है।

एक काली जाति की चित्रक होती है। इसके पत्तों के रस को दूध में डालने से दूध का रंग स्याही के समान काला हो जाता है। इस वनस्पति के रस से भी पारद की गोली बांधी जा सकती है।

एक पालाश तिलका नामक लता होती है इसके पत्ते, फूल और फलियां सब पलाश के समान होती हैं। इसके कन्द में से पीला रस निकलता है। इस वनस्पति के रस से भी पारे की गोली बनाई जाती हैं। १ अजगरी नामक वनस्पति होती है। यह बेल दिखने में अजगर के समान दिखती है। इस वनस्पति का रस भी पारे की गोली बांधने के काम में आता है।

नीचे हम भी पारे की गोली बनाने की दो एक विधियां पाठकों की जानकारी के लिये लिख देते हैं।

पहली विधि—१० तोला पारद, १० तोला नोसादर, १० तोला स्फटिक, १० तोला शोरा, १० तोला सुहागा, १० तोला सेंधा नमक, १० तोला जवाखार इन सब को गौ मूत्र में डाल कर पकाना चाहिये। जब गौ मूत्र सूख जाय तो और गौ मूत्र डालना चाहिये। तीन दिन तक इस तरह करने पर पारद गाढा होकर गोली बनाने के योग्य हो जाता है। तब सब औषधियों को धोकर पारद को निकाल लेना चाहिये। पारद की यह गोली २। ४ दिन में कठिन हो जाती है। इसे दूध में डालकर उस दूध को उबाल कर नित्य पान करते रहने से मनुष्य की कामशक्ति बहुत बढ़ती है किन्तु इस गोली का प्रभाव ४।६ महिने तक ही रहता है। फिर यह गोली इतना गुण नहीं करती।

—[कूपीपक्व रस निर्माण विज्ञान]

दूसरी विधि—भली प्रकार शुद्ध की हुई चाँदी १ तोला लेकर उसका पतरा बना लेना चाहिये, इस पतरे को आग में तपा कर १०८ बार नींबू के रस में बुझाना चाहिये। फिर १० रुपये भर लाल दूधी (नागार्जुनी) लेकर उसका पीस कर उसकी लुगदी में इस पतरे को रख कर कपड़ मिट्टी करके ३० सेर ऊपले (कण्डों) की आंच में फूक देना चाहिये जिससे चान्दी की भस्म तैयार हो जायगी।

इस चांदी की भस्म को ८ रत्ती की मात्रा में लेकर १ तोला शुद्ध पारद के साथ नींबू के रस में दिन भर घोटना चाहिये। जिससे पारा गोली बांधने की स्थिति में आ जायगा। फिर उस पारे को बारीक कपड़े में लेकर दबा देना चाहिये। जिससे गोली बनने से जो पारा बच गया होगा वह निकल जायगा। इस गोली को १ नींबू के अन्दर रख कर दौला यन्त्र में नींबू का रस भर कर उस दौला यन्त्र में २ दिन तक पकाना चाहिये। जिससे वह गोली और भी कठिन हो जायगी फिर उसे निकाल कर बच्छनाग की जड़ के अन्दर छेद करके उस छेद में उस को रखकर, डिगरी से उस छेद को बन्द कर ऊपर से थोड़ा सूत लपेट कर धतूरे के रस और भांग के क्वाथ में एक २ दिन दौला यन्त्र में पका लेना चाहिये।

पारद की इस गोली को शाम के समय दौला यन्त्र की तरह दूध में पकाकर उस दूध को पीने से रति प्रसङ्ग में बहुत शक्ति और आनन्द प्राप्त होता है।

पारद के विष की शांति

हम ऊपर लिख आये हैं कि शुद्ध पारद मनुष्य शरीर के लिये जहां यह दिव्य अमृत का काम करता है। वहां अशुद्ध पारद और अशुद्ध रस कपूर विष से भी अधिक नुकसान करता है। इससे दाँत के मसूड़े फूल जाते हैं, दांत की जड़ें ढीली हो जाती हैं, कभी २ गठिया वाय, रक्त विकार, खाज, खुजली, इत्यादि उपद्रव भी होजाते हैं।

रस कपूर का विशेष उपयोग प्रायः उपदश के विष को नष्ट करने के लिये किया जाता है। यद्यपि उपदश के विष को नष्ट करने में रसकपूर के प्रयोग वास्तव में लाभदायक होते हैं मगर इनकी प्रति क्रियाए इतनी भयंकर होती हैं कि कभी २ लेने के देने पड़ जाते हैं। इसलिये रसकपूर के प्रयोग प्रायः ऐसे ही वैद्यों से कराना चाहिये जो पूरे दक्ष हों। इतने पर भी यदि कभी रसकपूर या अशुद्ध पारद के विकार शरीर में पैदा होजायँ तो उनको दूर करने के उपाय निम्न लिखित करना चाहिये।

(१) प्रारभ में सावधानी के साथ वमन कराना चाहिये। फिर स्टमकपप से स्नेह (तेल) पान कराने के पश्चात् दूध मलाई इत्यादि वस्तुओं का खूब प्रयोग करें। फिर अलकोहल और मोरफाइन का प्रयोग करें।

नील नामक वनस्पति भी पारद और रसकपूर के विषको शांत करने के लिये बहुत उपयोगी है। तालीफ शरीफ नामक यूनानी ग्रथ में लिखा है कि अगर किसी व्यक्ति ने कच्चा पारा या रसकपूर खा-लिया हो और उसकी वजह से उसके बदन में घाव पड़ गये हं, और कुष्ट की हालत आ पहुची हो तो ऐसे समय में नील का १ पौधा जड़ समेत उखाड़ कर उसके टुकड़े २ करके पानी में उबालना चाहिये। जब उस पानी का काढ़ा होजाय तब उसमें से एक प्याला काढ़ा रोगी को सवेरे भूके पेट पिला देना चाहिये। उसके पश्चात् प्रति २० मिनिट में एक २ प्याला पानी पिलाते रहना चाहिये। सुबह शाम उसको इसी प्रकार यह काढ़ा पिलाते रहना चाहिये तथा खाने को कुछ भी नहीं देना चाहिये। इस प्रयोग से उसके शरीर का सब पारा पेशाब के रास्ते से निकल जाता है। अगर जांच करना हो तो पेशाब को चीनी या तांबे के बरतन में एकत्रित कर देना चाहिये। थोड़ी देर में पारा उस बरतन में नीचे जमा हुआ दिखलाई देगा। इस प्रयोग से एक ही दिन में पारे का सब असर नष्ट हो जाता है। मगर यदि जरूरत हो तो २। ३ दिन तक इस प्रयोग को कर सकते हैं।

रसकपूर—पारद के साथ कुछ दूसरी औषधियों का मिश्रण करके उनको डमरू यन्त्र में उड़ाकर १ प्रकार का यौगिक तैयार किया जाता है जिसको रसकपूर कहते हैं।

रसकपूर बनाने की विधि—शुद्ध पारद, गेरू, ईंट का चूर्ण, खड़िया मिट्टी, फिटकरी, सेंधानमक, बामी की मिट्टी, खारी नमक, हड़मची इन सब द्रव्यों को समान भाग लेकर पारद के सिवाय अन्य सब

द्रव्यों को पीसकर कपड़छन करके पारद के साथ मिलाकर एक प्रहर तक घोटें। इस घुटे हुए द्रव्य को १ मजबूत हांडी में रखकर उसके ऊपर दूसरी हांडी ढककर डमरू यंत्र तैयार करले। इस डमरू यंत्र को ४ दिन और ४ रात तक निरंतर बबूल की आंच पर रखें। फिर ठण्डा होने पर उसे उतार कर खोलकर ऊपर की हांडी में जमे हुए रसकपूर को निकाल लें। (भाव प्रकाश)

नोटः—जब तक डमरू यन्त्र आंच पर चढ़ा रहे तब तक ऊपर की हांडी पर एक १०। १२ तह किया हुआ गीला कपड़ा हमेशा रखा रहना चाहिये। जब वह कपड़ा गरम होजाय तब उसको उतारकर दूसरा कपड़ा उसपर रख देना चाहिये। इस काम में असावधानी होने से पारद के उड़ जाने का डर रहता है।

—:×:—

प्लाशीवल्ली

नाम —

मद्रास—प्लाशीवल्ली। लेटिन—Spatholobus Roxburghii (स्पेथोलोबुस राक्सबर्घी)

वर्णन—गुण दोष—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी छाल का काढा जलोदर, आंतों की शिकायत, सर्प विष, और पेट के कृमियों को नष्ट करने के काम में लिया जाता है।

पालोर

नाम—

मराठी—पालोर। कोकण— नानकेरी। कनाड़ी—अंकेरकी, लियाकेरी। आसाम—फुटकी। नेपाल— चोलिसी, तुलसी। बरमा—मिटप्याई, शेम। तामिल – कदलाई। तेलगू पट्टूदू। उड़िया—कोरोठी। अंग्रेजी—Indian Rahododendron (इण्डियन रोडोडेन्ड्रोन) लेटिन—Melastoma Malabathricum (मेलेस्टोमा मलाबेथिकम)

वर्णन –

यह एक बहु शाखी, सुन्दर झाड़ी होती है जो पानी के किनारे पैदा होती है। इसके पत्ते शल्याकृति, गहरे हरे और खरदरे होते हैं। पानों के डंखल बहुत नरम होते हैं। फूल बड़े, गुलाबी रंग के, सुन्दर, डखल रहित होते हैं। ये तीन २ या पांच के गुच्छों में लगते हैं। इसके फल छोटे और गोल होते हैं। यह पौधा धाय के पौधे की तरह दिखलाई देता है, अन्तर इतना ही होता है कि इसके डखल लाल रङ्ग के और पत्ते कुछ मोटे और खरदरे होते हैं। औषधि प्रयोग में इसके पत्ते काम में आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते अतिसार और रक्तातिसार के रोगों में लाभदायक माने जाते हैं।

इण्डोचायना में इसके पत्ते और फूलों के सिरे श्वेतप्रदर और प्राचीन अतिसार में एक संकोचक पदार्थ की तरह दिये जाते हैं।

फिलिपाइन में इसके पत्तों का काढ़ा एक संकोचक द्रव्य की तरह अतिसार और रक्तातिसार में दिया जाता है इसकी छाल का काढ़ा जुकाम, कण्ठनाली का आक्षेप और मुखक्षत रोग में कुल्ले करने के काम में लिया जाता है और इसका लोशन गीली खुजली और व्रणों को धोने के काम में लिया जाता है।

पाषाणभेद

नाम—

संस्कृत—पाषाण भेद। हिन्दी—पाषाण भेद, पोपल, बन पत्रक। पंजाब—शपरोंकी, पाषाण भेद, रावीसपोर्त्री। चिनाब—वल्पिया। काश्मीर—वथेव, वथेवे। नेपाल—सोहपेसोहा, पाषाण भेद। कुमाऊ—शिलफोड़ा। लेटिन—Saxifraga Ligulata (सेक्सिफ्रेगा लिग्यूलेटा)।

वर्णन—

पाषाण भेद के नाम से एक क्षुद्र वनस्पति की जड़ के सूखे हुए टुकड़े बाजार में मिलते है। इस वनस्पति का क्षुप काश्मीर, नेपाल और हिमालय के बीच में होता है। इसकी जड़ के टुकड़े १ इञ्च से २ इञ्च तक लम्बे और आधे इञ्च से १ इञ्च तक मोटे होते हैं। इनका रङ्ग ऊदी होता है। इस की जड़ बहुत कठोर होती है। इस जड़ का भीतरी भाग सफेद होता है। इसका स्वाद कुछ तूरा और सुगन्धित होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

पाषाण भेद स्नेहन, कफ नाशक, स्तम्भक, और मूत्रल होता है। पथरी रोग में इसको देने का बहुत रिवाज है। इससे पेशाव बहुत होकर पथरी धीरे २ गल जाती है। आमातिसार और दूसरे प्रकार के दस्त लगने में पाषाण भेद लाभ दायक है। इससे आंतों को उत्तेजना मिलती है। दांत आते समय बच्चों को बहुत लार गिरती है और उनके मसूड़ों में छोटे २ व्रण भी हो जाते हैं। ऐसे समय पाषाण भेद को शहद में मिला कर लगाने से लाभ होता है। नेत्राभिष्यन्द रोग में इसका लेप करना चाहिये।
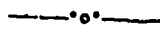
पाषाणभेद नं० २

नाम—

संस्कृत—पाषाणभेद। मलयालम—चेप्पुनेरिंजल। लेटिन—Rhabdia Lycioides (रेबडिया लिसीआइडस)।

वर्णन

कर्नल चोपरा ने अपने ग्रन्थ में इस वनस्पति का वर्णन किया है। इसके सिवाय दूसरी जगह हमें इस वनस्पति का वर्णन देखने को नहीं मिला।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ बवासीर, मूत्राशय की पथरी, उपदंश और व्यभिचार जनित रोगों में उपयोग में ली जाती है।
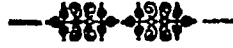
पाषाण भेद छोटा

नाम—

संस्कृत—क्षुद्र पाषाण भेद, पाषाण भेदक। तेलगू—चेप्पुनेरिंजल। नेपाल—खोला सइस। बरमा—मोमाका। मुण्डारि—गाहुटी। लेटिन—Homonoia Riparia (होमोनोइया रिपेरिया)।

वर्णनः—

यह एक हमेशा हरी रहने वाली झाड़ी होती है। इसके पत्ते ७.५से १५ सेन्टिमीटर तक लम्बे और १ से लेकर २ सेंटिमीटर तक चौडे होते हैं। यह वनस्पति आसाम, उत्तरी बंगाल, बरमा और मध्य प्रान्त में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से यह वनस्पति व्रण, मूत्रकृच्छ, और पथरी को दूर करती है।

इसका पौधा मृदु विरेचक और मूत्रल होता है। इसका काढ़ा बवासीर, मूत्राशय की पथरी, गर्मी और सुजाक में दिया जाता है।

पाला

नाम—

हिन्दी—पाला। मराठी—पाला। बम्बई—पाला। तामील—कट्टुमेट्टिलाइ, कुरुविंगी। तेलगू—बापना बुरि, बारांकी, पिचिकाबुरी। लेटिन—Ehretia Buxifolia (इरेटिया बक्सी-फोलिया)।

वर्णन—

यह एक झाड़ी नुमा छोटा वृक्ष दक्षिण के अन्दर ओसाड जमीनों में पैदा होता है। इसकी जड़ का स्वाद तेज होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका काढ़ा उपदंश की वजह से पैदा हुए पांडु रोग में दिया जाता है। दक्षिणी भारत में यह एक धातु परिवर्तक औषधि मानी जाती है और वानस्पतिक विषों को दूर करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

पालक जुही

नाम -
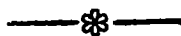
संस्कृत यूथिकापर्णी। हिन्दी—पालक जुही, पालिक जुइया, जुइपानी। बंगाल—जुइपाना। बम्बई—गजकर्णी, नागमल्ली। दक्षिण—कबूतर का झाड़। बरमा—अनीतिया। मराठी—गजकर्णी। तामील—अनिचाई, काली गाय, नागमल्ली। तेलगू—नागमल्ले। उर्दू—पालक जुही। लेटिन—Rhinacanthus Communis (रिन्हेकेन्थस कम्यूनिस)।

वर्णन--

यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है जो करीब दो हाथ ऊँचा होता है। दक्षिण के बगीचों में इसके पेड़ बहुत लगाये जाते हैं। इस पौधे में बहुत डालियां होती हैं। इसका पिण्ड गोल और राख के रङ्ग का होता है। इसके पत्ते आमने सामने लगते हैं। ये करीब ४ इञ्च लम्बे और २ इञ्च चौड़े होते हैं। इसके फूल सफेद तुर्रे के आकार के होते हैं। इसके पत्तों के मसलने से उसमें एक प्रकार की खराब गन्ध आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह वनस्पति गरम और तर है। इसके पत्तों का रस लगाने से चेहरे के काले दाग और छाजन मिट जाती है। कभी २ अपनी तेजी से यह जखम भी डाल देता है। इस का रस दाद को मिटाने के लिये एक उत्तम रस है। इसकी जड़ की छाल को घिसकर फिटकरी और काली मिरच के साथ दाद पर लगाने से दाद बहुत जल्दी आराम होता है। इस की छाल को छाया में सुखा कर बिना छिलका निकाली हुई इलायची के साथ पीसकर पानी के साथ गोलियां बनालें। इन गोलियों को पानी में घिसकर लगाने से दाद बहुत जल्दी आराम हो जाता है।

दक्षिण कोकण में दाद की यह एक लोकप्रिय घरेलू औषधि है।

सिन्ध के अन्दर यह वनस्पति एक असाधारण और प्रभावशाली कामोत्तेजक औषधि समझी जाती है। इस कार्य के लिये इसकी जड़ को दूध में उबाल कर उपयोग में ली जाती है।

मेडागास्कर में इसके पत्तों का रस या इसकी जड़ की छाल विसर्पिका, दाद इत्यादि चर्म रोगों में उपयोग में ली जाती है। इसकी ताजा जड़ जलन और सूजन युक्त चर्म रोगों के लिये एक बहुत मूल्यवान औषधि समझी जाती है। इसकी दूध के अन्दर उबाली हुई जड़ बहुत कामोद्दीपक मानी जाती है।

हिन्दुस्तान के कुछ भागों में इसकी जड़ सर्प विष को दूर करने वाली समझी जाती है।

रासायनिक विश्लेषण—

इसकी जड़ और छाल में १३ प्रतिशत रीनोकेंथिन नामक पदार्थ पाया जाता है जो क्राइसोफेनिक एसिड की तरह होता है। यह द्रव्य लाल रङ्ग का होता है और शुद्ध अलकोहल में घुल जाता है।

———

पालक

नाम—

संस्कृत—पालक्या, स्निग्धपत्रा, ग्राम्यवल्लभा, ग्रामिणी, मधुरा, छुरिका, छुर पत्रिका, वस्तु काकड़ा, सुपत्रा, इत्यादि। हिन्दी—पालक, पालकी, सागपालक, इस्फंज। बंगाल—पालग, पिनिस। बम्बई—इस्फज, पालग। पंजाब—बीज पालक, इस्फक, पालक। मराठी—पालक। गुजराती—पालकनी भाजी। तामील—वसेइ लेइकिराइ। तेलगू—दुम्पाबेचाली। अरबी—स्पंज। फ़ारसी—स्फंज, इस्पनाक। उर्दू—पालक। अंग्रेजी—Spinach (स्पिनच)। लेटिन—Spinacia Oleracea (स्पिनेसिया ओलिरेसिया)।

वर्णन—

पालक की शाग भारतवर्ष में सब दूर प्रसिद्ध है। इसका पौधा करीब फुट भर ऊंचा होता है। इसके पत्ते मोटे, मांसल और त्रिकोणाकृति होते हैं। पत्तों के डंठल लम्बे २ होते हैं। फूल बहुत छोटे छोटे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

(आयुर्वेदिक मत)—राजनिघन्टु के मतानुसार पालक का शाग किंचित चरपरा, मधुर, सुपथ्य, शीतल, रक्तपित्त नाशक, मलरोधक और तृप्तिकारक है।

भावप्रकाश के मतानुसार पालक का शाक शीतल, वातवर्धक कफकारक, मेदक, भारी, मलरोधक तथा नशा, श्वास, रक्तपित्त और विष का विनाश करने वाला होता है।

पालक शीतल, स्नेहन, रोचक, शोथघ्न और दाह शामक होता है। पालक की भाजी रुचिकर और बहुत जल्दी पचने वाली होती है।

पालक में विटामिन ए और सी तथा लोहा बहुत अधिकता से पाया जाता है। यह खून को साफ और बलयुक्त करता है। कच्चा खाने में कड़वा लगता है। मगर गुण में अधिक होता है। दही के साथ कच्चे पालक का रायता बहुत स्वादिष्ट और गुणकारी होता है। गुणों में पालक का शाक सब शाकों से बढ़चढ कर है। पालक की कच्ची पत्तियों को सिल पर बिना पानी डाले कुचल कर, उनका रस निकाल कर आधा सेर के करीब पीने से पेट खूब साफ होता है। इसे सुबह में करीब ८ बजे के पीना चाहिये।

पालक के पचांग का क्वाथ ज्वर प्रधान रोगों में दिया जाता है। गले की जलन, फेफड़े की सूजन, श्वास नलिका की सूजन इत्यादि में यह उपयोगी है। गले की जलन को दूर करने के लिये इसके पत्तों के रस से कुल्ले किये जाते हैं। आंतों के रोगों में पालक की तरकारी देना उपयोगी होता है। क्योंकि इसमें दूसरी तरकारियों की तरह आँतों को त्रास देने वाले पदार्थ नहीं रहते। पथरी और सिकता प्रमेह में इसके पत्तों का रस दिया जाता है जिससे पेशाब अधिक होकर के रोग की शान्ति होती है।

रासायनिक विश्लेषण—पालक की तरकारी में एक प्रकार का क्षार पाया जाता है। जो शोरे के समान होता है। इसके अतिरिक्त इसमें मांसल पदार्थ ३॥ प्रतिशत, चर्बी आधा प्रतिशत और मांस तत्व रहित पदार्थ ४॥ प्रतिशत पाये जाते हैं।

इसका हरा पौधा मूत्राशय की पथरी के उपयोग में लिया जाता है। इसके बीज मृदु विरेचक और ठण्डे होते हैं। ये कठिनता से आने वाले श्वास में, यकृत की सूजन में और पीलिये में उपयोग में लिये जाते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से पालक पहले दर्जे में सर्द और तर होता है। कब्ज को दूर करता है। जल्दी हजम होता है। प्यास, मेदे की जलन और पेशाब की जलन को शान्त करता है। गर्मी का नजला तथा सीने और फेफड़े के दर्द में यह मुफीद है। पित्त की तेजी को शान्त करता है। गर्मी की वजह से होने वाले पीलिया और खांसी में यह लाभ दायक है। गुर्दे और मसाने की पथरी को तोड़ता है खून को साफ करता है। शरीर की खुश्की को दूर करता है। कमर के दर्द को मिटाता है। गरमी की वजह से हुई फेफड़े की सूजन, खांसी और गले की जलन में यह मुफीद है।

इसके पत्तों को उबाल कर गरमी के दर्द, गठिया और गरमी की सूजन पर बांधना चाहिये। ततैये के डंक पर भी यह लाभदायक है।

पालक जंगली

नाम—

हिन्दी—जङ्गली पालक, तुलपालक। पंजाब—बीजबन्द, जङ्गली पालक। बंगाल—वनपाङ्ग। उर्दू—बीज बन्द। लेटिन—Rumex Mantimus (रुमेक्स मेरिटिमुस)।

वर्णन—

यह पालक की ही एक जंगली जाति होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके बीज खराब स्वाद वाले, कटिवात और पीठ के दर्द को दूर करने वाले, पुरातन प्रमेह में लाभदायक और कामोद्दीपक होते हैं।

इसके पत्तों को पीसकर जले हुए स्थान पर लेप किया जाता है, और इसके बीज कामोद्दीपक वस्तु की तरह उपयोग में लिये जाते हैं।
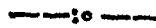
पारेवत

नाम—

संस्कृत—पारेवत, श्वेतपुष्प, तिन्दुकास फल। हिन्दी—पारेवत। बंगाल—पेपारा। तेलगू—उचरिंगे।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मत से पारेवत शीतल, स्वादिष्ट, भारी, गरम, वात, पित्त नाशक, तृषा नाशक और खट्टा तथा मीठा होता है।

पारेवत कसेला, कृमिनाशक, वीर्यवर्धक, स्निग्ध, रुचिकारक, वृष्य, हृदय को हितकारी तथा तृषा, ज्वर, दाह मूर्छा, भ्रम, श्रम और शोष को नष्ट करने वाला है।

महापारेवत बलकारक, पौष्टिक, वीर्यवर्धक, मूर्छानाशक और ज्वर को दूर करने वाला होता है।

——:×:——

पिंडालु

नाम—

संस्कृत—पिंडीतक, पिंडकन्द, रोमशकन्दक, कन्द ग्रंथि, गांगेरुक, गगेटी, पिडालु, इत्यादि। हिन्दी—पिडालु, पेंडुवा, पिडारा, मरणी, कटूल। बंगाली—पिरालो, चिरलू। गुजराती—गगेड़ा। काठियावाड—गांगड। मराठी—पेंढारी, पेंद्र, पेंडूर। उर्दू—पिडालू। तामील—कराई, पेरुंगराई। तेलगू—देवात्माले। अंग्रेजी—Grey Emetic Nut। लेटिन—Randia Uliginosa। (रेंडिया यूलीगिनोसा)।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है इसकी ऊँचाई ८ से ६ फीट तक होती है। इसकी छाल ललाई लिये हुए भूरे रंग की होती है। इसकी डालियां कठिन और चोकौर होती हैं। इसके पत्ते ६.३ से १२.५ सेंटिमीटर तक लबे और ३.५ से ५ सेंटिमीटर तक चौडे होते हैं। इसके फूल मांसल, सफेद, डखल रहित और बहुत सुगंधित होते हैं। इसके फूल छोटे मेनफल के समान, अमरूद की आकृति के और पकने पर पीले होते हैं। ये बिलकुल अमरूद के समान दीखते हैं और खाने के काम में आते हैं।

गुण-दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से पिडालू मधुर, शीतल, मूत्रकृच्छ नाशक, दाह निवारक, शोष नाशक, प्रमेह को हरने वाले, वीर्य वर्धक, तृप्ति कारक, भारी, और वात को कुपित करने वाले होते हैं। इसके पके हुए फल मधुर शीतल और मूत्रल होते है। इसके कच्चे फल स्तम्भक होते हैं। इसके कच्चे फलों का गूदा कूटकर दस्त और आँव की बीमारी में देते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड स्वाद रहित, बल बढाने वाली, कामोद्दीपक, मूत्रल, प्यास को दूर करने वाली हृदय के लिये हितकारी और रक्त शोधक होती है। बच्चों के फोडे फुन्सी में पित्त विकार में, मूत्र कष्ट में, बून्द २ और कष्ट से पेशाब होने की बीमारी में यह लाभदायक है। यह गरम प्रकृति वाले को ज्यादा लाभदायक है। इसके सेवन से स्त्रियों का दूध अधिक बढता है।

——:※:——

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिकमत—आयुर्वेदिकमत से इसकी छाल और इसकी जड़ कफ और पित्त को दूर करने वाली, कड़वी, चरपरी, ज्वर नाशक, कामोद्दीपक, वात और पित्त के प्रकोप को दूर करनेवाली, तथा रक्तातिसार, धवल रोग, चर्म रोग और गलित कुष्टमें लाभदायक है। यह खराब दुर्गंध, बुखारकी जलन, प्यास, अनैच्छिक वीर्यश्राव, वमन, शरीर की जलन, और खून की खराबी को दूर करती है। इसके पत्ते वमन कारक और उदर शूल को रोकने वाले होते हैं। इसके फूल गलित कुष्ट में लाभदायक होते हैं। इसके फल मीठे चरपरे, पचने में भारी, ठंडे, पौष्टिक, आंतों के लिये संकोचक, व्रण को भरने वाले, कफ और पित्त प्रकोप को दूर करने वाले और मूत्र सम्बन्धी शिकायतों में लाभदायक होते हैं। इसके बीज मीठे, चरपरे, ठंडे, खुश्क, संकोचक, पौष्टिक, और पित्त तथा कफ को नष्ट करने वाले होते हैं।

इसके पत्तों को पानी में भिगोकर, मल छानकर मिश्री मिलाकर पीने से मूत्र नाली की दाह मिटती है। इसके फूलों के चूर्ण को शहद के साथ चटाने से रक्त पित्त मिटता है। इसके फल खाने से अतिसार मिटता है और शरीर की ताकत बढती है।

— —:०:——

पिचली

नामः—

बम्बई—पिसा। कनाडी—तुन्द गेंसू। मलयालम—मलाम्हिरन्मी, नेयारुम। मराठी—पिचकी, पिसा। तामील—ताली। उडिया—जदांबु। लेटिन—Actinodaphne Hookeri (एक्टिनोडेफ्ने हूकरी)।

वर्णन—

यह एक मध्यम कदका वृक्ष होता है। इसके पत्ते १० से लेकर १८ सेंटिमीटर तक लंबे और ४·५ से ६·३ सेंटिमीटर तक चौडे होते हैं। इसके फूल कुछ पीलापन लिये हुए होते हैं। यह वनस्पति पश्चिमी घाट में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों का शीत निर्यास मधुमेह रोग में पेशाब सम्बन्धी अव्यवस्था को दूर करने के काम में लिया जाता है इसके बीजों का तेल मोच और मरोड़ पर मालिश करने के काम में लिया जाता है।

कृष्णा और घोषने इसका रासायनिक विश्लेषण करके इसकी छाल में राक्टिनो डेफनाइन नामक तत्व और एक उपक्षार प्राप्त किया।

——:×:——

पिंडीतक

नाम—

संस्कृत—पिंडी, पिंडीतक, पिंड्ड, स्निग्ध पिंडी तक। हिन्दी—पिंडीतक, मोयना, मदूना। मराठी—चिरचोली, इलावनी, हुलू। बंगाल—मेन, मुदुना, मूयना। मध्यप्रांत—गेल। तामील—मनाक्कराई। तेलगू—सगागदा। लेटिन—Vangueria Spinosa (व्हेनगेरिया स्पिनोसा)।

वर्णन—

यह एक बड़ी जाति की झाड़ी या छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसकी छाल गहरे रंग की और मुलायम होती है। इसके पत्ते ५ से लगाकर १२.५ सेंटिमीटर तक लंबे और ३.२ से लेकर ७ सेंटिमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल हरी झांई लिये हुए सफेद, छोटे और झूमकों में लगते हैं। फल बेर के समान, मांसल, और पकने पर पीले होते हैं। ये खाने के काम में आते हैं। यह वनस्पति उत्तरी बंगाल, बरमा, पेगू, कोकण और मद्रास प्रेसीडेंसी में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से इसका फल पौष्टिक, ठंडा और कफ तथा पित्त को बाहर निकालने वाला होता है।

सुश्रुत के मतानुसार इसके वक्कल दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर सर्प विष और बिच्छू के विष की चिकित्सा में दिये जाते हैं।

कार्टर के मतानुसार लखीमपुर आसाम में इसके पत्तों का चूर्ण गले में होने वाली डिफ्थीरिया नामक भयंकर बीमारी में उपयोगी माना जाता है।

—:+:—

पिंडार

नाम—

संस्कृत—करहटा, कुरंगह, पिंडार। हिन्दी—मिलोर, पिंडार, तुमड़ी, गमहर, खमारा। बंगाल—पिताली। बंबई—मिलोरी, पितारी, तूमड़ी। देहरादून—गमहार, तूमड़ी। कुमाऊं—खमारा, तूमड़ी। मराठी—पितारी। अवध—मिल्लोर। सहारनपुर—बोलपेड़ा। तामील—अतरथु। तेलगू—इरूपोनाकू। लेटिन—Trewia Nudiflora (ट्रेविया नूडी फ्लोरा)।

वर्णन

यह एक बड़ी जाति का झाड़ होता है। इसकी छाल मुलायम और भूरी होती है। इसके पत्ते १५ से २३ सेंटिमीटर तक लंबे और ११.५ से १८ सेंटिमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके नरपुष्प पीले रंग के होते हैं और मादापुष्प हरे रंग के होते हैं इसका फल २.५—३.८ सेंटिमीटर डायमीटर का होता है। यह वृक्ष हिन्दुस्थान के सभी गरम प्रदेशों में पैदा होता है।

औषधि में इसकी जड़ काम में आती है। इसकी जड का स्वाद कड़वा और तूरा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से पिंडार शीतल, बलकारक, पित्त नाशक, रुचि वर्धक, लघुपाकी और विष को नष्ट करने वाला होता है।

इसका पौधा सूजन, विस्फोटक, और कफ को नष्ट करने वाला होता है। इसकी जड़ का काढा वादी के दर्द को दूर करने के लिये दिया जाता है और गठियाँ तथा सन्धिवात की सूजन पर लेप करने के काम में आता है। इसको पीने से पेट के अन्दर का वायु, पित्त और शरीर के अन्दर का आंव निकल जाता है।

पिण्डी

नाम—

संस्कृत—पिंडी। पोरबन्दर—वड़ो खड़सलियो। गुजराती—मोटो खड़सलियो। तामील—पुनाका कड्ड। तैलगू—पिंडी कुपड़ा। लेटिन—Rungia Parviflora (रंगिया परवीफ्लोरा)।

वर्णन—

यह एक घास की जाति की वनस्पति होती है। जो सारे भारतवर्ष और सीलोन में तथा कुमाऊ के अन्दर हिमालय में ४ हजार फीट की ऊँचाई तक होती है। इसके पत्ते १ ३ से ६'३ सेंटिमीटर तक लम्बे और '४ से ३'२ सें० मी० तक चौडे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके छोटे और मांसल पत्तों का रस ठण्डा तथा मृदु विरेचक होता है। बच्चों को शीतला की बीमारी में इसके पत्तों का रस एक से दो टेबलस्पून की मात्रा में दिन में दो बार देने से शान्ति रहती है। इसके कुचले हुए पत्ते दर्द को दूर करते हैं और सूजन में लाभ पहुँचाते हैं।

सन्थाल जाति के लोग इसकी जड़ सूजन को उतारने के लिये देते हैं।

पियारङ्ग (ममीरी)

नाम—

संस्कृत—पीतक। हिन्दी—पीलीजड़ी, पिंजारी, शुम्रक, ममीरी। पंजाब—चिरेटा, चित्रामूल, गुरबियानी, केरेटा, ममीरी, फलीजड़ी, पशभारन। कुमाऊँ—बरमट, पीलीजड़ी, पेंगलाजडी। फ़ारसी—ममीरा चीनी। काश्मीर—चैत्रा। बम्बई—ममीरी, पियारङ्ग। लेटिन—Thalictrum Foliologum (थैलिकट्रम फोलियोलोजम)।

वर्णन—

यह एक ऊंची, हमेशा हरी रहने वाली और कठोर वनस्पति होती है। इसका वृक्ष १२ से २४ मीटर ऊंचा और चिकना होता है। इसके पत्ते डंठल के दोनों ओर लगते हैं। इसके फूल सफेद और बीच में पीली केशर वाले होते हैं। इस वनस्पति की जड़ औषधि के काम में आती है। यह जड़ मूली के समान अथवा उससे ज्यादा मोटी भी होती है। इसकी लम्बाई २ वालिश्त के करीब या इससे भी अधिक होती है। इसकी छाल का रंग पीला और लाल होता है। पुरानी पड़ने पर यह काले रंग की हो जाती है। इसका स्वाद बहुत कड़वा होता है। यह वनस्पति हिमालय में मसूरी, कुनवार व काश्मीर के अन्दर ७ हजार फीट की ऊंचाई तक पैदा होती है। सहारनपुर के अन्दर इसकी खेती की जाती है। इसकी जड़ को देखने से यह मुलेठी के समान दिखलाई देती है। लेकिन स्वाद लेते ही उसका अन्तर समझ में आ जाता है। इसकी जड़ें मसूरी के सरकारी बगीचे में मिलती है। बाज़ार में हमेशा यह औषधि नहीं मिलती। पहाड़ी जाति के लोग इसको ममीरी के नाम से पहिचानते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ के अन्दर पौष्टिक और मृदु विरेचक तत्व रहते हैं। पेट में पहुँचने पर यह पेट के अंदर गरमी पैदा करती है। इससे पाचक रस उत्पन्न होता है और अन्न पचता है। यह एक उत्तम कटु पौष्टिक वस्तु है। इसका सारक धर्म विशेष प्रधान है। पार्यायिक ज्वरों को रोकने के लिये इसकी क्रिया कुटकी और दारु हल्दी के समान होती है। मलेरिया ज्वर में इसका उपयोग विशेष उपयोगी होता है। इससे ज्वर का वेग कम हो जाता है और कभी २ मिट भी जाता है। चढे हुए बुखार में भी इसका उपयोग किया जा सकता है। जीर्ण ज्वर में यह विशेष गुणकारी होती है।

गम्भीर और जीर्ण रोगों के पश्चात् शरीर में जो कमजोरी पैदा हो जाती है उसको दूर करने के लिये और आमाशय की शिथिलता से होने वाले अजीर्ण रोग को मिटाने के लिये इसका उपयोग बहुत लाभप्रद होता है। इससे रोगी को भूख लगती है और शक्ति बढ़ती है।

अफगानिस्तान और भारतवर्ष में इसकी जड़ का चूर्ण आंखों में अंजन करने के लिये और नेत्राभिष्यद रोग में आंखों की पपड़ियों पर लेप करने के लिये बहुत बड़ी मात्रा में उपयोग में लिया जाता है।

पंजाब में यह वनस्पति विरेचक और मूत्रल औषधि की तरह उपयोग में ली जाती है।

रासायनिक विश्लेषण—पियारंग का रासायनिक विश्लेषण करने पर उस में ८॥ प्रतिशत एक प्रकार का पीले रंग का सत्व पाया जाता है। जो दारू हलदी के अन्दर मिलने वाले बरबेराइन नामक सत्व से बिलकुल मिलता जुलता होता है। यह पानी में घुल जाता है मगर अलकोहल में बहुत कम घुलता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क होती है। यह स्वाद में कड़वी, तीखी, पोष्टक, मृदु विरेचक, मस्तिष्क को साफ करने वाली, आंखों की ज्योति को बढ़ाने वाली, दन्त

शूल को दूर करने वाली प्राचीन अतिसार में लाभदायक, नाखूनों की तक़लीफ को दूर करने वाली और चमड़े की खराबी को नष्ट करने वाली होती है। इसका लेप बवासीर में लाभदायक होता है। और इसका अञ्जन नेत्राभिष्यंद रोग में उपयोगी है।

इसको गुलाब जल के साथ घिसकर ललाट पर लगाने से सिर दर्द फौरन दूर होता है। एक लौंग और एक काली मिरच के साथ इसको मां के दूध में मिलाकर चटाने से बच्चों की मिरगी दूर होती है। एक माशा पियारङ्ग और एक माशा हलदी को स्त्री के दूध में घिसकर उस दूध में कपड़े को तर करके उस कपडे की बत्ती बना कर जलावें और उस का काजल इकट्ठा करलें। इस काजल को आंजने से रतौंधी और आंख की लाली दूर हो जाती है। अगर आंख में जाला हो तो ४ रत्ती पियारंग, १ माशा हलदी, १ माशा रसौंत और २ रत्ती फिटकरी इन सब को १ पहर तक पानी में खरल करके सलाई से आंख में आंजा जाता है। इससे जाला कट जाता है। इसी दवा का लेप आंख के आसपास करने से आंख का दर्द और सुरखी मिट जाती है।

कान के दर्द में भी यह औषधि उपयोगी है। २ बैंगन को भूभल में दबा कर उनका रस निकाल कर, उस रस में थोडा सा पियारग घिसकर कुनकुनी हालत में २।३ बून्द कान में टपका देने से कान का दर्द और उससे पीब आना बन्द हो जाता है।

दन्तशूल में लाहोरी नमक, तम्बाकू, भुनी हुई हींग, आकडे की छाल की राख और भटकटैया के पेड की छाल। ये सब चीजें समान भाग लेकर, इन सब औषधियों के बराबर पियारङ्ग लेकर सब को पीसकर मजन बनालें। इस मजन को दांतों पर मलने से और लार टपका देने से दन्तशूल फौरन मिट जाता है।

पीनस की बीमारी में १ माशा पियारग और १ माशा नीलाथूथा, गाय के घी में खूब घोटकर थोड़ा सा नाक में सुंघाने से काफी लाभ होता है।

दमा और पुरानी खांसी में पियारग, बरियारा की जड की छाल और कघी की जड़ की छाल इन तीनों को एक २ माशा पीस कर चिलम में रखकर पीने से फायदा पहुँचता है।

बच्चों के डब्बे की बीमारी अथवा ब्रेंकोनिमोनिया में १ रत्ती पियारङ्ग, १ लौंग और १ काली मिरच के साथ मां के दूध में घिसकर पिलाने से लाभ पहुँचता है।

पियारङ्ग १ माशा और अजवायन, सौफ, बायबिडग और काला नमक एक २ तोला। इन सब को कागजी नींबू के रस में खूब खरल करें। जब रस सूख जाय तो गोलियां बांध के रखदें। इन गोलियों को १ माशे से २ माशे तक की मात्रा में सवेरे शाम खाने से आमाशय की शुद्धि होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है। भोजन पच जाता है और खूब भूख लगने लगती है। इससे सब प्रकार के दस्त भी बन्द हो जाते हैं।

कफ, खांसी और दमे की बीमारी में १ तोला पियारंग को २ तोला काली मिरच के साथ पीस कर चने के बराबर गोली बनालें। इन में से एक २ गोली सुबह और शाम को खाने से उपरोक्त बीमारियों में लाभ होता है।

हैजे की बीमारी में ४ रत्ती पियारंग को थोड़े से गुलाब जल में घिसकर पिलाने से वमन और दस्त बन्द हो जाते हैं। अगर हैजा कफ की वजह से हुआ हो तो २ रत्ती पियारंग को २।३ लौंग और थोड़ी सी काली मिर्चों के साथ पीसकर उसमें थोड़ा सा पपीते के (Strychnos Ignasii) बीजों का चूर्ण मिला कर देने से लाभ होता है।

१ तोला पियारंग को ६ माशे काली मिरच के साथ पीसकर हरी कधी के रस में खरल करें और काली मिरच के बराबर गोलियां बनालेवें। इन में से दो गोली सवेरे और दो गोली शाम को लेते रहने से बवासीर, जलोदर, आमाशय की कमजोरी और कफ की वजह से होने वाली दस्तों में बहुत लाभ होता है।

जलोदर के अन्दर पियारंग ४ रत्ती, सफेद निसोथ २ माशा, अजवायन ४ माशा, मेथी के बीज ४ माशा और सफेद जीरा ४ माशा। इन सबको बारीक पीसकर सात पुड़िया बनालें इन में से प्रति दिन एक पुड़िया निहारे मुँह सवेरे के टाइम में लेकर उस पर उसी समय दाल चावल खालेने से ७ दिन में जलोदर के अन्दर लाभ होता है।

प्रसूति रोग में पियारंग १ रत्ती, अम्बर २ माशा, कस्तूरी २ माशे, केशर २ माशे, काली मिरच २१। इन सब चीजों को पीसकर पानी के साथ गोलियां बनाकर आधे माशे की मात्रा में प्रति दिन खिलाने से और मीठी, खट्टी तथा वातकारक चीजों से परहेज रखने से प्रसूति रोग में बहुत लाभ होता है।

अण्डकोष की सूजन में चित्रक की छाल ६ माशे, धतूरे की जड़ की छाल ६ माशे, वरियारा की जड़ की छाल ६ माशे। इन सब चीजों को पीसकर बकायन के पेड़ की छाल के स्वरस में अथवा काढ़े में मिलाकर गरम २ अण्डकोष पर लेप करने से ३।४ दिन में अण्डकोष की सूजन बिखर जाती है।

सर्प के विष में थोड़े से पियारंग को थूहर और आकड़े के दूध में पीसकर काटी हुई जगह पर लगाने से और थोड़ा सा पियारंग, उत्तम जदवार और काली मिरच के साथ पीसकर खिलाने से लाभ होता है।

पियारंग ४ रत्ती, केशर १ रत्ती, कस्तूरी १ रत्ती, और मोमियाई १ माशा। इन सब चीजों को पीस छानकर इनकी ३ गोलियां बनालें। इन में से हर रोज सवेरे एक २ गोली कलेवे के बाद खाने से दमा, खांसी, आमाशय की जलन, उपदंश और फोड़े फुन्सी में लाभ होता है। [ख० अ०]

पिपुलका

नाम—

बंगाल—रोशुनिया। पंजाब—पाकरमल, अकरकरहा। घाट—पिपुलका। बंबई—अकरा, नकली अकलकरा। लेटिन—Spilanthes Oleracea (स्पीलेंथस ऑलीरेशिया)।

वर्णन—

यह अकलकरे की ही एक नकली जाति है। इसके पौधे का आकार, प्रकार और स्वाद अकलकरे के ही समान होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह सारा पौधा बहुत कड़वा और चरपरा होता है। इसके फूलों के सिरे बहुत गरम और तीव्र स्वाद के होते हैं और इसीलिये इनको मुह में लेने से बहुत लार पैदा होती है। यह पौधा एक प्रभावशाली उत्तेजक पदार्थ माना जाता है। सिर दर्द, जबान का लकवा, गले की सूजन और मसूड़ों की सूजन तथा दांत के दर्द में यह बहुत उपयोगी समझा जाता है। ऐसे बालकों के लिये जिनकी जबान हकलाती हैं यह एक लोकप्रिय औषधि है। इसमें स्पेंथोल नामक एक पदार्थ पाया जाता है।

सड़े हुए दांतों के दर्द में और डाढ की सूजन में इसके फूलों को पीसकर या उनका अर्क निकाल कर लगाया जाता है। जिससे बहुत अधिक लार पडकर डाढ का दर्द और सूजन मिट जाती है।

—:×:—

पिम्परी

नाम—

बंबई—पिम्परी। बंगाल—पाकुर। छोटा नागपुर—जिली। नेपाल—काबरा। संथाल—सुनोनीजार। तेलगू कोंडागोलुक, कोंडाजुई। लेटिन—Ficus Benjamina (फायकस बेंजामिन)

वर्णन—

यह बड़ और पीपल के वर्ग का हमेशा हरा रहने वाला वृक्ष होता है। इसके पत्ते चिकने और चमकदार होते हैं। यह वृक्ष पूर्वी हिमालय, आसाम, चिटगांव, टेनासरिम, छोटा नागपुर और त्रावनकोर में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

मलाबार में इसके पत्तों का काढा तेल में मिलाकर व्रण और घाव पर लगाया जाता है। जिस से घाव जल्दी भर जाते हैं।

छोटा नागपुर की मुंडा जाति के लोग इसके दूधिया रस को चक्षु पटल की अथवा कनीनिका की सफेदी को दूर करने के लिये उपयोग में लेते हैं। जब छोटे बच्चों की आंखों में सफेदी पैदा हो जाती है तब वे इसके दूधिया रस को माता के दूध में मिलाकर २ बूंद की मात्रा में बच्चों की आंखों में टपका देते हैं।

—०×०—

पिलखान

नाम—

संस्कृत—प्लाक्ष । हिन्दी—पिलखान । बंगाल—पाकर । बम्बई—पिपली । मराठी—पेपरी । लेटिन—Ficus Infectoria (फायकस इनफेक्टोरिया) ।

वर्णन

यह पाकर की जाति का एक वृक्ष होता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल फोड़े फुन्सी और श्वेद प्रदर के अंदर काम में ली जाती है ।

प्याज

नाम—

संस्कृत—पलांडु, यवनेष्ट, दुर्गंध, मुखदूषक, नीचभोज्य, शूद्रप्रिय, कृमिघ्न, नृपेष्ट, राजपलांडु, इत्यादि । हिन्दी—प्याज, कांदा, लाल प्याज । बंगाल—पेंयाज । मराठी—पांढरा कांदा, लाल कांदा, पातीचाकांदा । गुजराती—डुंगरी । तेलगू—निरूली । तामील—वजयम । फारसी—प्याज । अरबी—बसल । उर्दू—प्याज । लेटिन—Allium Cepa (एलियम सेपा) ।

वर्णन—

प्याज साग भाजी की तरह प्राय: सारे भारतवर्ष में उपयोग में लिया जाता है । इसलिये इस के विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं है । इसकी लाल और सफेद के भेद से २ जातियां होती हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिकमत—आयुर्वेद के मत से प्याज चरपरी, बलकारक, कफ पित्त नाशक, भारी, वृश्य, रोचक, स्निग्ध और वमन के दोष को हरने वाला है ।

भाव प्रकाश के मतानुसार प्याज स्वादु पाकी, स्वादिष्ट, अनुष्ण, कफकारक, वात विनाशक, बलकारी, वीर्य वर्धक और भारी होता है ।

लाल प्याज शीतल, पित्तनाशक, कफ को दूर करने वाला, दीपन और अत्यन्त निद्राकारक होता है ।

प्याज के बीज वृष्य तथा दांतों के कीड़े और प्रमेह को दूर करने वाले होते हैं ।

डॉक्टर देसाई के मतानुसार प्याज उष्ण, लघु, कड़वा, उत्तेजक, आनुलोमिक, कफघ्न और मूत्रल होता है । इसका आनुलोमिक धर्म बहुत विश्वसनीय है । कफनिस्सारण के लिये यह एक उत्तम वस्तु है । इससे कफ पतला होता है घबराहट की कमी होती है और नवीन कफ का पैदा होना कम हो

जाता है। इसकी यह क्रिया उस समय होती है जब इसके अन्दर रहने वाला तेल फुफ्फुस के मार्ग से बाहर निकलता है। चर्मछिद्रों से बाहर निकलते समय यह त्वचा की विनियम क्रिया को सुधार देता है।

शरीर के अन्दर होने वाले वात, पित्त और कफ इन तीनों के विकारों में इसको देने से लाभ होता है। इससे वात की कमी होती है। पित्त बाहर निकल जाता है और कफ का नाश होजाता है। छोटे बच्चों को और उनकी माताओं को होने वाले कफ के रोगों में इसको देने से कफ पतला होकर निकल जाता है और घबराहट कम हो जाती है। छोटे बच्चों को कच्चे प्याज का रस शक्कर मिलाकर दिया जाता है और उनकी माताओ को प्याज पका कर देते हैं। तरुण मनुष्यों के जीर्ण कफ रोगों में जिस प्रकार गूगल फायदा करता है उसी प्रकार बच्चों की माताओं के कफ रोगों में प्याज फायदा पहुंचाता है। दमें में भी इसके सेवन से लाभ होता है। आंतों की क्रिया शक्ति को बढाकर दस्त साफ लाने में और अर्श रोग और गुदाभ्रंश में भी यह वनस्पति लाभदायक है। पित्त के दोषों में प्याज के सेवन से दूषित-पित्त दस्त की राह बाहर निकल जाता है और उसकी जगह नवीन और शुद्ध पित्त पैदा होता है।

चर्म रोगों के अन्दर भी प्याज का रस केलशियम सल्फाइड की अपेक्षा विशेष गुणकारी सिद्ध हुआ है। गांठ, फोडे—फुन्सी, यौवन पीठिका, नारू, कंठमाला, इत्यादि रोगों पर इसको घी में तलकर बांधने से अथवा इसके रसको लगाने से अच्छा लाभ होता है।

प्याज की गांठ में एक प्रकार का चरपरा, कडवा और उडनशील तेल पाया जाता है जो कि उत्तेजक, मूत्रल और कफ निस्सारक होता है। यह ज्वर, जलोदर, जुकाम और पुराने ब्रोंकाइटीज में उपयोग में लिया जाता है। कॉलिक उदरशूल और स्कर्वी रोग में भी यह लाभदायक है। बाहरी उपयोग में यह एक चर्मदाहक पदार्थ का काम करता है जब कि इसको भूंजकर पुल्टिस के रूप में बांधते हैं। वादी के दर्द में भी यह उपयोगी माना जाता है।

इस वनस्पति के अन्दर कामोत्तेजक धर्म भी पाया जाता है। इसको कच्ची हालत में खाने से यह ऋतुस्राव नियामक भी होती है। जहरीले कीडों के काटने पर इस का रस मसलने से उसकी जलन मिट जाती है। इसके कन्द के बीचका भाग गरम करके कान के अन्दर रखने से कर्ण शूल मिट जाता है। इसके ताजा कन्द का रस गरम करके कान में डालने से भी कर्ण शूल मिटता हैं।

इसके बीजों के अन्दर एक प्रकार का रंग रहित विशुद्ध तेल पाया जाता है जो कि औषधि के काम में आता है। इसकी बनाई हुई चाय अनिद्रा रोग को दूर करती है और चिड़चिडे बच्चों को जब अफीम वगैरह से कुछ लाभ नहीं होता है तो उस समय यह फायदा करती है।

इसके कन्द को दबाकर निकाला हुआ रस थोड़ा नमक डालकर आंख में टपकाने से रतौंधी दूर होता है।

इसके कन्द को कुचलकर उसकी तेज गंध को एमोनिया कार्ब या स्मेलिंग साल्ट की तरह सुंघाने से मूर्छा और हिस्टीरिया से होने वाली बेहोशी दूर होजाती हैं। यह आँतों की क्रियाशीलता को भी उत्तेजित करता है। यह पीलियां, खूनी बवासीर, गुदाभ्रंश और पागल कुत्ते के विष में भी उपयोग में लिया जाता है।

इसका बाहरी उपयोग अर्थात इसके रसको मसलने से बिच्छू के विष की जलन में शांति होती है।

इसमें पार्यायिक ज्वरों को निवारण करने की शक्ति भी है। इसके सेवन से राजयक्ष्मा रोग में कफका पड़ना कम होजाता है। इसको सिरके के साथ मिलाकर गले के अन्दर की खराबी दूर करने के लिये लगाया जाता है।

कंबोडियामें इसका कन्द मूत्रल, ऋतुश्रावनियामक और छाती के रोगों को दूर करने वाला माना जाता है। यह अन्तः प्रयोग में ब्रोंकाइटीज, यकृत के रोग और कष्टप्रद मासिक धर्म में दिया जाता है। बाहरी उपयोग में यह कारबकल और लसीका वाहिनी के प्रदाह में (Lymphangites) और गिल्टियों की सूजन पर लगाने के काम में लिया जाता है।

नकसीर या नाक के रास्ते से बहता हुआ खून अगर किसी दूसरे उपाय से बन्द न हो तो एक प्याज को लेकर उसको बीच में से चीर कर उसका एक टुकड़ा रोगी के गले में बाध देने से नाक से बहता हुआ खून बन्द हो जाता है।

यूनानीमत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह भूख बढ़ाता है। मासिक धर्म को साफ करता है। काम शक्ति वर्धक है। इसके सेवन से पेशाब अधिक आता है। प्लेग या हैजे के दिनों में कच्चे प्याज का रस पीने से और इसको हमेशा पास में रखने से बीमारी के आक्रमण का धोखा कम रहता है।

आंख में अगर जाला पड़जाय या नजर कमजोर हो जाय तो प्याज के रस को शहद में मिला कर लगाने से फायदा होता है। इसके रस को कान में टपकाने से बहिरापन मिटता है और कान का मैल साफ हो जाता है। इसको पका कर ठण्डी सूजन पर लेप करने से बड़ा लाभ होता है। कफ की वजह से पैदा हुई गले की सूजन में भी यह लाभ पहुँचाता है। बिच्छू के विष और ततैया के डंक पर इसको पीसकर लेप करने से और इसका छटाँक भर रस पिला देने से बड़ा लाभ होता है। इसके रस को शुद्ध माजूफल और नमक के साथ लगाने से श्वेत कुष्ट और छाजन में लाभ होता है।

प्याज को सिरके के साथ मिलाकर खाने से आमाशय को ताकत मिलती है।

काम शक्ति को बढाने में भी यह वनस्पति बहुत सफल है। प्याज की तीन गांठों को एक बरतन में रखकर उसके ऊपर ताजा दूध इतना डालें कि वह प्याज से ऊपर चार उंगल तक भर जाय। फिर उसको पकावें, जब गल जाय तब आग से नीचे उतार कर रखलें। फिर प्याज के बराबर गाय का घी

और उतनी ही शहद लेकर उसमें डालें और फिर थोड़ी देर पकावें। फिर शकाकुल और कुलंजन दोनों चीजें छै २ तोला लेकर उसमें मिलादें। यह औषधि अत्यन्त कामशक्ति वर्धक हैं।

प्याज का रस एक भाग, दो भाग शहद में मिलाकर पकावें इसमें से नो माशा रोज खाने से कामेंद्रिय में बहुत उत्तेजना पैदा होती है। इससे मनुष्य की कामशक्ति भी बहुत बढ़ती है।

देश २ के पानी और आबहवा से होने वाले नुकसान को इसका सेवन रोक देता है। इसको पकाकर या भूवल में भून कर देने से खांसी के रोग में बहुत लाभ होता है। खट्टी डकारें आना बन्द हो जाती है। जिसको भूख न लगती हो वह यदि प्याज को सिरके के साथ मिलाकर खाया करे तो बहुत लाभ होगा।

अगर किसी जगह के बाल उड़ गये हों तो उस जगह को खूब रगडकर प्याज के रस को शहद में मिलाकर लगाने से नये बाल जमने लगते हैं।

प्याज का ताजा रस पीने से मासिक धर्म साफ होता है। गुर्दे और मसाने की पथरी बिखर जाती है और पेशाब साफ होता है।

प्याज के खाने से पाचनशक्ति बढती है। इसके रस में घी मिलाकर पिलाने से ताक़त बढती है। पागल कुत्ते के काटे हुए जखम पर प्याज का रस लगाने से और उसको प्याज का रस पिलाने से विष का विकार जल्दी आराम हो जाता है। इसके आध पाव रस में मिश्री मिलाकर दिन में एक बार पिलाने से खूनी बवासीर आराम होजाता है। प्याज को काटकर कटे हुए हिस्से पर बुझा हुआ चूना लगाकर बिच्छू के डक पर रगड़ने से बिच्छू का जहर फौरन उतर जाता है। इसके ताजा रस को बदन पर मलने से लू का असर फौरन जाता रहता है। प्याज और लहसन को पीसकर लगाने से कान खजूरे का जहर उतर जाता है। बुखार, जलोदर, जुकाम और पुरानी खाँसी में इसका उपयोग लाभदायक है इसके रस में हींग और काला नमक मिलाकर पिलाने मे बादी का दर्द और पेट का फूलना मिट जाता है। इसका रस सुघाने से नकसीर बन्द होजाती है। प्याज और कलोंजी को बराबर लेकर चिलम में रखकर उसका धुआं पीने से मसूडे की सूजन और दांतों का दर्द मिट जाता है। इसका रस कान में डालने से कान का दर्द दूर होता है और कान के कीडे मर जाते हैं। प्याज का रस आंख में डालने से आंख का दर्द बन्द होजाता है। सिरकी गजपर इसका रस लगाने से लाभ होता हैं इसके बच्चे के पेशाब में पीसकर गरम करके बदगांठ पर लगाने से बदगांठ बिखर जाती है।

प्यास के बीज अत्यन्त कामशक्ति वर्धक होते हैं। ठडी प्रकृति वाले की कामशक्ति को ये बहुत बढाते हैं। इनका लेप श्वेत कुष्ट में लाभ दायक होता है। इनको सिरके में पीसकर दाद या ऐसी छाजन पर जो बहुत जाड़ी और स्याह दाग वाली हो लगाने से बहुत लाभ होता है।

मुजिर—इसका अधिक सेवन गरम प्रकृति वालों को नुकसान पहुंचाता है। क्योंकि यह उनमें प्यास पैदा करता है। पसीना अधिक लाता है और स्मरण शक्ति को नुकसान करता है।

दर्पनाशक—मट्ठा, दही और शहद इसके दर्प को नाश करते हैं।

उपयोगः—

कर्णपीड़ा—प्याज के बीच का भाग गरम करके कान में रखने से अथवा ताजा प्याज का रस गरम करके कान में टपकाने से कान की पीड़ा मिटती है।

मासिक धर्म की रुकावट—असमय में रुका हुआ मासिक धर्म कच्चे प्याज को खिलाने से फिर जारी होजाता है।

मूर्च्छा और आवेश रोग—प्याज को कूट कर सुँघाने से स्त्रियों की मूर्च्छा और आवेश रोग मिटता है।

बिच्छू का विष—प्याज को पीस कर बिच्छू के दंश पर लेप करने से शांति मिलती है।

दाह और खुजली—त्वचा सम्बन्धी रोगों पर इसका लेप करने से दाह और खुजली मिटती है।

गले का रोग—इसको सिरके के साथ पीस कर चटाने से गले के रोग मिटते हैं।

गठिया की पीड़ा—प्याज का रस और राई का तेल बराबर मिला कर मालिश करने से गठिया की पीड़ा में लाभ होता है।

वाजीकरण—प्याज के रस में घी मिला कर पीने से पुरुषार्थ बढ़ता है।

मंदाग्नि—प्याज को सिरके के साथ पका कर खाने से मंदाग्नि मिटती है।

पागल कुत्ते का विष—पागल कुत्ते के काटे हुए जख्म पर प्याज का ताजा रस लगाने से और रोगी को प्याज का रस पिलाने से विष का प्रभाव कम होता है।

खूनी बवासीर—प्याज का १० तोला रस २॥ तोले मिश्री मिला कर दिन में १ बार पीने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

ज्वर—मझोली मोटाई का एक प्याज ३।४ काली मिरच के साथ दिन में दो बार खाने से दुष्ट वायु से पैदा हुआ ज्वर नष्ट हो जाता है।

अनिद्रारोग—कच्चे प्याज को खाने से अनिद्रा रोग मिटकर मीठी नींद आती है।

काम शक्ति की कमजोरी—प्याज को किसी बरतन में भरकर उसके मुँह को ऐसा बन्द कर देना चाहिये जिससे उसमें हवा न जाने पावे। फिर उस बरतन को गाय बान्धने की जगह पर गाड़ देना चाहिये। चार महिने बाद उसको निकाल कर उसमें से एक २ प्याज प्रति दिन खिलाने से मनुष्य की कामशक्ति बहुत जाग्रत होती है।

आमातिसार—एक प्याज के अन्दर आधी रत्ती अफीम रखकर उसको भूमल में भूनकर खिलाने से आमातिसार मिटता है।

लू का लगना—प्याज के ताजा रस को शरीर पर मर्दन करने से लू का असर तुरंत मिटता है।

नकसीर—प्याज का रस नाक में टपकाने से नकसीर बन्द होता है।

उदर शूल और आफरा—इसके रस में हींग और काला नमक डालकर पिलाने से उदरशूल और आफरा मिटता है।

मसूड़ों की सूजन—प्याज और कलौंजी समान भाग लेकर चिलम में भरकर इनका धूम्रपान करके मुँह से लार टपका देने से मसूड़ों की सूजन और दांत की पीड़ा मिटती है।

नेत्र रोग—प्याज का रस आंख में लगाने से नेत्र पीड़ा मिटती है। प्याज के रस में शहद मिलाकर अंजन करने से नेत्र पीड़ा और नजला मिटकर आंख की ज्योति बढ़ती है।

बदगाँठ—प्याज को बालक के मूत्र में पीसकर तेल में तलकर बदगाँठ पर बांधने से बदगाँठ बैठ जाती है।

बनावटें:—

सिंगरफ भस्म—उत्तम जाति के रूमी सिंगरफ का पांच तोले वजन का समचौरस टुकड़ा लेकर उसको कपड़े में बांधकर, अरनी की छाल और पत्तों के काढे से भरी हुई हांडी में दौला यंत्र की तरह लटका कर तीन दिन तक बहुत हलकी आंच पर स्वेदन करना चाहिये। उसके पश्चात् खट्टी कांजी, गौमूत्र और नीबू के रस में तीन २ दिन तक दौला यन्त्र में पकाना चाहिये। फिर उस सिंगरफ के टुकडे को एक मिट्टी के मजबूत सरावले में रखकर उसके चारों तरफ १० तोला लौंग की पाल बांध देना चाहिये। फिर उस सरावले को चूल्हे पर चढ़ाकर नीचे हलकी २ आंच जलाना चाहिये और हींगलू के टुकड़े पर थोड़ा २ प्याज का रस डालते जाना चाहिये। ज्यों २ रस सूखता जाय त्यों २ नया रस डालते रहना चाहिये। इस प्रकार ४ मन पक्का प्याज का रस उस सिंगरफ के टुकड़े पर जला देना चाहिये। यह जरूरी नहीं है कि रात दिन अग्नि जलती रहे। इतना ही जरूरी है कि किसी भी समय जब फुरसत मिलती जाय, इस क्रिया को करते हुए ४ मन प्याज का रस पूरा कर देना चाहिये। यह ख्याल में रखना चाहिये कि जब अग्नि जलती रहे तब हमेशा वह सिंगरफ का टुकड़ा प्याज के रस से तर रहना चाहिये। अगर वह सूख गया तो उसमें का पारा आग की गरमी पाकर उड़ जायगा।

जब यह क्रिया पूरी होजाय तब उस सिंगरफ को पीसकर शीशी में भरकर रखना चाहिये और एक बरसात बीतने पर इस औषधि का उपयोग लेना चाहिये।

इस सिंगरफ की मात्रा एक चांवल से लेकर एक रत्ती भर तक की है। इसको वायु के रोगों में तुलसी के रस के साथ, पित्त के रोगों में मक्खन के साथ और कफ के रोगों में शहद अथवा नागर बेल के पत्तों के रस के साथ देने से बड़ा लाभ होता है। इसके सिवाय धातु क्षीणता, सुआरोग, संग्रहणी, नपुंसकता, वगैरह रोगो में भी यह अच्छा लाभ दिखलाता है। जब तक इसका प्रयोग चलता रहे तब तक खाने पीने में दूध, भात, घी और गेहूं की रोटी का ही प्रयोग करना चाहिये। स्त्री संग का बिलकुल त्याग कर देना चाहिये। (जगल नी जड़ी बूटी)

प्याज नं० २

नाम—

पंजाब—करफर, प्याज, तेज्मा। लेटिन—Iris Kumaonensis (आयरिस कुमाऊनेन्सिस)

वर्णन—

यह एक वर्ष जीवी वनस्पति है। इसकी जड़ का कन्द मोटा और नीचे फैलने वाला होता है। इसके पत्ते १० से लेकर ३५ सेंटिमीटर तक लंबे और ८ मिलीमीटर तक चौड़े होते हैं। यह वनस्पति पश्चिमी हिमालय में काश्मीर से कुमाऊ तक ८ हजार फीट से १२ हजार फीट की ऊंचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

स्टेवर्ट के मतानुसार इसकी जड़ और पत्ते बुखार के अन्दर काम में लिये जाते हैं।
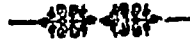
प्याजी

नाम—

हिन्दी—बोकट, प्याजी। गुजराती—डूंगरो। पंजाब—प्याजी, बोकट, बिंघर बीज। अरबी—अशराश, खुनेशी। लेटिन—Asphodelus Tenuifolius, A. Fistulosus (एस्फोडेल्यूस टिनुइफोलियस)।

वर्णन—

यह एक वर्ष जीवी वनस्पति है। इसके पत्ते १५ से लेकर ३० सेंटिमीटर तक लम्बे और २५ से ३ मिलीमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल सफेद होते हैं। यह वनस्पति सारे भारतवर्ष के खेतों में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानीमत से इसके बीज मूत्रल होते हैं। व्रण, घाव और सूजन पर इसका लेप लाभदायक होता है।

पिराभा (अकलकरा नकली)

नामः—

पंजाब—अकरकरा, पोकरमूल। बम्बई—अकरकरा। आसाम—पिराभा। लेटिन—Spilanthus Acmella (स्पिलेंथस एकमेला)।

वर्णन:—

यह अकलकरे की एक नकली जाति होती है जो भारत वर्ष में पैदा होती है और जिसका आकार प्रकार प्रायः अकलकरे के समान ही होता है। इसके फूलों के सिरे बहुत तीक्ष्ण होते हैं। इन को चूसने से दन्तशूल दूर होता है। इससे मसूड़ों में ललाई और लार पैदा होती है।

मुंडा जाति के लोग जब उनके बच्चे बरसात के दिनों में पानी के अन्दर खेलते है और उनके पैरों में लाल २ फुन्सियां और चकत्ते हो जाते हैं तब इसके पत्तों को पीस कर लगाते हैं जिससे खुजली शांत हो जाती है।

इन्डो चायना में इसके पौधे को पानी के साथ उबाल कर उस पौधे को उसी पानी के साथ खिलाते है। जिस से रक्तातिसार बंद होता है।

सीलोन में इसके पत्ते और फूल दन्तशूल और गले की पीड़ा में उपयोग में लेते हैं। प्रसूति के पश्चात् स्त्रियों को खिलाने के काम में भी इसका उपयोग होता है।

फिलिपाइन में इसकी जड़ का काढ़ा विरेचक वस्तु की तरह दिया जाता है और इसके पत्तों का काढ़ा संधिवात के अन्दर बफारा देने के काम में लिया जाता है। यही काढ़ा लोशन के रूप में गीली खुजली और कई प्रकार के चर्म रोगों को दूर करने के लिये उपयोग में लिया जाता है। इसके पत्तों का रस और इसके सूखे पत्तों का पुल्टिस घाव को अच्छा करने वाला माना जाता है। इसके पत्तों का काढ़ा मूत्रल और पथरी गलाने वाला माना जाता है।

मेडागास्कर में रक्तातिसार नाशक, मूत्रल, दांतों की वेदना को दूर करने वाले, पौष्टिक और पाचक द्रव्य के रूप में इस वनस्पति का उपयोग होता है।

डॉक्टर डब्ल्यू. फॉर्कहर के मतानुसार इसके फूलो के सिरे का टिंक्चर दन्त शूल को मिटाने के लिये टिंक्चर पाइरिथ्रम (असली अकलकरे के टिंक्चर) के बदले उपयोग में लिया जा सकता है। उन्हीं के मतानुसार मुंह के जबड़े की हड्डियों की सूजन को दूर करने के लिये यह एक विशेष वस्तु है। लिंट का एक टुकड़ा इसके टिंक्चर में भिगाकर मसूड़ों के अन्दर रखदिया जाता है और दिन में ३-४ बार उसको बदला जाता है। जिससे शीघ्रता के साथ दर्द और सूजन आराम होजाती है।

——:०:——

पिरिया हलीम

नाम—

उत्तर पश्चिम हिमालय—पिरियाहलीम। दक्षिण—लुटपुटिया। लेटिन Nasturtium Fontanum (नेस्टुरटियम फोंटेनम)।

वर्णन—

यह एक जल में रहने वाली वनस्पति है। इसके पत्ते हरे, कुछ भूरे और डण्ठल के दोनों तरफ

लगते हैं। इसके फूल छोटे और सफेद होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव.—

यह वनस्पति पञ्जाब और बिलोचिस्तान में पैदा होती है। यह वनस्पति अपने रक्तातिसार नाशक और उत्तेजक तत्वों के लिये बहुत मशहूर है। ब्राजील में इसे छाती की तकलीफों को दूर करने लिये देते हैं। इस पौधे को सरसों के तेल में मिला कर उसका रासायनिक विश्लेषण करने से उसमें लोहा, कट्ठतत्व, आयोडिन, फास्फेट और दूसरे क्षार पाये जाते हैं।

पिस्ता

नाम—

संस्कृत—निकोचक, वातफल, सकोच, जलगोशक, पिस्त, मुकूलक। हिन्दी—पिस्ता। बंगाल—पैस्तागाछ। मराठी—पिस्ते। गुजराती—पिस्ता। लेटिन—Piotasia Vera (पिस्टेसियाव्हेरा)। फारसी—पिस्ता। अरबी—फिस्तक।

वर्णन—

पिस्ते के झाड़ अफगानिस्तान, ईरान और सीरिया में होते हैं। इन झाड़ों के पत्तों पर एक प्रकार के कीड़ों के घर बनजाते हैं जिसको पिस्ते के फूल कहते हैं। ये एक तरफ से गुलाबी और दूसरी तरफ से पीले या सफेद होते हैं। ये कहीं अंजीर के आकार के, कहीं गोल और कहीं अंडाकृति रहते हैं। इनका स्वाद बहुत तूरा और सुगंधित होता है। इसका फल २ साल में एक बार आता है। इस फल के ऊपर एक कड़ा छिलका होता है। उसको फोड़ने से उसके अन्दर से पिस्ते का मग़ज निकलता है। यह मग़ज ही मेवे की तरह खाने और मिठाइयाँ बनाने के काम में आता है।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिकमत—आयुर्वेदिकमत से पिस्ते भारी, स्निग्ध, वीर्यवर्धक, गरम, धातुवर्धक, रक्त को शुद्ध करने वाले, स्वादु, बलवर्धक, पित्तकारक, कडवे, सारक, कफनाशक तथा वात, गुल्म और त्रिदोष को दूर करते हैं।

यूनानीमत—यूनानीमत से पिस्ते दूसरे दर्जे में गरम और तर है। मखजनुल अदविया के मत से ये दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क हैं। पिस्ते स्मरण शक्ति, हृदय, मस्तिष्क और आमाशय को शक्ति देते हैं। पागलपन, वमन, मतली, मरोड़ और यकृत की सर्दी को लाभ पहुंचाते हैं। बदन को मोटा करते हैं। आमाशय को ताकत देने के लिये पिस्ते के समान कोई दूसरा मगज उत्तम नहीं है। हकीमगिलानी का कहना है कि पिस्ते के ऊपर जो लाल रंग का बारीक छिलका रहता है उसके साथ अगर पिस्ते को खाया जाय तो आमाशय के लिये बहुत मुफीद होता है। अगर उस लाल छिलके को उतार लिया

जाय तो यह आमाशय को नुकसान पहुंचाता है। शेख ने भी पिस्ते के मगज को आमाशय के लिये बहुत उत्तम वस्तु बतलाया है। इसके अतिरिक्त यह कामशक्ति वर्धक, यकृत के सुद्दों को खोलने वाला और खाँसी में लाभदायक होता है। गुर्दे की कमजोरी में भी यह मुफीद है। पिस्ते को चबाने से मसूड़े मजबूत होते हैं और मुँह में खुशबू आने लगती है। शराब में पिस्तों को जोश देकर के खाने से कीड़े मकोड़ों का ज़हर उतर जाता है। हैजा प्लेग के दिनों में इसको शक्कर के साथ खाना अच्छा रहता है। पिस्ते की छाल और पत्तों के काढ़े से तर और सूखी खुजली को धोने से बहुत लाभ होता है। इस काढ़े से सिर को धोने से सिर के बाल मजबूत होते हैं और सिर में जुएं नहीं पड़तीं।

पिस्ते का छिलका

पिस्ते के ऊपर दो छिलके होते हैं। एक सुर्ख रंग का पतला छिलका जो पिस्ते की मगज़ से चिपका हुआ रहता है और दूसरा सफेद रंग का सख्त छिलका जिसके अन्दर पिस्ते का मगज़ रहता है। इन में से पहला पतला छिलका समशीतोष्ण होता है। दूसरा सख्त छिलका सर्द और खुश्क होता है। पिस्ते का पतला छिलका काबिज, वमन और हिचकी को बन्द करने वाला, दाँत, मसूडे, हृदय और मस्तिष्क को ताकत देने वाला और तृषा शामक होता है। इसके खाने से मुँह के छाले मिट जाते हैं। इसको शराब के साथ उपयोग में लेने से बिच्छू वगैरह जहरीले जानवरों के विषों में लाभ होता है। इसके छिलके की फक्की देने से अजीर्ण मिटता है और शक्कर साथ इसका चूर्ण खाने से ताकत बढ़ती है।

पिस्ते के फूल

पिस्ते के फूल सर्द, खुश्क, काबिज और आनन्द वर्धक होते हैं। इनके गुण अकाकिया समान होते हैं।

पिस्ते का तेल

१०० तोले पिस्ते में से ६० तोले हरे रंग का गाढा मीठा और खुशबूदार तेल निकलता है। यह गरम और तर होता है। आधा शीशी के रोगी को गरम जल का बफारा देकर अगर यह तेल नाक में टपका दिया जाय तो आधा शीशी मिट जाती है। इस तेल को शराब के साथ लेने से जहरों का दर्प नष्ट होता है।

यह तेल स्मरणशक्ति को बढ़ाता है। खाँसी को रोकता है। हृदय को ताकत देता है। पागलपन, वमन और मतली को मिटाता है। खून की खराबी में मुफीद है। यकृत को लाभ पहुंचाता है। मुँह के छालों में मुफीद है।

मुजिर—पिस्ते का मगज जिसका लाल छिलका उतार लिया गया हो अधिक मात्रा में आमाशय और गुदा को नुकसान पहुँचाता है। इसको ज्यादा खाने से पित्ती उछल आती है।

दर्पनाशक—शिकंजबीन, सिरका और खट्टा अनार।

प्रतिनिधि—मगज बादाम या आधी मात्रा में अखरोट की मगज।

—— X.——

पिठवन

नाम—

संस्कृत – प्रश्नपर्णी, पृष्टपर्णी, प्रथकपर्णी, तन्वी, क्रोष्टुकपुच्छिका, त्रिपर्णी, पूर्णपर्णी, कलशी, सिंह लांगुली, विष्णुपर्णी, इत्यादि। हिन्दी—पिठवन, पिठौनी, दावड़ा, दौला, प्रश्नपर्णी। बंगाल—चाकुलिया। बम्बई- दौला। मराठी—पिठवन, दावला। गुजराती—पृष्टपर्णी। तेलगू—अंमोपर्णिका, त्रिविलिका, कोलापोन्ना। लेटिन—Uraria Lagopoides (यूरेरिया लेगोपोइडस)।

वर्णन—

यह एक क्षुप जाति की वनस्पति है। इसका पौधा दो ढाई फीट तक ऊंचा होता है। इसकी बहुतसी डालियां ज़मीन पर फैलती हैं। इसके पत्ते २ ५ से ५ सेंटिमीटर तक लंबे होते हैं। इसके फूल गोल, सफेद और कुछ नीली छटायुक्त होते हैं। इसकी फलियां चपटी, टेढ़ी और करीब एक इञ्च लम्बी होती है। औषधि में इसकी जड़ काम में आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से पिठवन त्रिदोष नाशक, वीर्य जनक, गरम, मधुर, सारक तथा दाह, ज्वर, श्वास, रक्तातिसार, तृषा और वमन को दूर करने वाली होती है।

राजनिघण्टु के मतानुसार पिठवन, कड़वी, गरम, तिक्त तथा अतिसार, खाँसी, वातरक्त, ज्वर, उन्माद, व्रण और दाह को नष्ट करने वाली होती है।

यह वनस्पति आयुर्वेद के सुप्रसिद्धयोग दशमूल क्वाथ का एक अंग है जो कि भारतीय चिकित्सा पद्धति में दिन रात उपयोग होता है। यह काढ़ा धातु परिवर्तक, पौष्टिक, कफ नाशक और प्रसूति सम्बन्धी रोगों में बहुत उपयोगी माना जाता है। इस वनस्पति का उपयोग अकेले बहुत ही कम होता है।

सुश्रुत के मतानुसार इस वनस्पति को दूध के साथ गर्भवती स्त्री को सातवें महीने में देने से गर्भपात का भय नहीं रहता चरक और सुश्रुत ने इसको सांप और बिच्छू के विष पर भी उपयोगी माना है।

मात्रा—इसकी मात्रा ६ माशे से १ तोले तक की है।

पार्यायिक ज्वरों में भी इसकी जड़ लाभदायक होती है। इसकी जड़ को मिश्री के साथ औटाकर पिलाने से जुकाम मिटता है। गर्भवती स्त्री की नाभि, बस्ति और योनि पर इसका लेप करने से प्रसूति आसानी से होजाती है।

——:X·——

पिठवन नम्बर २

नाम—

संस्कृत—चित्रपर्णी, पृष्टपर्णी। हिन्दी—पिठवन, डावरा, शकरजा। गुजराती—पिलवन, पिटवन। बंगाल—शकरजटा। मराठी—रानगजा, पिटवन, प्रश्नपर्णी। पोर बन्दर—पीलो समेरवो। पंजाब—देवरदाने। तामील—वितिरप्पा लडाई। लेटिन—Urana Picta (यूरेरियापिक्टा)।

वर्णन—

यह छोटी जाति का तुप पानी के किनारे और छाया में पैदा होता है। इसके पत्ते २०-से ३० सेंटिमीटर तक लंबे होते हैं। इसके फूल छोटे और लाल होते हैं जो बरसात के आखिर में लगते हैं। इसकी फलियां छोटी होती हैं। इस वनस्पति का पचांग औषधि के काम में आता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका फल बच्चों के मुँह के छालों पर लगाने के काम में लेते हैं। इसका पौधा एचिसके-रीनेटा (Echis Carinata) नामक सर्प के विष को दूर करने के लिये बहुत उपयोगी माना जाता है।

———:※:———

पित्तपापड़ा

नाम—

संस्कृत—परपट, वरतिक्त, परपटक, अर्क, चरक, कलपांग, कटुपत्र, कवचनामक, कृष्णशाख, पशुपर्याय, प्रगन्ध, पित्तारि, शीतवल्लभ, सुतिक्त, तृष्णारि, त्रिपष्टि, इत्यादि। हिन्दी—पित्तपापड़ा, शाहतरा। फारसी—शाहतरा। बंगाल—बनसुल्फा। गुजराती—पित्तपापड़ा, खड़सलियो। तामील—तुसा। तेलगू—चटराशी। उर्दू—शाहतरा। लेटिन—Fumaria Parviflora (फ्यूमेरिया परवीफ्लोरा)।

वर्णन—

पित्तपापड़े के पौधे बरसात के दिनों में बहुत पैदा होते हैं। इसका पौधा जमीन से थोड़ा ऊँचा उठकर चारों तरफ अपनी शाखायें छोड़ता है। खेत की बाड़ के पास अथवा दूसरे झाड़ों की आड़ में अच्छी जमीन में यह १ से १॥ फुट तक जमीन से ऊँचा उठता है। लेकिन खुली जमीन में यह जमीन के ऊपर फैल जाता है। इसके पत्ते आधे से लेकर २॥ इञ्च तक लम्बे और पाव से लेकर पौन इञ्च तक चौड़े और दोनों किनारों पर सँकड़े होते हैं। इसकी शाखाएं ६ इञ्च तक लम्बी होती हैं जिन पर मांजर निकलती है। इसके फूल बैंगनी छाया लिये हुए गुलाबी रङ्ग के होते हैं। इसके फल जौ के दाने के समान, नीले और भूरे रंग के होते हैं। इस सारे पौधे के ऊपर सफेद रंग के रुँए रहते हैं। इसकी गंध और स्वाद कड़वा होता है। इसकी २ जातियां होती हैं। एक को शाहतरा कहते हैं जो ईरान से आती

है और दूसरी पित्तपापड़ा जो यहां पर ही पैदा होती है। ईरान से आने वाली वनस्पति गुण में ज्यादा प्रभावशाली होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—निघण्टु रत्नाकर के मत से पित्तपापड़ा शीतल, कड़वा, मलरोधक, वात को कुपित करने वाला, हलका पचने में चरपरा तथा पित्त, कफ, ज्वर, रुधिर विकार, अरुचि, दाह, ग्लानि, भ्रम, मद, प्रमेह, वांति, तृषा और रक्तपित्त को शान्त करने वाला है।

इसकी शाख मलरोधक, शीतल, वातकारक, हलकी, कड़वी तथा रक्त रोग, पित्त ज्वर, तृषा, कफ, भ्रम और दाह को दूर करती है।

रासायनिक विश्लेषण—रासायनिक विश्लेषण से इसके अन्दर एक प्रकार का अम्लस्वभावी सत्व और एक क्षार पाया जाता है। यह क्षार इसमें करीब ६ प्रतिशत पाया जाता है।

इस क्षार के ऊपर ही इसके सब गुण धर्म अवलम्बित हैं। इसमें पाया जाने वाला क्षार त्वचा, यकृत और मूत्र पिंड के द्वारा बाहर निकलता है। जिससे यह स्वेदजनन, मूत्रल और कटु पौष्टिक होता है। आंतों की शिथिलता से होने वाले अजीर्ण रोग में यह विशेष लाभ पहुँचाता है।

पित्तपापड़ा पित्त का प्रकोप शान्त करने के लिये भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। पित्त प्रधान ज्वरों में यह बहुत लाभ पहुंचाता है। मलेरिया ज्वर में भी पित्त की प्रधानता होती है। उसमें भी इसका प्रयोग निर्भय होकर किया जा सकता है।

यह पसीना लाकर खून को साफ करता है। मूत्र विरेचन करके ज्वर की गरमी और पेशाब की ललाई को दूर करता है। सिर में चढ़ी हुई गरमी को उतार कर भयंकर सिर दर्द को बन्द करता है। हाथ, पैर तथा आंखों में होने वाली जलन को दूर करता है। ज्वर उतरने के पश्चात् ज्वर की कमजोरी को भी दूर करता है।

इसका हिम बना कर पीने से कई प्रकार के पित्त प्रधान ज्वर उतर जाते हैं। इसके हिम को बनाने का तरीका इस प्रकार है।

पित्त पापड़ा, काली द्राक्ष, धनियां, गिलोय और चिरायता ये सब चीजें एक २ तोला लेकर चूर्ण करके [illegible]म को १॥ सेर पानी में गला देना चाहिये। सवेरे उसको मल छान कर घण्टे घण्टे में ५ से लेकर १० तोला तक ज्वर के रोगी को पिलाना चाहिये। इस हिम को पीने से ज्वर की प्यास बुझती है। गले की खुश्की कम होती है। सिर दुखना बन्द होता है। पेशाब साफ आने लगता है और ज्वर की गरमी कम हो जाती है।

पित्तपापड़ा और गिलोय को समान भाग लेकर उसका काढ़ा बनाकर उसमें काली मिरच का चूर्ण डालकर पीने से जीर्ण ज्वर और उसके साथ रहने वाली खांसी और मन्दाग्नि दूर होती है।

बेडन पावेल के मतानुसार इसका सूखा पौधा मन्द ज्वर के अन्दर उपयोगी माना जाता है।

इसके अतिरिक्त कृमि नाशक, मूत्रल, पसीना लाने वाला और मृदु विरेचक गुण भी इस पौधे के अन्दर माने जाते हैं। चर्म रोगों में रक्त को शुद्ध करने के लिये इसका उपयोग होता है।

काली मिरच के साथ इसको मलेरिया ज्वर में देने से लाभ होता है।

यूरोप में इसको धातु परिवर्तक, मृदुविरेचक और ज्वर नाशक औषधि की तरह काम में लिया जाता है।

स्पेन के अन्दर यह आंतों से सम्बन्ध रखने वाली बीमारियों में और रक्तातिसार में तथा चर्म रोगों में उपयोगी माना जाता है।

कोमान के मतानुसार यह वनस्पति हलके बुखार के रोगियों के ऊपर उपयोग में ली गई मगर इसका परिणाम असन्तोष जनक रहा।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह पौधा किंचित खट मीठे स्वाद के साथ कड़वा होता है। यह मूत्रल अग्नि वर्द्धक, रक्त और चर्म सम्बन्धी बीमारियों को दूर करने वाला, फेफड़े और दांतों को मजबूत करने वाला, आंखों को शुद्ध करने वाला, वमन को रोकने वाला और तिल्ली की बीमारियों में लाभदायक होता है।

सूखा पित्त पापड़ा पुराने बुखार, वायु के रोग और पीलिया में मुफीद है। वमन और जी की मिचलाहट को दूर करता है। पेशाब बढ़ाता है। भूख पैदा करता है। ताजा पित्तपापड़े का लेप बर्र और मधु मक्खी के डंक पर बहुत लाभदायक है।

पित्तपापड़ा तिल्ली और हृदय के लिये हानिकारक है। इसलिये अगर इसको बड़ी हरड़ के साथ लिया जाय तो विशेष अच्छा रहता है। क्योंकि बड़ी हरड़ इसकी दर्प नाशक है।

पित्तपापडे में खून को साफ करने की विशेषता है। यह खून को पतला भी करता है। अगर इसको मेंहदी के पत्तों के साथ पीस कर तमाम बदन पर मालिश करें तो तर और सूखी दोनों प्रकार की खुजली आराम हो जाती है। इसके रस में शक्कर डालकर शरबत बनाया जाता है। इस शरबत को पीने से दाद मिट जाते हैं और दिमाग के सब दोष निकल जाते हैं। अगर इस शरबत में बडी हरड़ भी मिला लीजाय तो विशेष लाभ दायक हो जाता है।

इसके रसको आंखों में लगाने से आंख की रोशनी तेज होती है और आंख से पानी बह कर उसकी शुद्धि हो जाती है। आंखों के अन्दर जो परवाल निकलता है उसको उखाड़ कर उसकी जड़ों में अगर पित्त पापड़े का रस थोड़ा सा गोंद मिलाकर भर दिया जाय तो फिर ये बाल न निकलेंगे।

इसके काढ़े से कुल्ले करने से मसूड़े मजबूत होते हैं और जबान तथा तालू के जखम भर जाते हैं। तथा मुंह और जबान की गरमी दूर हो जाती है।

पित्त पापड़ा आमाशय को ताकत देता है। मगर इस कार्य के लिये हरे की अपेक्षा सूखा अच्छा

होता है। इसको शराब के साथ लेने से आमाशय की शक्ति बढ़ती है। सिरके के साथ खाने से भूख बढ़ती है तथा मतली और कफ की वमन भी रुक जाती है। इसका भमके से खिंचा हुआ अर्क काबिज होता है। इसके सेवन से यकृत और तिल्ली के सुद्दे खुल जाते हैं।

मुजिर—इसका अधिक सेवन तिल्ली, गुर्दा और हृदय को नुकसान पहुंचाता है और बेचैनी पैदा करता है।

दर्पनाशक—तिल्ली और गुर्दे के लिये बड़ी हरड़, शहद और नीबू तथा बेचैनी के लिये आलूबुखारा।

मात्रा—चूर्ण की मात्रा ६ माशे से १० माशे तक। ताजा रस की मात्रा ५ तोले से १० तोले तक।

उपयोग—

कामला—पित्त पापड़ा की फांट बनाकर पिलाने से कामला रोग में लाभ होता है।

पगतली की दाह—इसके पत्तों के रसका लेप करने से हथेली और पगतली की दाह मिटती है।

पाकस्थली की दाह—इसके रस में दूध और शक्कर मिलाकर पीने से पाकस्थली की दाह मिटती है।

ज्वर—दूषित जलवायु और पृथ्वी के कारण से जो ज्वर होता है वह पित्त पापड़ा, कटेरी और गिलोय का क्वाथ पिलाने से दूर हो जाता है।

कृमिरोग—पित्त पापड़ा और वाय विडंग को औटाकर पिलाने से पेट के कृमि नष्ट हो जाते हैं।

जीर्ण ज्वर—धनिये और पित्त पापड़े का क्वाथ पिलाने से जीर्ण ज्वर छूटता है।

खुजली—पित्त पापड़े का अवलेह बनाकर चटाने से खुजली और त्वचा के रोग मिटते हैं।

पित्त की वमन—इसके क्वाथ में शहद मिलाकर पिलाने से पित्त की वमन मिटती है।

बनावटें—

पित्त पापड़ादिरिष्ट—४०० तोला पित्त पापड़ा लेकर उसको १०२४ तोला पानी के साथ औटाना चाहिये। जब २५६ तोला पानी बाकी रह जाय तब उसको उतार कर छान लेना चाहिये। फिर उसमें ८०० तोला पुराना गुड़, ६४ तोला धावड़ी के फूलों का चूर्ण तथा गिलोय, नागर मोथा, दारू हल्दी, तेलियादेवदार, मोरीगणी, धमासा, चव्य, चित्रक की जड़, सोंठ, मिर्च, पीपर, वायविडंग। इन सब औषधियों का चूर्ण चार चार तोला डालकर चीनी मिट्टी की बरनियों में भर देना चाहिये और बरनियों का मुँह बन्द करके एक महीने तक पड़ी रहने देना चाहिये। इसके पश्चात उस अरिष्ट को छानकर उपयोग में लेना चाहिये।

इस अरिष्ट को १ से २ तोले तक की मात्रा में चौगुने जल के साथ मिलाकर सवेरे शाम पिलाने से सब प्रकार के जीर्ण और विषम ज्वर तथा उनकी वजह से होने वाला पांडु, कामला, सूजन, और तिल्ली तथा यकृत की वृद्धि दूर होती है।

पिसा

नाम—

मराठी—पिसी, पिसा। लेटिन—Litsea Stocksii (लिटसीआ स्टोकसी)।

वर्णन—

यह छोटी जाति का वृक्ष कोकण और कर्नाटक की पहाड़ी जमीन मे पैदा होता है। इसकी डालियाँ और कोमल पत्ते रूएँदार होते हैं। पत्ते ४ से ६ इञ्च तक लम्बे, चमड़े की तरह. फूल रेशम के समान, फल जर्दालू के समान लाल और किरमची रंग के, फल का गूदा पीले रंग का और बीज ऊदीरंग के होते हैं। इसके बीजों में से एक प्रकार का तेल निकलता है जिसे पीसा तेल कहते हैं। यह लाल रंग का होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तो का हिम सुजाक, मूत्राशय की जलन, पथरी, वगैरह दुखदाई रोगों में दिया जाता है। इसके बीजों का तेल खुजली और सन्धिवात पर मालिश किया जाता है।

पीतल

नाम—

संस्कृत—पित्तल, आरकूट, कपिलोह, सुवर्णक, पीतलोह, सुलोहक, ब्राम्ही, राज्ञी, कपिला, पिंगललोह इत्यादि। हिन्दी—पीतल। बंगाल—पीतल। मराठी—पीतल। गुजराती—पीतल। फारसी—पिरंज। अंग्रेजी—Brass.

वर्णन—

तांबे और जस्त के मेल से पीतल की उपधातु बनती है। यह सारे भारतवर्ष में बरतन बनाने के काम में ली जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिकमत—आयुर्वेदिक मत से पीतल रूखा, कड़वा, शोधक, पाडु रोग नाशक, कृमिनाशक और सब प्रकार के प्रमेह, वात, गुदा के रोग, संग्रहणी, पांडु, श्वास, कामला और शूल को नष्ट करने वाला होता है। यह विष नाशक, वीर्य वर्धक और पलीत रोग नाशक होता है।

उत्तम पीतल की पहिचान—

जिस पीतल को अग्नि में तपाकर कांजी में बुझाने से तांबे के समान वर्ण निकले और देखने में पीला, भारी, चोट को सहने वाला हो वह पीतल दवा के योग्य होता है। इसको संस्कृत मे राज रीति कहते हैं इससे विपरीत गुण वाला पीतल ब्रुकतुन्डा कहलाता है। यह दवा के योग्य नहीं होता है।

पीतल का शोधन और मारण

पीतल का शोधन, मारण, निरुत्थिकरण, अमृतिकरण आदि सम्पूर्ण विधि तांबे के समान ही होती है। क्योंकि पीतल तांबे और जस्त के मेल से बनता है।

पीतल का रसायन

पीतल की भस्म ५ तोला, कान्तलोह की भस्म ५ तोला, वज्राभ्रक की भस्म ५ तोला, और सोंठ, मिर्च, पीपर, अजमोद, अजवायन, बायविडंग, बावची, चित्रक, शुद्ध भिलावा और काले तिल। यह सब औषधियां पांच पांच तोले। इन सबको लेकर कूटकर चलनी में छान लें। फिर सब औषधियों को खरल में डालकर थोड़ा थोड़ा नारियल का तेल डालते हुए हथौड़े से कूटना चाहिये। जब एक लाख हथौड़े की चोट लग जाय तब उसकी टिकिया बना लेना चाहिये।

इस पीतल रसायन को ३ माशे से ६ माशे तक की मात्रा में लेने से श्वेत कुष्ठ में बहुत लाभ होता है। यह कुष्ठ के कृमियों को नष्ट करता है। जठराग्नि को बढ़ाता है। बलवर्धक है। और आयु को सुरक्षित रखता है। (रसायनसार)

यूनानीमत से पीतल दूसरे या तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क होता है। यह कफ और वायु के दोषों को मिटाता है। बढ़ी हुई तिल्ली को कम करता है। इसके बरतन में खाना खाने से मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है मगर सीने को नुकसान पहुँचता है। इसके लेप से सूजन बिखर जाती है। जलाये हुए पीतल को आंख में लगाने से खुजली, जाला और आंख से पानी बहना बन्द होता है। इसकी भस्म से पागलपन और आमाशय की कमजोरी मिटती है। मात्रा:— ४ रत्ती।

——०×०——

पीपट बूंटी

नाम—

पंजाब—रूसी मिसाक, पीपट बूटी। लेटिन—Heliotropium Tuberculosum H. Undulatum (हेलियोट्रोपियम ट्यूबरक्युलोसम,)।

वर्णन—

यह एक सीधा और कठोर पौधा होता है। इसकी डालियां रूएँदार होती हैं और इसकी जड़ पर गठानें रहती हैं। इसके पत्ते १.३ से ५ सेंटिमीटर तक लम्बे और २.५ से ८ मिलीमीटर तक चौड़े होते हैं। इसी औषधि की एक जाति का वर्णन गीदड़ तम्बाकू के नाम से इस ग्रंथ के तीसरे भाग में दिया जा चुका है।

गुण दोष और प्रभाव—

स्टेवर्ट के मतानुसार इस पौधे को सर्प विष पर देते हैं। इसके साथ ही तम्बाकू के तेल को दंश

स्थान की जगह पर मालिश किया जाता है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सर्प विषमें निरूपयोगी है।

——:०:——

पीली

नाम—

मद्रास—पीली। लेटिन—Impaticns Chinensis (इम्पेटन्स चाईनेन्सिस)।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति की वनस्पति होती है। इसके पत्ते १.२ लेकर १० सेंटिमीटर तक लंबे होते हैं। इसके फूल सफेद या कुछ गुलाबी झाँई वाले होते हैं। इसके बीज मुलायम, काले, चमकीले और संख्या में बहुत अधिक होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति का अन्तः प्रयोग सुजाक में लाभदायक है और इसके बाहरी प्रयोग से अग्नि से जले हुए स्थान में शांति मिलती है।

——:+:——

पीलोआगियो

नाम –

गुजराती - पीलो आगियो। कच्छी—जोगीड़ो, पीलो जोगीड़ो, पटकुआँर। अंग्रेजी—Yellow Broom Rape (यलो ब्रूम रेप)। लेटिन-- Cistanche Tubulosal (सिस्टेंच ट्यूबूलोसा)।

वर्णन—

इस वनस्पति के पौधे १ से लेकर २ फीट तक ऊँचे होते हैं। यह एक परोपजीवी अर्थात् दूसरी वनस्पतियों से अपना आहार ग्रहण करने वाली वनस्पति है। इसकी गठाने जमीन के अन्दर पीलू, आँकड़ा और निर्गुंडी या ऐसे ही कोई दूसरे वृक्षों की जड़ों पर पैदा होती हैं और उन्हीं जड़ों से अपना रस चूसती हैं। इसकी गठाने आंबी हलदी की गठानों के समान होती हैं। गठानों का घेराव ४ से लेकर ८ इँच तक होता है। इन गठानों में से इसके पौधे की शाखायें फूलती हैं जो छोटी बड़ी कई रूप में निकलती हैं। जब ये डालियां बढ़ कर जमीन के ऊपर आती हैं तब इन पर फूल आते हैं। इसकी गठाने और इसकी शाखाएँ शुरु में भूरे रंग की, उसके पश्चात् बैंगनी रग की और अन्त मे काले रंग की हो जाती हैं। ये भीतर से मुलायम रहती हैं और इनको तोड़ने से इनके भीतर से चिकना २ रस निकलता है। जिसमें आयोडिन के समान उग्र गंध आती है। इसको जबान पर रखने से इसका स्वाद खारा मालूम होता है और इससे कुछ समय के लिये जबान की चेतना शक्ति नष्ट होजाती है। इसके फूल पीले रंग के और बहुत सुन्दर बगीचों की शोभा बढ़ाने के लायक होते हैं। ये दो इंच

लबे, एक तरफ से टेढे, नीचे से नलियाकार और ५ पखड़ियों वाले होते हैं। यह वनस्पति कच्छ और भुज में बहुत पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी गठान को पानी में घिस कर बिच्छू के डक पर लगाने से बिच्छू का विष तुरंत उतर जाता है। बहुत से योगी इसकी गठानों को अपनी झोली में रखते हैं और इन गठानों से सांप और बिच्छू का इलाज करते है।

इसकी ताजा गठानों को घिस कर लगाने से बड़े और नहीं भरने वाले दुष्टव्रण भरजाते हैं।

उत्तरी अमेरिका में इस की जड़ को 'कैन्सर रूट" कहते हैं और यह विश्वास किया जाता है कि कैंन्सर नामक महादुष्टव्रण पर इस वनस्पति की जड़ का लेप करने से बड़ा लाभ होता है। 'वहाँ पर मार्टिन्स कैंसर पाउडर नामक एक औषधि तैयार की जाती है जिसमें यह वनस्पति भी काफी तादाद में पड़ती हैं।

प्रोफेसर डाक्टर बेंटली अपने मेन्युअल ऑफ बोटानी नामक ग्रंथ में लिखते हैं कि —

"The Presence of an astringent principle in the most marked property of the Plants of this order, but they are altogather unimportant in a medicinal point of view. The root of Epiphegus Virginiana is called cancer Root, from its having been formarly used as an application to caneers. It formed an ingredient in a once celebrated North American nostrum, called Martin's cancer Powder" (Manual Botany Page 596)

इसके अन्दर जो एक सङ्कोचक तत्व पाया जाता है वह इस श्रेणी के पोधों में पाया जाने वाला एक विशेष तत्व हैं लेकिन चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से उसका विशेष महत्व नहीं है। इस वनस्पति की जड़ें अमेरिका में "केन्सर रूट" के नाम से इसलिये इतनी मशहूर है कि पहले यह केन्सर के ऊपर लेप करने के काम में लिया जाता था। उत्तरी अमेरिका में प्रसिद्ध मार्टिन्स केन्सर पाउडर में यह वनस्पति प्रधान द्रव्य की तरह डाली जाती थी।

इस वनस्पति की गठानें सर्पदंश के ऊपर पानी में पीस कर लगाई जाती है और १ तोला गठान को पानी में पीस कर पिलाई जाती हैं जिससे उल्टी होकर सांप का विष हलका पड़ जाता है।

—.०—

पीलू

नाम—

संस्कृत—धानी, गुड़फल, लघु पीलू, पीलू शाखी, शीतसह, श्यामा, स्रसी,

विरेचनफल । हिन्दी—पीलू, बड़ा पीलू, झाल । पञ्जाब—जाल, दियार, कबर, पिल, रूल, टाक, वान, वानी, वेन । बम्बई—काखन, किंकन । मराठी—गोडपीलू, खाखनपीलू । गुजराती—खाखन, मितिजाल, पिलावा, पीलू बखाड़िया । तामील—कालवा । लेटिन—Salvadora oleoides (सेलवेडोरा ओलेआइड्स)

वर्णन—

पीलू की दो जातियां होती हैं । एक जाति का वर्णन "खरजाल" के नाम से हम इस ग्रंथ के तीसरे भाग में पृष्ठ ६५१ पर कर चुके है । दूसरी जाति का वर्णन यहां पर किया जा रहा है ।

इसका वृक्ष ७।८ फीट के करीब ऊँचा होता है । इसकी छाल खुरदरी होती हैं । पत्ते हृदयाकृति के, नोंकदार और आमने सामने लगे हुए होते हैं । फूल छोटे और फल पकने पर पीले होते हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मत से इसका फल तीक्ष्ण, चरपरा, खट्टा और मीठा तथा उत्तेजक, स्वादिष्ट, मृदुविरेचक, शान्तिदायक, और विष नाशक होता है । यह रक्तपित्त कारक, गरम दाह जनक, स्निग्ध तथा बवासीर, गुल्म, कफ, वातरक्त, प्लीहा और पेट के रोगों को दूर करता है ।

डाक्टर देसाई के मतानुसार इसके पत्ते उष्ण वीर्य, वायुनाशक, मूत्रल, दूध बढाने वाले और पसीना लाने वाले होते हैं । इसके पत्ते और निर्गुण्डी के पत्तों को समान भाग लेकर कुचल कर गरम करके सेक करने से वायु से होने वाला दर्द दूर हो जाता है । इसकी छाल के अन्दर उत्तेजक धर्म बहुत महत्वपूर्ण होता है ज्वर में होने वाली थकावट को दूर करने के लिये इस छाल का क्वाथ उत्तेजक द्रव्य की तरह पिलाया जाता है । मासिक धर्म की शुद्धि के लिये भी यह क्वाथ देते हैं । इसका फल उष्णवीर्य, हलका, दीपन, वायुनाशक और मूत्रल होता है । इसके सूखे हुए फल काली दाख के समान दिखलाई देते हैं । इनमें शक्कर का अंश बहुत होता है । यह फल संधिवात में और तिल्ली की वृद्धि को दूर करने के लिये दिये जाते हैं । इसके फलों के बीज मृदु विरेचक और विषनाशक होते हैं । सिंध देश में सर्प विष पर इसके बीजों को देते हैं । इसके बीजों में से एक प्रकार का तीक्ष्ण गन्ध वाला तेल निकाला जाता है जिसको किंकयोल कहते हैं । यह पसीना लाने वाला, उत्तेजक और चेतनावर्धक होता है । ज्वर के अन्दर पसीना लाने के लिये और चेतना जाग्रत करने के लिये इसकी मालिश की जाती है । पुराने संधिवात में भी इसकी मालिश से लाभ होता है ।

इसका फल मीठा और स्वादिष्ट होता है । पञ्जाब के लोग इस फल को कामोद्दीपक मानते हैं । इसका फल खाने से मुँह में होने वाले छोटे २ छाले मिट जाते हैं । इसलिये वहां के लोग इसका बहुत उपयोग करते हैं ।

इसके बीजों में से निकाले हुए तेल में उत्तेजक धर्म बहुत रहता है । इस लिये प्रसूति के बाद होने वाली संधियों की पीड़ा में इसका मालिश किया जाता है ।

यूनानी मतः—यूनानी मत से पीलू दूसरे दरजे में गरम और पहले दर्जे में खुश्क होता है। कुछ हकीमों के मत से यह दूसरे दरजे में सर्द होता है। यह सूजन को बिखेरता है। कफ को शुद्ध करता है। काम शक्ति को बढ़ाता है। दस्तों को बन्द करता है। बवासीर की खुजली और कुष्ठ में मुफीद है। इसकी छाल पित्त और सूजन को दस्तों की राह बाहर निकालती है। जलोदर में भी यह मुफीद है। इसकी लकड़ी का दतून करने से दान्त और मसूड़े मजबूत होते हैं। मुँह की बदबू दूर होती है और वह तरल पदार्थ जो मसूड़ों को ढीला करता है निकल जाता है।

इसके पत्ते भी सूजन को बिखेरने वाले हैं। इसके पत्तों को जैतून के तेल में पकाकर मालिश करने से हर प्रकार का दर्द मिटता है। गर्भाशय की सूजन, बवासीर और सिर की गंज में भी यह तेल मुफीद है। इसके फलों का काढ़ा पीने से पेशाब साफ होता है और मूत्राशय के दोष दूर होते हैं। इसके बीज आमाशय को ताकत देते हैं और दस्तों को रोकते हैं। इसके पत्तों को पीस कर आग से जले हुए स्थान पर लेप करने से शांति मिलती है। इसके पत्तों को जखम के ऊपर लगाने से पीप निकलना बन्द हो जाता है और जखम जल्दी भर जाते हैं।

मुजिर—इसके अधिक सेवन से पेचिश पैदा होती है।

दर्पनाशक—कतीरा और इसबगोल।

प्रतिनिधि—सन्दल।

मात्रा—फल की मात्रा ४॥ माशे से १० माशे तक।

उपयोगः—

सर्पविष—सर्प का विष उतारने के लिये इसकी गीली लकड़ी को घिसकर सुहागा मिलाकर पिलाना चाहिये।

मन्द ज्वर—इसकी छाल का क्वाथ पिलाने से मन्द ज्वर दूर होता है।

गठिया—इसके बीजों के तेल की मालिश करने से गठिया में लाभ होता है।

बवासीर—इसके तेल में बत्ती भिगोकर गुदा में रखने से बवासीर जाती रहती है।

पीली करवीर

नाम—

पंजाब—पीली करवीर, कनेरफाड़। तामील—कट्टेलेरी, पलाह। मलयालम—उतलाम। इंगलिश—Eve's Appie (एडम्स अपील) लेटिन—Ervatamia Dichotomia (इरवेटेमिया डायकोटामा)-Tabernaemontana Dichotoma (टेबरनेमोंटेना डायकोटोम)।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसकी छाल भूरे रंग की और मुलायम होती है। इसके

पत्ते मुलायम और चिकने होते हैं। यह वनस्पति सीलोन में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते और छाल विरेचक होती है। जावा में यह औषधि सनाय के बदले में काम में ली जाती है। इसका दूधिया रस भी विरेचक माना जाता है।

इसके बीज विरेचक होते हैं। यह नशा लाने वाले, विषैले, बेहोशी को पैदा करने वाले और धतूरे के समान लक्षण पैदा करने वाले होते हैं।

चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट के मतानुसार इस वनस्पति का हर एक हिस्सा सर्प विष को दूर करने वाली औषधियों में मिलाने के काम में आता है। चरक और सुश्रुत के मतानुसार इसकी जड़ व छाल दूसरी औषधियों के साथ बिच्छू के विष को दूर करने के लिये दी जाती है।

राबर्टस के मतानुसार इसकी जड़, छाल, और पत्ते पानी के साथ पीसकर जखम पर लगाने के काम में लिये जाते हैं।

—:o:—

पीली भोंयशण

नाम—

हिन्दी—मिटागु, मेराहु। गुजराती—पीली भोंयशण। कच्छी—पीली पटसन। मराठी—नेगली। नागपुरी—दानामिङ्ग, गुरगुर। संथाल—गायघुर। इगलिश—Common Indian Milk Wort। लेटिन—Polygala chinensis (पोलीगेला चाइनेन्सिस)।

वर्णन—

यह एक वर्ष जीवी क्षुद्र वनस्पति होती है। इसका पौधा आधे से लेकर १० फुट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते गोलाई लिये हुए सकड़े और लम्बे, फूल पीले और फल गोलाई लिये हुए चपटे होते हैं। यह वनस्पति कच्छ और गुजरात में बहुत पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों का लेप नारू की सूजन के ऊपर किया जाता है। इसकी जड़ को इमली के साथ पीस कर जहरी जानवरों के डंक पर लगाई जाती है। इसके पौधे को उबाल कर उसकी भाफ ज्वर के रोगी को दी जाती है।

छोटे नागपुर में इसकी जड़ ज्वर और भ्रम उन्माद के रोगियों को दी जाती है।

—:o:—

पीपल

नाम:—

संस्कृत—अश्वत्थ, बोधिद्रुम, चैत्यद्रु, चैत्यवृक्ष, चलदल, चलपत्र, देवात्म, धनुर्वृक्ष, गजभक्षक, गजपत्र, गजाशन, गुह्यपुष्प, गुरु, कपीतन, कृष्णावास, क्षीरद्रुम, महाद्रुम, मांगल्य, नागबन्धु, पवित्रका, पिप्पल, सेव्य, वृक्षराज, शुचिद्रुम, इत्यादि। हिन्दी—पीपल, पीपली। गुजराती—पीपलो, पीपुन, जरी। बंगाल—अश्वथ, फलुद, अशवट। बंबई—पीपल, अरली बुसरी। पंजाब—भेर, पीपल। तामील—अश्वत्तम अटासु, अरशमरम, अस्वत्तम, माबडुरुमम, नारायणम्, कुंजराशनम् इत्यादि। तेलगू—अश्वत्थमु, बोधि, रावीचेट्टु, इत्यादि। इंगलिश—Pipal Tree। फारसी—दरखत लरजो। लेटिन—Ficus Religiosa (फायकस रेलीगोसा)।

वर्णन—

पीपल के वृक्ष हिन्दू धर्मशास्त्रों के अन्दर बहुत पूज्य माने गये हैं। इस वृक्ष के अन्दर प्राण वायु को शुद्ध करने का दिव्य गुण रहता है और इसीलिये क्षय, दम, कुष्ट, प्लेग भगदर इत्यादि अनेक रोगों पर यह लाभदायक सिद्ध होती है। इसी कारण इस वृक्ष को हिन्दू धर्मशास्त्रों में पूज्य माना है। इसके बड़े बडे वृक्ष भारतवर्ष मे सब दूर पैदा होते हैं और सब लोग इसको जानते है इसलिये इसके विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—पीपल, मधुर, शीतल, कसेला, दुर्जर, भारी, रूखा, कांति को उज्वल करने वाला, कड़वा, योनिशोधक और रुधिर दोष, दाह, पित्त, कफ और व्रण को दूर करने वाला है। इसके पके हुए फल शीतल हृदय को हितकारी तथा रक्त रोग, पित्त, विष, दाह, वमन, शोष व अरुचि को दूर करने वाले हैं।

पीपल की छाल स्तम्भक, रक्त सग्राहक और पौष्टिक होती हैं। इसके पत्ते आनुलोमिक तथा फल पाचक, आनुलोमिक, सकोच विकास प्रतिबन्धक और रक्त को शुद्ध करने वाले होते हैं।

इसकी छाल सकोचक होती है और सुजाक के अन्दर उपयोग में ली जाती है। इसकी छाल के अन्दर फोडें को पकाने वाले तत्व भी रहते हैं। इसके फल मृदु विरेचक और पाचन शक्ति को मदद करने वाले रहते हैं। इसके पत्ते और अकुर विरेचक वस्तु की तरह काम में लिये जाते हैं और इसकी छाल का शीतनिर्यास गीली खुजली को दूर करने के लिये पिलाया जाता है। इसकी छाल के चूर्ण का मरहम एक शोषक वस्तु की तरह सूजन पर लगाया जाता है। इसके सूखे फलों का चूर्ण पानी के साथ पन्द्रह दिन तक लेने से दमें की बीमारी में बड़ा लाभ होता है। इस प्रयोग से स्त्रियों का वन्ध्यत्व नष्ट होकर वह सतानोत्पत्ति के योग्य होजाती हैं। इसकी ताजा जलाई हुई छाल की राख को पानी में घोल कर उसके नितरे हु पानी को ४ औंस की मात्रा में पिलाने से भयकर हिचकी भी दूर होती है। इसकी

सूखी छाल का चूर्ण भगंदर के अन्दर भी उपयोगी माना जाता है।

सीलोन में इसकी छाल का रस दांत और मसोड़ों के दर्द में कुल्ले करने के काम में लिया जाता है।

यूनानी मत – यूनानी मत से इसके पत्ते और छाल दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क होते हैं। इसकी छाल काबिज होती हैं। इसकी ताजी छाल को पानी में भिगोकर पीने से कमर में ताकत आती है। कामेंद्रिय में जोश पैदा होता है, धातु गाढ़ी होती है और काफी स्तम्भन होता है। इसका अर्क खून को साफ करता है। इसकी छाल के काढ़े से कुल्ले करने से मसूढ़ों की सूजन मिटती है। इसकी छाल को जलाकर उसकी राख में समान भाग कलमीशोरा मिलाकर उस चूर्ण को एक छिले हुए केले पर छिड़क कर रोज खाने से तिल्ली की सूजन मिट जाती है। इसकी छाल का काढ़ा पीने से पेशाब की जलन, पुराना सूजाक और हड्डी की जलन मिट जाती है। इसकी छाल या पत्तों को गरम करके सूजन पर बांधने से सूजन बिखर जाती है। पीपल के २१ पत्तों को पीसकर उसके बराबर गुड़ मिलाकर उनकी ७ गोलियां बनाकर, जिसको चोट लगी हो उसको ७ दिन तक खिलाने से चोट का दर्द मिट जाता है। इसकी ७ छोटी २ और नरम डालियों को औटाकर पिलाने से पागलपन में लाभ होता है। इसके पत्तों की जड़ में से जो दूध निकलता है उसको आंख में आंजने से आंख का दर्द मिट जाता है।

हिस्टीरिया और पीपल

पीपल के वृक्ष के पिंड में जो पतले २ तन्तु फूटते हैं वह तंतु २ तोला, जटामांसी १ तोला, जावित्री १ तोला, और कस्तूरी ॥ माशा। इन सब चीजों को लेकर पहले पीपल के तंतुओं के छोटे २ टुकड़े करके उनको कूटकर, फिर उनमें जटामांसी और जावित्री का चूर्ण डालकर खरल करना चाहिये। फिर कस्तूरी मिलाकर अच्छी तरह घोटकर एक २ रत्ती की गोलियां बना लेना चाहिये। इन गोलियों में से २ से ४ तक गोलियां ठण्डे पानी के साथ सवेरे, शाम और दुपहर में रोगी को खिलाकर आध घन्टे बाद थोड़ा दूध पिलाना चाहिये। इस प्रयोग को कुछ समय तक जारी रखने से हिस्टीरिया के हठीले रोग में बहुत लाभ होता है।

पीपल और दमे का रोग – पीपल की अन्तर छाल को सुखाकर उसका चूर्ण कर लेना चाहिये। शरद पूर्णिमा की रात के दिन चान्दनी में गाय के दूध में चांवल डालकर उसकी खीर बनाना चाहिये। इस खीर को १० तोला लेकर उसमें ६ माशा पीपल का चूर्ण मिलाकर उस खीर को चन्द्रमा के प्रकाश में २ घन्टे तक पड़ी रखना चाहिये और फिर दमे के रोगी को खिला देना चाहिये और सारी रात रोगी को जागरण कराना चाहिये। नींद नहीं लेने देना चाहिये। ऐसा कहा जाता है कि इस प्रयोग से एक ही रात में दमे का रोग नष्ट हो जाता है। कुछ महात्मा आजकल इस प्रयोग को शरद पूर्णिमा अथवा दूसरी किसी भी निर्मल पूर्णिमा के दिन सैकड़ों रोगियों पर प्रयोग करते हैं और उनमें कई रोगियों को लाभ भी होता है।

व्रण और पीपल—सड़े हुए तथा न भरने वाले व्रण या घाव पीपल की अन्तर छाल को गुलाब जल में घिसकर लगाने से शुद्ध होकर जल्दी भर जाते हैं। भगदर और कंठमाला में भी कई बार इसकी छाल के चूर्ण को भरने से अथवा उसको गुलाबजल में मिलाकर लगाने से लाभ होता हुआ देखा गया है। इसकी छाल के सहयोग से एक मलहम भी तैयार किया जाता है वह इस प्रकार है:—

२ तोला राल और चार तोला तेल लेकर कढ़ाही में डालकर हलकी आंच से औटाना चाहिये। जब दोनों चीजें एक रस होजाय तब उसमें पीपल की छाल को जलाकर की हुई राख १ तोला डालकर मलहम बना लेना चाहिये। इस मलहम की पट्टी फोड़े पर बाँधने से एक ही पट्टी में फोड़ा पककर फूट जाता है और उसी पट्टी से वह भर जाता है और पट्टी फिर अपने आप खुल जाती है।

(जगलनी जड़ी बूटी)

पीपल की कोमल कोंपलें खाने से दाद, खाज, खुजली और त्वचा पर फैलने वाले चर्म रोग नष्ट हो जाते हैं। इसकी छाल में भी इसी प्रकार का चमत्कारिक रक्त शोधक गुण पाया जाता है। इसका काढ़ा बनाकर पीने से खाज, खुजली, दाद और अन्य चर्म रोग तो मिटते ही हैं मगर एक्झिमा और वातरक्त के समान भयंकर रोगों में भी यह लाभ पहुँचाती है।

सर्प विष और पीपल—सर्पदंश के ऊपर भी यह वस्तु बहुत लाभ बतलाती है। मगर इस सम्बन्ध में इससे की जाने वाली चिकित्सा ऐसे विचित्र ढग की है कि जिस पर सहसा आज-कल के वैज्ञानिकों को विश्वास न होगा, वह इस प्रकार है।

पीपल के छोटे पौधे की २ पतली पतली डालियां जो कनिष्ठिका उँगली के बराबर मोटी और बारह २ उंगुल लम्बी हों और जिनके सिरे पर अंकुर भी फूट रहा हो ऐसी डालियों के पत्ते वगैरह तोड़कर सिरे के अकुर के पास की छाल एक तरफ़ से आधा इञ्च के करीब नाखून से छील लेना चाहिये। फिर वह अकुर वाला भाग सर्प दंशित मनुष्य के दोनों कानों के छिद्रों में भीतर डाल देना चाहिये। और उन लकड़ियों का दूसरा सिरा बाहर से मजबूती से पकड़ लेना चाहिये। क्योंकि विष का प्रभाव उन लकड़ियो को अपनी ओर खींचता है। अगर बाहर से मजबूती से लकड़ी नहीं पकड़ी गई तो वह कान का पर्दा फोड़कर भीतर चली जाती है। इसलिये उन लकड़ियों को भीतर नहीं जाने देने के लिये बाहर से मजबूती से पकड़े रहना जरूरी है।

इस चिकित्सा के समय २ बलवान मनुष्यों को रोगी के हाथ पैर पकड रखना चाहिये, क्योंकि जब विष का आकर्षण होने लगता है तब रोगी पागल मनुष्यों की तरह चेष्टाएं करने लगता है। इसलिये उसको सम्हाल कर रखने की जरूरत होती है।

ऐसा कहा जाता है कि इस प्रयोग से सर्प विष से मूर्छित होकर मरणावस्था पर पहुचा हुआ व्यक्ति भी आधे से लेकर १ घंटे के भीतर चैतन्य प्राप्त कर लेता है। इसके पश्चात् उसकी थकावट

को दूर करने के लिये मिश्री मिला हुआ गाय का दूध तथा घी और काली मिरच पिलाना चाहिये और २४ घण्टे तक उसको बिलकुल नींद नहीं लेने देना चाहिये।

इन्दौर रियासत के एक तहसीलदार ने इस प्रयोग के द्वारा सर्पदंश के कई रोगियों को अच्छा किया।

डाक्टर बी एच गुप्ता एम. बी बी एस लिखते हैं कि एक बंगाली बाबू किसी जड़ी के द्वारा कई सर्पदंशित मनुष्यों का इलाज करते थे। एक बार एक मण्डलीक सर्प का काटा हुआ मनुष्य उनके पास लाया गया और उस पर उनकी जड़ी कामयाब न हुई तब वह रोगी मेरे पास लाया गया। जब मैंने रोगी को देखा तब वह मूर्छित था। उसका शरीर शीतल और नेत्रों का रङ्ग विकृत हो गया था। नाड़ी बन्द थी और हृदय की धड़कन भी साफ नहीं मालूम पड़ती थी। ऐसी विकट स्थिति में मैंने पीपल की डालियों के टुकड़े एक आदमी को दिये और वह रोगी के कानों में उनको लगाकर उसके पास बैठ गया थोड़ी देर के पश्चात् रोगी की आँखें खुलने लगीं और आधे घण्टे में उसके दांतों की बत्तीसी खुल गई। लेकिन इसी समय वह जड़ी कान में से छूट गई जो फिर कान की चमड़ी पर नहीं चिपकी। तब पीपल की कोमल कोंपलों को पीसकर उनका रस एक २ चम्मच की मात्रा में बार २ उसको दिया जाने लगा। पहले रोगी के गले में दवा नहीं उतरती थी जिससे थोड़ा सा चूना और नौसादर पीसकर अरण्डी की पोली लकड़ी में भरकर उसके नाक में लगाकर जोर से फूक मारी गई तब उसका गला खुल गया और वह रस उसके गले में उतरने लगा। थोड़ी देर के पश्चात् रोगी के मुंह में से काले रङ्ग की लार टपकने लगी और लगभग सौ सवा सौ चम्मच रस पीने के बाद वह पूरी तरह से होश में आया। तब उसको मैदान में खूब टहलाया गया और उसकी थकावट को दूर करने के लिये गरम दूध, घी और शक्कर मिलाकर पिलाया गया इस प्रकार परिचर्या करने पर रोगी चार घण्टे में तन्दुरुस्त होकर घर चला गया।

उपयोग—

मूत्रकृच्छ्र—पीपल की छाल का क्वाथ या फाँट बनाकर पिलाने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

खुजली—इसकी छाल का क्वाथ या फाँट बना कर पिलाने से खुजली मिटती है।

विसर्प रोग— इसकी जड़ की छाल के क्वाथ से विसर्प रोग मिटता है।

दमा— पीपल के सूखे फलों को पीस कर १४ दिन तक जल के साथ फकी देने से दमा में लाभ होता है।

पित्त की सूजन— इसकी छाल को पानी में पीस कर उसका ठंडा लेप करने से पित्त की सूजन बिखर जाती है।

हिचकी—इसकी छाल को जलाकर उसकी राख को पानी में घोल कर उसके नितरे हुए पानी को पिलाने से हिचकी बन्द होती है।

बिगडे हुए व्रण—इसकी नरम कोपलों को जला कर उनकी राख को कपड़ छान करके बिगडे फोड़ों पर भुरभुराने से वे भरने लगते हैं।

पैरों की बिवाई—पीपल का रस या दूध लगाने से पैरों की बिवाई मिटती है।

भगंदर—इसकी सूखी हुई अन्तर छाल का चूर्ण किसी नली के द्वारा गुदा के नासूर में फूंक देने से कुछ दिनों में वह नासूर भर जाता है।

बन्ध्यापन—इस के सूखे फलों के चूर्ण की फक्की कच्चे दूध के साथ ऋतु धर्म से शुद्ध होने के पश्चात् १४ दिन तक देने से स्त्री का बन्ध्यापन मिटता है।

चर्मरोग—पीपल की अन्तर छाल का क्वाथ पिलाने से सब प्रकार के चर्म रोग मिटते हैं। इसके बीजों को शहद के साथ चटाने से रुधिर शुद्ध होता है।

दंत रोग—पीपल की और बड़ की छाल को पानी में औटा कर कुल्ले कराने से दाँतों की पीड़ा मिटती है।

उदर शूल—पेट की पीड़ा मिटाने के लिये पीपल के १॥ पत्तों को पीसकर गुड़ मे गोली बनाकर खिलाने से उदर शूल मिटता है।

बदगाँठ—पीपल के पत्तों को गरम करके सीधी ओर से बांधने से बदगाठ बैठ जाती है।

वमन—इसकी छाल को जला कर उसको पानी में बुझाकर उस पानी को नितार कर पिलाने से वमन मिटती है।

प्रमेह—इसकी छाल का काढ़ा पिलाने से पित्तज और नील प्रमेह मिटता है।

नारू—इसके पत्तों को तपाकर बांधने से नारू गल जाता है।

वाजिकरण—पीपल की कोमल कोंपलें ४० तोला लेकर ४ सेर पानी में औटाना चाहिये। जब १ सेर पानी रह जाय तब उसको छान कर उसमें २ सेर शक्कर डालकर चासनी बना लेना चाहिये। चाशनी बनने पर छानने से बची हुई कोंपलें उसी चाशनी में डालकर उसका मुरब्बा बना लेना चाहिये यह मुरब्बा सबेरे शाम आधी छटांक की मात्रा में खाते रहने से मनुष्य का वीर्य और कामशक्ति बहुत बढ़ती है।

बनावटें—

हरताल भस्म—उत्तम जाति की तबकिया हरताल लेकर उसके टुकडे २ करके उसको पोटली में बांधकर दोला यन्त्र में एक २ दिन कांजी और लोंग तथा त्रिफले के काढ़े में शुद्ध कर लेना चाहिये। फिर उसे चांवल के पानी से धो डालना चाहिये। इसके बाद उस हरताल को पीसकर, पीपल की अन्तर छाल के काढ़े में २० दिन तक खरल करना चाहिये। फिर उसको टिकड़ियें बांधकर धूप में सुखा लेना चाहिये। तत्पश्चात् एक मिट्टी की हांडी पर ६, ७ कपड़मिट्टी करके उस हांडी में पीपल की लकड़ी की पकी हुई राख दबा २ कर आधे भाग तक भर देना चाहिये। उसके पश्चात् उस

पर हरताल की टिकड़ियें रख कर उस सारी हांडी को गले तक पीपल की लकड़ी की राख से दबा २ कर भर देना चाहिये। फिर उस हांडी पर सरावला ढँक कर उसकी संधियों को खरल किये हुए गुड़ और चूने से अच्छी तरह बन्द कर देना चाहिये। फिर उस हांडी को गज पुट में रखकर जंगली कण्डों की आंच में फूंक देना चाहिये। ठण्डी होने पर उसको निकाल कर आहिस्ते से उसके भीतर की हरताल भस्म की टिकड़ियों को निकाल लेना चाहिये। इन टिकड़ियों को तपाये हुए लाल सुर्ख लोहे के टुकड़े पर रख देना चाहिये। अगर इनमें से धुआं न निकले तो समझना चाहिये कि हरताल की भस्म तैयार हो गई। अगर यह धुँआ देने लगे तो फिर एक बार उसको इसी प्रकार फूंकना चाहिये।

इस हरताल भस्म को १ रत्ती से २ रत्ती तक की मात्रा में उचित अनुपात के साथ लेने से सब के प्रकार चर्म रोग उपदंश, वातरक्त, कुष्ट और नासूर में फायदा होता है।

—— · ——

पीपर (पीपलामूल)

नामः—

संस्कृत—पिप्पली, मागधी, कृष्णा, चपला, चञ्चला, कणा, मगधा, कटुबीजा, दंतफला, श्यामा इत्यादि। हिन्दी—पीपर, लींडी पीपर, छोटी पीपर, पीपलामूल। बंगाल—पीपली, पिपुल, पीपलामूल। बम्बई—पीपलामूल, पीपल। गुजराती—पीपर, पीपली, पीपलामूल। पंजाब—दरफिलफिल, फिलफिल-दराज, पीपल, पीपलामल, मग्जपीपल। संथाल—राली। तामील—अरगदी, अट्टी, कानिदी, किडोगम, तिप्पली, सजलाई, इत्यादि। तेलगू—पिप्पालु, पीपली, नोदी। उर्दू—पीपल। फारसी—फिलफिल दराज। अरबी—दारफिलफिल। अंग्रेजी—Long Pepper। लेटिन—Piper Longum (पायपर लोंगम्)।

वर्णन—

पीपर की बेल होती है। इसके पत्ते नागरबेल के पत्तों के समान मगर उनसे कुछ छोटे होते हैं। इसकी बेल में बहुत डालियां होती हैं। इसका फल काला और १ इञ्च से कुछ कम लम्बा होता है। इसकी जड़ को पीपलामूल बोलते हैं। यह पीपल ३ प्रकार की होती है। पहली लींडी पीपल या छोटी पीपल, दूसरी सुगन्ध पीपर और तीसरी बड़ी पीपर। इनमें से लींडी पीपल या छोटी पीपल ही अधिक गुणकारी होती है और यही आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध योग त्रिकुटा (सोंठ, मिरच और पीपर) का एक अंग है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—भाव प्रकाश के मतानुसार पीपर, अग्नि को दीपन करने वाली, वीर्यवर्धक स्वादुपाकी, रसायन, किंचित उष्ण, चरपरी, स्निग्ध, वात और कफ को नष्ट करने वाली, हलकी,

मृदु विरेचक, तथा श्वास, खांसी, उदर रोग, ज्वर, कुष्ट, प्रमेह, गुल्म, क्षय, बवासीर, प्लीहा, शूल और आमवात को नष्ट करने वाली होती है।

कच्ची पीपल कफ को उत्पन्न करने वाली, स्निग्ध, शीतल, मधुर, भारी, पित्त को शान्त करने वाली होती है। सूखी पीपल पित्त को कुपित करने वाली होती है।

शहद के साथ पीपल लेने से मेद रोग, कफ, श्वास, खांसी और ज्वर नष्ट होते हैं तथा वीर्य, बुद्धि और जठराग्नि बढ़ती है। गुड़ के साथ पीपल लेने से जीर्ण ज्वर, हृदय रोग, मदाग्नि, खांसी, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, पांडु और कृमि रोग नष्ट होते हैं।

पीपर के चूर्ण को सोंठ के चूर्ण और गुड़ के साथ मिला कर खाने से, आम, शूल, अजीर्ण और सूजन दूर होती है। पीपल को नीम के रस में उबाल कर नाक में टपकाने से अपस्मार रोग में लाभ होता है। पीपल के काढ़े में शहद मिला कर पीने से वातज्वर और कफ ज्वर दूर होता है। शहद में पीपल का चूर्ण मिलाकर चाटने से मूर्च्छा रोग दूर होता है।

पीपलामूल—जठराग्नि को दीपन करने वाला, कडवा, चरपरा, गरम, पाचक, हलका, रूखा, पित्तकारक, भेदक, कफ और वात को नष्ट करने वाला, क्षय रोग नाशक तथा प्लीहा, गुल्म, कृमि और श्वास को नष्ट करने वाला होता है।

डाक्टर देसाई के मतानुसार पीपर गरम, वातनाशक, श्वास को दूर करने वाली, दीपन, पार्यायिक ज्वरों को रोकने वाली और गर्भाशय को सकुंचित करने वाली होती है। जिस प्रकार काली मिरच की क्रिया पाचन इन्द्रिय पर विशेष रूप से होती है उसी प्रकार पीपर की क्रिया फेफड़े और गर्भाशय पर होती है। इसके सेवन से कफ प्रधान और शीत प्रधान रोगों में बड़ा लाभ होता है।

प्रसूति होने में अगर अधिक समय लग रहा हो तो पीपलामूल को ईश्वरमूल की जड़ और हींग के साथ पान में रखकर देने से पीड़ा बढ़कर प्रसूति हो जाती है। प्रसूति होने के पश्चात भी आंवल गिराने के लिये तत्काल पीपलामूल की फांट देना चाहिये।

सूतिका ज्वर, मलेरिया ज्वर, आम वात और कफ ज्वर में पीपर को शहद के साथ दिया जाता है। इससे सूतिका ज्वर में गर्भाशय के अन्दर रहा हुआ सब मैला निकलकर साफ हो जाता है और स्त्री को उत्तेजन मिलता है। मलेरिया ज्वर में इसको देने से यकृत की वृद्धि कम होती है और कफ ज्वर में इसको देने से आवाज सुधरती है और कफ छूटने लगता है। पुरानी खांसी में पीपल को बड़ी मात्रा में देने से लाभ होता है।

मज्जातंतु के रोग अर्थात् वात रोगों में पीपर को खिलाते भी हैं और उसको शरीर पर मसलते भी हैं। प्रग्रहणी रोग में भी इसका उपयोग किया जाता है। अजीर्ण और बवासीर रोग में भी यह

उपयोगी है। सुजाक की वजह से होने वाली कार्मेंद्रिय की शिथिलता में इसको बड़ी मात्रा में देने से लाभ होता है।

ट्रावनकोर में पीपलामूल की फांट प्रसूति के पश्चात् दी जाती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसके सेवन से जरायु फूल बहुत आसानी से निकल जाता है और इसका फल प्रसूति के समय स्त्री को देने से उत्तेजना मिलती है।

कोमान के मतानुसार इसका सूखा हुआ कच्चा फल और इसकी जड़ काढे के रूप में व्यापक परिमाण में तीव्र और प्राचीन कफ युक्त ब्रोंकाइटीज के रोगियों पर उपयोग में लिया गया और उन सब केसों में इससे क्रमश: लाभ पहुंचा।

वर्धमान पिप्पली—

आयुर्वेद के अन्दर धातु परिवर्तन और रसायन के लिये छोटी पीपर को क्रमशः बढाते हुए देने का एक विशिष्ट तरीका है, जिसको वर्धमान पिप्पली कहते हैं। यह तरीका इस प्रकार है कि पहले दिन ३ छोटी पीपर को लेकर आध पाव दूध और आध पाव जल में डाल कर अग्नि पर चढा दें। जब पानी का अंश जल जाय तब उसको उतारकर ठण्डा होने पर रोगीको तीनों पीपलें खिलाकर ऊपर से वह दूध पिला दें। दूसरे दिन ६ पीपर और ३ छटांक जल मिला कर उसी प्रकार पीपर खिला कर दूध पिला दें। इस प्रकार तीन २ पीपर रोज बढ़ाते हुये दसवें दिन ३० पीपर तक उसे पहुँचा दें। फिर प्रति दिन ३ पीपर घटाते हुए बीसवें दिन वापस ३ पीपर पर उसे लाकर उसका प्रयोग बन्द करदे। आयुर्वेद के अन्दर यह प्रयोग बहुत उत्तम, धातु परिवर्तक और रसायन माना गया है। इसके सेवन से लकवा या अर्द्धांग, पुरानो खांसी, तिल्ली की बढ़ती और दूसरे उदर सम्बन्धी और आंतों सम्बन्धी रोगों मे बहुत लाभ पहुँचाता है।

कुछ ग्रथकारों के मतसे यह प्रयोग ३ पीपर से आरम्भ करके प्रति दिन एक पीपर बढ़ाते हुए १२ दिन तक बढाते जायें और फिर १ पीपर प्रतिदिन कम करते हुए ३ पीपर पर आकर छोड़दें।

यूनानीमत—यूनानी मत से यह दूसरे दरजे के आखिर में गरम और खुश्क है। मुह में खुशबू पैदा करती है, कफ की खांसी में मुफीद है, वमन को रोकती है, भूख बढ़ाती है, पाचक है, आंतों और आमाशय में गरमी पैदा करती है। आमाशय की वायु को बिखेर कर उसको ताकत देती है। यकृत और तिल्ली की गांठों को (सुद्दों) बिखेरती है। धातु वर्धक है, कामशक्ति को बढ़ाती है। इसको गर्भाशय में रखने से गर्भवती का गर्भ गिर पड़ता है। बिच्छू के विष में भी यह लाभ दायक है। अर्द्धांग, लकवा, मृगी और जोड़ों के दरद में भी यह लाभदायक है।

पीपल को पीसकर सलाई से आंख में आंजने से धुन्द, रतौंधी और आंख के जाले में लाभ होता है।

१ सेर पीपल को १० सेर गाय के दूध में पका कर दूध सूख जाने पर उसको निकाल लें और

उसको पीसकर रखलें। इसमें से १०॥ माशे चूर्ण ३॥ तोला मिश्री मिलाकर आध सेर दूध के साथ पीने से मनुष्य की काम शक्ति को बहुत बढ़ती है। (खजाइनुल अदविया)

पीपलामूल यूनानी मत से तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह पाचक, भूख पैदा करने वाला और आमाशय की गरमी को बढाने वाला होता है। तिल्ली की सूजन और सरदी की सूजन में यह लाभदायक है। मुनक्का के साथ इसका काढ़ा करके कुल्ले करने से गले के दोष निकल जाते हैं। इसको पीस कर तमालू की तरह सूंघने से मिरगी में लाभ होता है।

मुजिर—पीपर का अधिक सेवन सिर दर्द पैदा करता है और जिगर को नुकसान पहुंचाता है।

दर्पनाशक—जरेशक, बबूल का गोंद और इसबगोल।

प्रतिनिधि—सोंठ और कुलञ्जन। *मात्रा*—३ रत्ती से १० रत्ती तक।

उपयोगः—

मूर्च्छा—पीपल को पानी में घिस कर आंख में आंजने से मूर्च्छा मिटती है।

उरुस्तम्भ और गृध्रसी—पीपल और सोंठ के मेल से तेल सिद्ध कर इस तेल की मालिश करने से उरुस्तंब और गृध्रसी में लाभ होता है।

पुरुषार्थ वृद्धि—शहद के साथ पीपल का चूर्ण चाटने से पुरुषार्थ बढ़ता है, पाचन शक्ति प्रदीप्त होती है और मासिक धर्म का कष्ट मिटता है।

पक्षाघात—पक्षाघात, छोटे जोड़ों की सूजन और कमर की पीड़ा में भी पीपल और पीपलामूल का प्रयोग बहुत लाभ दायक होता है।

रतौंधी—आंख में पीपल का अञ्जन आंजने से रतौंधी में लाभ होता है।

विषैले जानवरों का काटना—पीपल को घिस कर विषैले जानवरों के डंक पर लगाने से लाभ होता है।

प्रतिश्याय—पीपल के क्वाथ में शहद मिला कर पिलाने से प्रतिश्याय और छाती में जमा हुआ कफ निकल जाता है।

पेट के *कृमि*—पीपर का चूर्ण खिलाने से पेट के कृमि निकल जाते हैं और उदर शूल में लाभ होता है।

प्रसूति का रक्त स्राव—बच्चा होने के पश्चात् रक्त स्राव को रोकने के लिये पीपर के चूर्ण को घी में मिलाकर चटाना चाहिये।

रक्तपित्त—पीपल के चूर्ण को शहद के साथ चाटने से रक्तपित्त मिटता है।

हिचकी—इसके चूर्ण को शक्कर मिलाकर फकी देने से हिचकी बन्द हो जाती है।

(२)—इसके और कटेरी के चूर्ण को शहद और आंवले के रस के साथ चटाने से हिचकी मिटती है।

उदर रोग--पीपर को थूहर के दूध की २१ भावना देकर उसमें से १ या २ पीपल खिलाने से उदर रोग मिटते हैं।

गुल्म—पीपल को पलाश के खार के जल की भावना देकर उसका सेवन करने से गुल्म, प्लीहा और मन्दाग्नि मिटती है।

दन्तशूल—पीपल के चूर्ण को घी और शहद में मिलाकर दांत पर लगाने से दन्त शूल मिटता है।

नेत्र रोग—१ भाग पीपल और २ भाग हरड़ को जल के साथ पीस कर बत्ती बना कर आंख में फेरने से तिमिर रोग और नेत्र स्राव बन्द होता है।

पुरानी खाँसी--पीपल को चिलम में भर कर तमाखू की तरह पीने से पुरानी खांसी मिटती है।

आधाशीशी- पीपल और बचके चूर्ण की फक्की देने से आधा शीशी मिटती है।

अम्लपित्त—पीपर की लुग्दी, गुड़ और दूध से सिद्ध किया हुआ घी पिलाने से अम्ल पित्त मिटता है।

सन्निपात—पीपर और अपामार्ग के चूर्ण को सुंघाने से कण्ठ कुब्ज सन्निपात मिटता है।

राजयक्ष्मा—पीपल की लुग्दी से सिद्ध किये हुऐ घी को सेवन करने से राज यक्ष्मा में लाभ होता है।

गृध्रसी—गौ मूत्र और अरण्डी के तेल में पीपल का चूरण डालकर पिलाने से कफ और वात से पैदा हुई गृध्रसी मिटती है।

प्रवाहिका—पीपल के २ माशे चूरण की फक्की देने से पुरानी प्रवाहिका आराम होती है।

खाँसी—मासिक धर्म के उपद्रव के कारण जिस स्त्री को खांसी हो उसको पीपलामूल का चूर्ण देने से लाभ होता है।

सूजन—पीपला मूल का लेप करने से सूजन बिखर जाती है।

गठिया—पीपलामूल को सेक कर उसका चूरण बनाकर शहद के साथ चटाने से गठिया मिटती है।

बच्चों का फुफ्फुस रोग—बच्चों के फुफ्फुस रोग में पीपलामूल का आधी रत्ती चूर्ण शहद के साथ चटाना चाहिये इससे कफ निकलने लगता है।

अनिद्रा—पीपलामूल के चूर्ण को गुड़ के साथ देने से बहुत दिनों से नष्ट हुई नींद फिर आने लगती है।

उर्ध्ववात—पीपलामूल को पीस कर दूध और अडूसे के रस में मिलाकर पीने से उर्ध्ववात मिटता है।

पुङ्गमथेङ्ग

नाम—

बरमा—पुङ्गमथेङ्ग, हुम्मासिन। लेटिन—Blumea Densiflora (ब्ल्यूमिया डेन्सिफ्लोरा)।

वर्णन—

यह वनस्पति हिमालय, सिकिम, आसाम और खासिया पहाड़ियों में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति में कपूर पाया जाता है। इसमें एक प्रकार का इसेंशियल आइल भी रहता है।

—:×:—

पुखराज

नाम—

संस्कृत—पुष्पराग, जीवरत्न, पीतस्फटिक, पुष्पराज मञ्जुमणि, वाचस्पतिवल्लभ, पीत, पीतरत्न, गुरुरत्न, इत्यादि। हिन्दी—पुखराज। बंगाल—पुष्पराग। मराठी—पुखराज। गुजराती—पुखराज, पीलू रत्न। अंग्रेजी—Topag। लेटिन—Topagio (टोपाजियो)।

वर्णन—

पुखराज भी ६ रत्नों में से १ रत्न है। इसका रंग सफेद और पीला होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से पुखराज विष, वमन कफ, वात, मदाग्नि, दाह, कुष्ट और बवासीर को दूर करता है। यह दीपन, हलका और पाचक है।

पुखराज अम्ल, शीतल, अग्निदीपक, वीर्य वर्धक, अवस्था स्थापक, प्रज्ञाजनक, बुद्धि वर्धक और वातनाशक होता है।

दीप्तिमान, भारी, पीला, शुद्ध, स्निग्ध, निर्मल और गोल पुखराज श्रेष्ठ होता है। काला, झाँईदार, मलिन, हलका, बेरंग और खरखरा पुखराज दोष युक्त होता है पुखराज का शोधन और मारण पन्ने के समान ही होता है।

पुन्डरीक

नाम—

संस्कृत—श्री पुष्प, प्रपौंडरीक, पुण्डरीक, पौंडर्य, तालपुष्पक, सालपुष्प, स्थल पद्म, सुपुष्प, सानुज, अनुज इत्यादि। हिन्दी—पुण्डेरी, पुण्डर्या। मराठी—पुण्डरीक वृक्ष। गुजराती—पंडेरवा। बंगाल—पुण्डर्या।

वर्णन-

यह एक सुगंधित वृक्ष होता है। इसके वृक्ष शिमला प्रान्त में कालका के पास बहुत पाये जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से पुण्डर्या मीठा, कड़वा, कसैला, वीर्य वर्द्धक, शीतल, नेत्रों को हितकारी, पचने में मीठा, शरीर के वर्ण को सुन्दर करने वाला तथा पित्त, कफ और रक्त दोष को निवारण करने वाला होता है।

—:o:—

पुत्र दन्ती×

नाम—

हिन्दी, यूनानी—पुत्र दन्ती।

वर्णन—

यह एक वनस्पति होती है। इसके पिंड नहीं होती, डालियां होती हैं। इसके पत्ते हथेली के बराबर होते हैं। उनका रंग कालापन लिये हुए होता है। इसके फूल नील के फूलों की तरह होते हैं और उनका रंग संदली होता है। इसके फल में एक से लगाकर तीन तर्क बीज होते हैं। हर एक बीजके आस पास सफेद, बारीक और नरम तार होते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि संस्कृत में जिसको लक्ष्मणा वनस्पति कहते हैं वह शायद यही है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह वनस्पति समशीतोष्ण होती है। अगर बांझ स्त्री मासिक धर्म के बाद ३ दिन तक इस वनस्पति को पहले दिन १ बीज, दूसरे दिन २ बीज और तीसरे दिन ३ बीज इस प्रकार खावे तो वह गर्भवती होजाती है। पित्त के बुखार में भी यह लाभ पहुँचाती है। इसके खाने से स्मरण शक्ति तेज होती है। गर्भावस्था में इसके सेवन से गर्भस्थ बालक को बहुत शक्ति मिलती है। अगर किसी स्त्री के बच्चे गर्भ में या पैदा होने के थोड़े दिनों बाद मरजाते हैं तो उसको इसका सेवन करने से बड़ा लाभ होता है। [ख० अ०]

—:×:—

पुन्नाग (सुल्तान चंपा)

नाम-

संस्कृत—पुन्नाग, पुरकेसर, सुरंगी तुंगकेशर, नमेरू। हिन्दी—सुलतानचम्पा, सुरपन, सुर-

---

×नोट—हमारे ख्याल से यह वनस्पति पियापोता या पुत्र जीवक ही होना चाहिये, जिसका कि वर्णन हमने इस ग्रंथ के चौथे भाग में किया है। मगर चूंकि खजायनुल अदविया के लेखक ने इसकी पहिचान बिलकुल दूसरी प्रकार की लिखी है इसलिये हमको इसका वर्णन यहां स्वतन्त्र रूप से देना पड़ा है।

पूनिका, पुन्डी। बंगाल—पुन्नाग, सुलतान चम्पक। बम्बई—ऊंदी, पुन्डी। बरमा—पेंगनयट, पोनियट। दक्षिण—सुरपंडा, सुरफन, पुडी। मराठी—पुनाग, सुरंगी, उंडल। सिंध—दुगर फूल, पुरैया, सुरंगी, उडी। तेलगू—नमेरू, पुन्नाग। तामील—नागम, नमेरू, पुन्नाई। लेटिन—Calophyllum Inophyllum (केलोफिलम इनोफिलम)।

वर्णन—

यह एक बहुत सुन्दर मध्यम आकार का वृक्ष होता है। इसके पत्ते १० से लेकर १८ सेंटिमीटर तक लबे और ७·५ से १० सेंटिमीटर तक चौड़े होते हैं। इसका तना बहुत टेढा मेढा होता है। इसकी छाल भूरी और चिकनी होती है। इसके फूल बिलकुल सफेद और बहुत सुगंधित होते हैं। इसके फल कुछ पीलापन लिये हुए, चिकने और छोटे होते हैं। यह वृक्ष दक्षिण में समुद्र के किनारे पर, बंगाल में और बरमा में पैदा होता है। इसके बीजों में से एक प्रकार का हरा तेल निकलता है जिसको हिन्दी में सरपन का तेल और मराठी में कडु तेल कहते हैं। इसकी छाल में से हीराबोल के समान एक प्रकार का गोंद निकलता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से इसकी छाल गरम और तीक्ष्ण स्वाद वाली होती है। यह व्रणों को भरती है और आंखों की सूजन को दूर करती है। कफ और वात को यह दूर करती है। भूख बढ़ाती है। संकोचक है और कांति को बढ़ाती है।

इसकी छाल संकोचक और भीतरी रक्त स्राव को रोकने वाली होती है। इसका रस एक तीव्र विरेचक वस्तु की तरह उपयोग में लिया जाता है। इसका फल वमनकारक और विरेचक होता है। इसकी शाखाओं की सन्धियों से निकले हुए गोंद को पानी में मिलाने पर उस पानी के ऊपर जो तेल के समान पदार्थ तिर आता है। उसको आंखों की पीड़ा पर लगाने के काम में लिया जाता है। यह कष्टप्रद विद्रधि के लिये भी एक उपयोगी दवा मानी जाती है। इसके पत्तों को पानी में मिलाकर आंखों की सूजन पर लगाया जाता है।

मेडागास्कर में इसके पत्ते आंखों के व्रणपर लगाने के काम में लिये जाते हैं। पुन्नाग के गोंद की राल घाव को अच्छा करने वाली, फोड़े को गलाने वाली (Resolvent) और शूल नाशक मानी जाती है। इसके बीजों का तेल खुजली और सोरा विष को नष्ट करने वाला माना जाता है। यह तेल सन्धिवात के उपचार में भी बहुत उपयोग में लिया जाता है। इसकी छाल का काढ़ा व्रणों को धोने के काम में आता है।

इसके बीजों की मगज से निकाला हुआ स्थिर तेल गीली खुजली को नष्ट करने वाला माना जाता है। यह तेल मूत्र नाली की श्लेष्मिक झिल्लियों पर बहुत कॉफी लाभ पहुँचाता है और इसी वजह से सुजाक, और पुरातन प्रमेह की चिकित्सा में यह बहुत सफलता के साथ उपयोगी प्रमाणित होता है।

इसकी मालिश संधिवात और गठिया के अन्दर बहुत उपयोगी मानी जाती है। इसके बीजों के मगज को पानीके साथ पीसकर उसका लेप बनाकर जोड़ों के दर्द पर लगाकर उसको ऊपर से सेक लिया जाता है। इस प्रयोग से उपरोक्त बीमारियों में बहुत लाभ पहुँचता है तेल के न मिलने की हालत में यह उसकी कमी को पूरी कर देता है।

जावा में यह वनस्पति मूत्रल मानी जाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह वनस्पति सर्द होती है। पित्त को दूर करती है। खून को साफ करती है। हृदय को शक्ति देती है। इसके तेल को गठिया पर मालिश करने से लाभ होता है। नरम फोड़ों पर इसका गोंद लगाया जाता है। इसके गोंद के चूर्ण की फक्की लेने से वमन और दस्त आते हैं। इसका गोंद पानी में डालने से उसका तेल पानी पर तैर आता है। उस तेल को दुखती हुई आंख पर लगाने से शांति मिलती है। इसका पचांग पेशाब लाने वाला होता है। इसके पत्तों को पानी में भिगोकर सूजी हुई आंख पर बांधने से सूजन बिखर जाती है। इसकी सूखी हुई छाल का चूर्ण फंकाने से शरीर के किसी भी अंग से होने वाला रक्त स्राव फौरन बन्द हो जाता है।

पुनर्नवा

नाम—

संस्कृत—पुनर्नवा, श्वेतमूला, भोमा, कृष्णाख्या, नीलपुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, शिलाटिका, मडनपत्रिका वर्षांगी, शोथघ्नी, विषघ्नी, वैशाखी, वर्षभवा, इत्यादि। हिन्दी—पुनर्नवा, सांठी, ठोकरी, गदापूर्णा, विषखपरा, नीलीसांठ। बंगाल—श्वेतपुरण्या, गोधपूर्णा, पुनर्नवा, श्वेत पुनर्नवा। मराठी—घेंटूली, खापरा, रक्तवसु। गुजराती—मोटी साटोड़ी, रातीसाटोड़ी, घोली सातुरनी, विखखपरो। बंबई—घेंटूली, खापरा पुनर्नवा। तामील—मुकुरते, मूक्किरट्टइ। तेलगू—अटतमामिडो, अतिक ममदी। उर्दू—बशखिरा। अरबी—हदवुकि, सबका। फारसी—देवसपप। सिंध—नरवेल। अंग्रेजी—Spreding Hogweed (स्प्रेडिंग हागवीड) लेटिन—Boerhavia Diffusa (बोर हेवियाडिफ्यूसा)।

वर्णन—

यह वनस्पति सारे हिन्दुस्तान, बलूचिस्तान, सीलोन, एशिया, आफ्रिका और अमेरिका में होती है। यह जमीन पर फैलने वाली झाड़ीनुमा वनस्पति होती है। इसके पत्ते चौलाई के पत्ते के समान होते हैं। यह २५ से लेकर ३८ सेंटिमीटर तक लंबे होते हैं। फूलों के भेद से यह वनस्पति सफेद, लाल और नीली तीन जाति की होती है। सफेद फूल वाली जाति को विष खपरा कहते हैं। इस के पत्ते गोल और लाल किनारी दार होते हैं और फूल सफेद होते हैं। लाल फूल वाली जाति को सांठी कहते हैं। इस के फूल लाल होते हैं। नील पुनर्नवा के फूल नीले रंग के होते हैं। लाल और सफेद पुनर्नवा की पहचान यह है कि सफेद पुनर्नवा के पत्ते चिकने दलदार और रसभरे हुए होते हैं। और लाल

पुनर्नवा के पत्ते सफेद पुनर्नवा के पत्तों से छोटे और पतले होते हैं। सफेद जाति की शाखाए रस से भरी हुई और टूटने वाली होती हैं। लाल जाति की शाखाए मजबूत होती हैं। सफेद जाति सिर्फ बरसात की मौसम में हरी मिलती है। जब कि लाल जाति बारहों मास हरी मिलती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—राजनिघण्टु के मतानुसार श्वेत पुनर्नवा उष्णवीर्य, दस्तावर, धातु परिवर्तक तथा कफ, वात, बवासीर, सूजन और उदर रोग को दूर करने वाली होती है।

निघंटुरत्नाकर के मतानुसार श्वेत पुनर्नवा कड़वी, गरम, चरपरी, कसैली, रुचिकारक, अग्नि-दीपक, रूखी, मधुर, खारी, दस्तावर, हृदय को हितकारी तथा सूजन, कफ, बवासीर, खाँसी, घाव, पाडु रोग, विष, उदरशूल, हृदय रोग, और उर क्षत रोग को दूर करती है। इसकी जड़ को पीसकर घी में मिलाकर अंजन करने से आँख की फूली कट जाती है। इसकी जड़ को शहद में मिलाकर अंजन करने से आंख की ललाई दूर होती है। इसकी जड़ को भागरे के रस के साथ आंखों में लगाने से आंखों की खुजली दूर होती हैं। इसकी जड़ को केवल जल के साथ आखों में लगाने से तिमिर रोग दूर होता हैं। गाय के गोबर के रस में इसकी जड़ और पीपल को उबाल कर आंख में आंजने से रतौंधी दूर हो जाती है।

लाल पुनर्नवा अर्थात् गदापूर्णा कड़वी, पचने में चरपरी, शीतल, हलकी, शांतिकारक, मलरोधक तथा कफ, पित्त और रक्त विकार को दूर करती है।

नील पुनर्नवा कड़वी, चरपरी, गरम, रसायन तथा हृदयरोग, पांडु रोग, सूजन, श्वास, वात और कफ को नष्ट करती हैं।

पुनर्नवा के पत्तों का शाक अत्यन्त रूक्ष होता है और वात, मन्दाग्नि, गुल्म, प्लीहा तथा शूल को दूर करता है।

पुनर्नवा में दीपन, विरेचक, मूत्र विरेचक, स्वेदजनन, कफघ्न, वामक और शोथनाशक धर्म पाये जाते हैं। इसका मूत्रलधर्म उत्तम और प्रथम श्रेणी का होता है। क्योंकि इसको लेने से मूत्र-पिंड में बिना किसी प्रकार कष्ट हुए मूत्र की मात्रा दुगुनी होजाती है। मूत्र पिंड पर रक्त का दबाव बढ़कर पेशाब की मात्रा बढ़ती हैं। इसके अतिरिक्त मूत्रपिंड के अन्दर मूत्रजनक परमाणुओं पर इसकी उत्तेजक क्रिया होती है जिससे पेशाब में क्षार की मात्रा बढ़ती है। इन दोनों ही कारणों से पेशाव की मात्रा बढ़जाती है। इसका आनुलोमिक धर्म बहुत साधारण और थोड़ा होता है। इसका कफ नाशक धर्म थोड़ी २ मात्रा में इसको बार २ देने से दृष्टिगोचर होता है। वमन लाने के लिये थोड़ी २ देर से १ या २ आनुलोमिक मात्राएँ देना पड़ती हैं। जिससे वमन के साथ दस्त होकर मुँह और गुदा के

रास्ते से कफ निकलता है पसीना लाने का धर्म इसमें बहुत थोड़ा है। हृदय के ऊपर पुनर्नवा की क्रिया बड़ी मगर स्पष्ट होती है। इससे हृदय की संकोचन क्रिया बढ़ती है। धमनियों में रक्त का प्रवाह जोर से होने लगता है और रक्त का दबाव बढ़ता है। इसकी यह क्रिया डिजिटेलिस के समान होती है। रक्त का दबाव बढ़ने की वजह से मूत्र की तादाद भी बढ़ती है। जिससे शरीर में संचित पानी निकल जाता है। इसी वजह से पुनर्नवा में शोथघ्न धर्म भी माना जाता है। यद्यपि यह बच्छनाग, नागदती और गरम पानी के सेक के समान प्रत्यक्षरूप से सूजन को नष्ट करने वाली नहीं है तथापि पेशाब की मात्रा बढ़ाने और दस्त लाने की वजह से यह सूजन को उतारने में सफल होती है।

पुनर्नवा का उपयोग जलोदर, प्लुरिसी (फेफड़ों की झिल्ली की सूजन), अन्तरशोथ, बाह्य शोथ और सर्वांग शोथ में लाभदायक सिद्ध हो चुका है। बाह्य शोथ में इसके पत्तों को कुचल कर गरम करके बाँधते हैं। हृदय रोग में तथा खाँसी, श्वास, जलोदर और पाँवों की सूजन में पुनर्नवा को देने से बड़ा लाभ होता है। हृदयरोग में पुनर्नवा, कुटकी, चिरायता और सोंठ का काढ़ा फौरन लाभ करता है। सूजन में पुनर्नवा को काली मिरच के साथ देते हैं। कफ युक्त दमे में और श्वास नलिका की सूजन में पुनर्नवा को चन्दन के साथ देने से कफ छूट कर दमे में लाभ होता है। दमे के अन्दर बड़ी मात्रा में इसको देने से वमन होकर शांति मिलती है। अजीर्ण रोग और हृदय रोग में इसके पत्तों का शाक लाभ दायक होता है। सुजाक में पुनर्नवा को देने से जलन कम होती है और पेशाब की मात्रा बढ़कर घाव धुल जाता है, जिससे मूत्रनलिका सूजन कम हो जाती है। पेशाब की मात्रा कम होने पर जलोदर में तथा हृदय की शिथिलता पर पुनर्नवा का व्यवहार किया जाता है।

कोमान के मतानुसार इसकी जड़ को पीसकर अकेले अथवा लोह के साथ सर्वांगीण शोथ और रक्ताल्पता पर दिया जाता है। यह वनस्पति प्रत्येक हालत में अपना मूत्रल गुण बतलाती है। इस वनस्पति को पुरानी ब्राइट्स डिसीज और जलोदर रोग में दिया गया, इन दोनों में इसके द्रव अर्क ही काम में लिये गये। परिणाम स्वरूप यह एक उत्तम मूत्रल वस्तु पाई गई। ज्यों २ मूत्र की तादाद बढ़ती गई त्यों २ जलोदर में कमी होती गई।

डायमाक के मतानुसार इसकी जड़ का चूर्ण दिन में २ बार चाय के चम्मच की मात्रा में लिये जाने पर मृदुविरेचक का काम करता है। कम खुराक में लिये जाने पर यह एक उत्तम कफनिस्सारक औषधि का काम करती है। जिससे दमे में भी लाभ होता है। अधिक मात्रा में लिये जाने पर यह एक वमन कारक औषधि का काम करती है। पश्चिमीय भारत वर्ष में यह वनस्पति सुजाक की बीमारी में मूत्रल वस्तु की तौर पर काम में ली जाती है।

रासायनिक विश्लेषण—घोषाल ने सन १९१० में इसका रासायनिक विश्लेषण किया और इसमें नीचे लिखे तत्व पाये।

(१) इसमें एक उपक्षारीय सल्फेट पाया गया ।

(२) इसमें चर्बी से मिलता जुलता एक सुगंधित पदार्थ पाया गया ।

(३) इसमें सल्फेटस तथा क्लोराइडस और इस की राख में नाइट्रेट और क्लोरेट पाया गया । इसमें उपक्षारीय तत्व बहुत कम मात्रा में मिला । यह स्वाद में क्वीनाइन से मिलता जुलता था ।

इसके रासायनिक संगठन का विस्तृत विश्लेषण कर्नल चौपराने अपने सहायकों के साथ किया । इसके हरे पौधे में पानी की तादाद अधिक होने की वजह से इसके हवा में सुखाये हुए पौधों को परीक्षण के लिये उपयोग में लिया गया । इसके परिणाम इस प्रकार दृष्टिगोचर हुए ।

इस वनस्पति में पोटेशियम नाइट्रेट काफी तादाद में पाया गया । इसमें पाया जाने वाला मूत्रल-गुण पोटेशियम नाइट्रेट की ही वजह से होता है । इस पिसी हुई वनस्पति में पोटेशियम नाइट्रेट की मात्रा ६.४१ प्रतिशत थी । इसमें पाये जाने वाले उपक्षार की मात्रा बहुत ही कम अर्थात् ·०१ प्रतिशत थी । यह उपक्षार स्वाद में कडवा था और इसमें हाइड्रोक्लोराइड भी पाया गया । इसका नाम पुनर्नवाइन रक्खा गया ।

घोषाल ने सन् १९१० में इस वनस्पति के परीक्षण किये और वे इस तथ्य पर पहुंचे ।

(१) इसका प्रभावशाली असर इसके मूत्रल गुण के कारण होता है । यह हृदय के द्वारा गुर्दे पर अपना असर पहुंचाती है । यह हृदय की गति को बढाती है और रक्त भार को भी बढाती है ।

(२) श्वास क्रिया प्रणाली के ऊपर इसका कोई विशेष असर नहीं होता है ।

(३) यकृत के ऊपर इसका प्रभाव बहुत साधारण गिरता है । वह भी दूसरे पदार्थों के साथ में दिये जाने पर ।

(४) शरीर के दूसरे अवयवों के ऊपर इसका बिलकुल असर नहीं होता ।

कर्नल चोपरा ने तथा उनके साथियों ने भी इस वनस्पति पर अपने परीक्षण किये हैं और इसके उपक्षारों को भी काम में लिया है । उनके मतानुसार चमड़े पर और श्लेष्मिक झिल्लियों पर इसका कोई असर नहीं होता । इंजेक्शन के द्वारा इसको पहुँचाये जाने पर आंतों के ऊपर इसका अवसन्नता जनक प्रभाव होता है । इसके उपक्षार के इन्ट्राविनस इन्जेक्शन श्वासक्रिया प्रणाली को उत्तेजना पहुँचाते हैं किन्तु पुनर्नवाइन के इन्जेक्शन की तरह इनसे ढीलापन नहीं आता । इनसे रक्त भार बढ़ता है और इसी वजह से शायद हृदय के ऊपर भी इनका असर होता है । इसका मूत्रल गुण निर्विवाद है और यह मूत्र की अधिकता रक्त भार की वृद्धि की वजह से नहीं होती बल्कि यह इसका एक स्वतंत्र प्रभाव है इससे यह मालूम होता है कि गुर्दे के ऊपर इसका प्रभाव अवश्य होता होगा क्योंकि जब तक गुर्दे की अन्तर त्वचा पर प्रभाव नहीं होगा वहां तक मूत्र की मात्रा नहीं बढ़ सकती । इसके उपक्षार अधिक विषैले नहीं होते और अधिक मात्रा में दिये जाने पर भी इसका अनुचित असर नहीं होता ।

कर्नल चोपरा ने सर्वांगीण शोथ और जलोदर की बीमारी में भी इसको काम में लिया। उपचार अधिक मात्रा में न मिलने की वजह से इसके रस का ही उपयोग किया गया। यह रस भी उतना ही उपयोगी सिद्ध हुआ। इसको करीब १४ बीमारों के ऊपर काम में लिया गया। इस वनस्पति के रस में दूसरी कोई भी वस्तु नहीं मिलाई गई। कभी २ सिर्फ जुलाब दे दिया गया। इसके प्रभाव जलोदर में बहुत सतोष जनक पाये गये। कभी २ जलोदर बिलकुल ही दूर हो गया। अधिक पीड़ा युक्त जलोदर में इसका प्रभाव बहुत धीमी गति से दिखलाई देता था।

कई ऐसे बीमार जिन पर इस वनस्पति की परीक्षा की गई वे काला अजार (Kala azar) नामक बीमारी से पीड़ित थे और इसी बीमारी की वजह से उनको जलोदर भी हो गया था। ऐसे बीमारों के ऊपर इस वनस्पति का असर अधिक नहीं हुआ। खास काला अजार के इन्जेक्शन साथ में लगाने पर उनको लाभ हुआ। कुछ बीमारों में पेशाब की मात्रा दुगुनी और तिगुनी होगई और यह जलोदर और सर्वांगीण शोथ के बाद भी वैसी ही कायम रही।

इस वनस्पति का असर पेचिश की वजह से हुए जलोदर में और हृदय की बीमारी की वजह से हुए जलोदर में अच्छा होता है यकृत (लीवर) और गुर्दे की खराबी से हुए जलोदर पर इसका प्रभाव अस्थायी होता है। मगर वह अस्थायी प्रभाव भी काफी अच्छा होता है।

कई बीमारों पर इस वनस्पति को ४ से ६ सप्ताह तक काम में लिये जाने पर मूत्र की मात्रा कम हो गई। शायद यह इसके विषैले प्रभावों के कारण कम हुई हो। इसकी जाँच करने के लिये इसके सत्व २ से ३ ड्राम तक की मात्रा में बीमारों को दिये गये लेकिन इनसे मूत्र की तादाद कम नहीं हुई और कुछ हालत में तो औषधि को बन्द कर देने पर भी इसका मूत्रल असर बना रहा।

(१) मतलब यह कि इस वनस्पिति में पाया जाने वाला खास तत्व पुनर्नवाइन है। इसके अतिरिक्त पोटेशियम नाइट्रेट और अन्य पोटेशियम लवण भी इसमें पाये जाते हैं।

(२) इसके उपचार के इन्जेक्शनन्स रक्त भार को बढ़ा देते हैं और मूत्रल औषधि का काम करते हैं। इसके उपचारों के ही असर से मूत्रकी तादाद बढ़ती है।

(३) इसके रस को १ से लेकर ४ ड्राम की मात्रा में देने से जलोदर और सूजन की बीमारी में मूत्र की अधिकता हो जाती है। जब ये बीमारियां यकृत और गुर्दे की खराबियों से होती हैं तब इसका यह प्रभाव और भी अधिक दिखलाई देता है।

(४) यह वनस्पति कुछ खास प्रकार के जलोदर रोगों पर अपना विशेष प्रभाव दिखलाती है। जब जलोदर की बीमारी यकृत के बिगड़ने पर अथवा उदर झिल्ली की खराबी से होती है तब इसका असर विशेष होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्ते स्वाद में तीखे, क्षुधावर्धक और विषनाशक होते हैं।

ये आंखों की बीमारी में बहुत लाभदायक है। जोड़ों के दर्द को भी ये दूर करते हैं। इसके बीज पौष्टिक कफ निस्सारक और पेट के अाफरे को दूर करने वाले होते हैं। मज्जा तन्तुओं के रोग, कटिवात, खुजली और बिच्छू के विष पर भी ये लाभदायक हैं। ये रक्त शोधक और प्रसूति कष्ट को दूर करने वाले हैं। इसकी जड़ इसके मूत्रल गुणों के कारण बहुत मशहूर है यह एक उत्तम कफ निस्सारक पदार्थ है। बड़ी खुराक में लिये जाने पर यह वमन कारक औषधि का काम करती है। पीलिया, जलोदर, मूत्र की कमी, आंतरिक प्रदाह और सर्वाङ्गीण शोथ में यह बहुत लाभदायक है। इसे अदरक के रस के साथ मिलाकर गर्भाशय की पीड़ा को दूर करने के काम में लेते हैं।

पंजाब में यह वनस्पति आँखों की बीमारी को दूर करने के काम में ली जाती है।

बम्बई में यह वनस्पति जलोदर की सूजन दूर करने के लिये एक उत्तम औषधि मानी जाती है।

गोआ में यह बनस्पति जलोदर और सुजाक की बीमारी मे मूत्रल वस्तु की तौर पर काम में ली जाती है।

चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट के मतानुसार यह वनस्पति दूसरी औषधियों के साथ में सर्प विष को दूर करने के काम में ली जाती है। सुश्रुत के मतानुसार बिच्छू के विष में भी यह उपयोगी है।

रस रत्नाकर और योगरत्नाकर के मतानुसार इसकी जड़ चांवल के पानी के साथ देने से सांप के विष में लाभ होता है। बिच्छू के विष पर इसको अकेले अथवा कपास की जड़ के साथ अथवा मुलहठी के साथ खिलाने और लगाने से लाभ होता हैं।

डाक्टर इ. एफ. बोरिंग फर्माकोपिया ऑफ इन्डिया नामक पुस्तक में लिखते हैं। कि—

It has been found a good expectorant and been prescribed in asthma with marked success, given in form of powder, decoction and infusion taken, largely it acts as a emetic.

अर्थात् यह औषधि एक बहुत उत्तम कफ निस्सारक पदार्थ के रूप में सफल सिद्ध हुई हैं। इसका काढ़ा अथवा चूर्ण दमे के रोग पर बहुत विजयी प्रमाणित हुआ है। यह बड़ी मात्रा में लेने से अपना वमनकारी प्रभाव दिखलाती है।

डॉक्टर आर. एन. खोरी लिखते हैं कि बिच्छू के डंक पर इस औषधि की जड़ को घिसकर लगाते हैं और पिलाते भी हैं।

मात्रा—मृदु विरेचने के लिये इसकी मात्रा ४० रत्ती तक दी जाती है। इससे बड़ी मात्रा में देने से यह अपना वमन कारी प्रभाव बतलाती है।

उपयोगः—

सूखी खाँसी—इसकी जड़ के चूर्ण में शक्कर मिलाकर फक्की देने से सूखी खाँसी मिटती है।

दमा- इसकी जड़ के ३ माशे चूर्ण में ४ रत्ती हलदी मिलाकर खिलाने से दमा मिटता है।

मूत्रकृच्छ्—इसके पत्तों को काली मिरची के साथ घोट छान कर पिलाने से मूत्र वृद्धि होकर मूत्रकृच्छ् मिटता है।

सर्वांग जलमय शोथ—पुनर्नवा की जड़, चिरायता, और सोंठ का काढ़ा पिलाने से सर्वांग-जलमय शोथ में लाभ होता है।

बाईंठे—इसकी जड़ का २॥ या ५ तोले क्वाथ पिलाने से बाईंठे मिटते हैं।

जलोदर—पुनर्नवा की जड़ की फांट में शोरा डालकर पिलाने से जलोदर मिटता है।

(२)—इसकी जड़ और सेंधा नमक दोनों को बराबर लेकर घी के साथ चटाने से गुल्म रोग और शहद के साथ चटाने से जलोदर मिटता है।

मूत्र की रुकावट—इसके पत्तों के रस को दूध में मिलाकर पिलाने से मूत्र की रुकावट मिटती है।

नारू—इसकी जड़ और सोंठ को इसी के रस में पीसकर बांधने से नारू मिटता है।

दमा—इसकी जड़ का चूर्ण अथवा इसकी जड़ का क्वाथ पिलाने से खांसी और दमा आराम होता है।

चातुर्थिक ज्वर—इसकी जड़ को दूध के साथ देने से पित्त की वजह से हुआ चातुर्थिक ज्वर मिट जाता है।

विद्रधि—पुनर्नवा और वायवरणा की जड़ को घोट कर पिलाने से अपक्व विद्रधि मिटता है।

बिच्छू का विष—रविवार और पुष्य नक्षत्र के दिन उखाड़ी हुई पुनर्नवा की जड़ को चबाने से बिच्छू का विष उतरता है।

(२)—पुनर्नवा के पत्ते और अपामार्ग की टहनियों को पीसकर बिच्छू के डंक पर मसलने से बिच्छू का विष उतरता है।

प्रदर—पुनर्नवा को जल भांगरे के रस के साथ खाने से प्रदर मिटता है।

दाद—इस को पवांड़ के बीजों के साथ खाने से और लगाने से दाद मिटता है।

नेत्र रोग—इसकी जड़ को दूध के साथ घिसकर अंजन करने से आंख की खुजली, शहद के साथ आंजने से आंख से पानी का बहना, घी के साथ अंजन करने से आंख की फूली, तेल के साथ अंजन करने से तिमिर रोग और बकरी के मूत्र के साथ अंजन करने से रतौंधी मिटती है।

आंख का परवाल- इसकी जड़ को छाया में सुखाकर उसका चूर्ण करके उस चूर्ण में थोड़ा सा घी मिला कर बासी पानी के साथ गोलियां बना लेना चाहिये। इन गोलियों को पानी के साथ घिस कर अंजन करने से आंखों में परवालों का आना बंद हो जाता है।

अनेक रोग—पुनर्नवा को पीपर के साथ खाने से भूख बढ़ती है। दूध के साथ खाने से शरीर पुष्ट होता है, शक्कर के साथ देने से पित्त गल जाता है। पानके साथ खाने से स्तम्भन होता है, खैर की लुगदी के साथ लेने से हड़ फूटनी मिटती है और सुपारी के साथ खाने से कुष्ट में लाभ होता है।

बनावटें.—

पुनर्नवादिमडूर: पुनर्नवा की जड़, निसोथ की जड़ की छाल, सोंठ, पीपर, मिर्च, इन्द्रजौ, बाय बिडंग, देवदार, चित्रक की जड़, कुटकी, कूट, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पीपलामूल, हलदी, दारूहलदी जमाल गोटे के शुद्ध बीज, चव्य, नागर मोथा और अजवायन। ये सब चीजें एक २ तोला लेकर इनका चूर्ण कर लेना चाहिये। फिर १०० बरस के पुराने शुद्ध मण्डूर की ४० तोला भस्म लेकर उसे ३२० तोला गाय के मूत्र के साथ औटाना चाहिये। जब वह रबड़ी की तरह हो जाय तब उसको नीचे उतार कर उसमें उपरोक्त औषधियों का चूर्ण मिलाकर खूब अच्छी तरह खरल करके गोलियां बना लेना चाहिये।

इन गोलियों में से १॥ माशा गोलियां त्रिफला के काढे या गोमूत्र के साथ लेने से और उसके ऊपर सिर्फ मठा और चावल का पथ्य लेते रहने से सब प्रकार की यकृत की खराबियां और उसकी वजह से आने वाला सूजन तथा पांडु, कामला और पीलिया का रोग बिलकुल नष्ट हो जाता है।

पुनर्नवागूगल—पुनर्नवा की जड ४०० तोला, एरंड की जड़ ४०० तोला और सोंठ ६४ तोला इन सब चीजों को जौकुट करके १०२४ तोला पानी में औटाना चाहिये। जब १२८ तोला पानी बाकी रह जाय तब उसमें शुद्ध किया हुआ गूगल ३२ तोला डाल कर चूल्हे पर चढ़ाकर पका लेना चाहिये। पकते समय उसमें १६ तोला अरंडी का तेल, २० तोला निसोथ का चूर्ण, ४ तोला शुद्ध जमालगोटा, १० तोला नीम गिलोय, तथा हरड, बहेड़ा, आंवला, सूंठ, मिरच, पीपर, चित्रक की जड़, सेंधा नमक, वायबिडंग और पुनर्नवा की जड ये सब चार २ तोला मिलाकर १ तोला सोना मक्खी की भस्म भी मिला देना चाहिये। कोई २ इसमें शुद्ध मिलामें का चूर्ण भी) तोला डालते हैं।

यह गूगल प्रतिदिन ६ माशे की मात्रा में सवेरे शाम योग्य अनुपान के साथ लेने से वातरक्त, अण्डवृद्धि, गृध्रसी, कमर का दर्द और सन्धिवात की पीड़ा में बहुत लाभ होता है।

पुनर्नवारिष्ट—पुनर्नवा की जड़ ३२ तोला, दशमूल २५६ तोला, आंवडे की जड़ चित्रक की जड़, दर्वी की जड़, पीपर, निसोथ की जड़, रासना और त्रिफला। इनमें से प्रत्येक २५६ तोला लेकर ८१७२ तोला पानी के साथ औटाना चाहिये। जब २०४८ तोला पानी शेष रहे तब उसमें १० सेर गुड़, २५६ तोला गौमूत्र, १२८ तोला मंडूरभस्म तथा वायविडंग, इन्द्रजौ, चित्रक की जड़, काली मिरच, और बच ये सब चीजें आठ २ तोला और धाय के फूलों का चूर्ण २५६ तोला मिलाकर चीनी मिट्टी की बरनियों में भर देना चाहिये। फिर इन बरनियों का मुँह बन्द करके १ महीने तक पड़ी रहने देना चाहिये। फिर जब उसमें खमीर उठ जाय तब उसको छानकर रख लेना चाहिये।

इस अरिष्ट को १ से २ तोला तक की मात्रा में पानी के साथ मिलाकर पीने से पांडुरोग, गुल्म सब प्रकार के उदर रोग, यकृत और तिल्ली की वृद्धि, जलोदर, सर्वांगीण शोथ, प्रमेह और बवासीर में बहुत उत्तम लाभ होता है।

पुनर्नवारसायन

सफेद पुनर्नवा की जड़ की छाल का चूर्ण करके उसको गाय के दूध के साथ ६ महीने तक लगातार लेने से मनुष्य दीर्घायु होता है और उसका बुढापा दूर होता है।

——:०.——

पुल्लातकली

नाम:—

यूनानी—पुल्लातकली।

वर्णन—

इसके पत्ते पान मोड के पत्तों की तरह, फूल हमास के फूल की तरह और जड़ रतालू की तरह होती है। इस वनस्पति के सभी हिस्से खट्टे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क होती है। कफ और पित्त को दूर करती है। पित्त की खुश्की से होने वाली पेचिश और मरोड़ में यह लाभदायक है। इसकी जड़ को मिश्री के साथ खाने से खांसी में लाभ होता है। मद्दू के साथ इसको देने से यह गठिया और पांव की उंगली के दर्द में लाभ पहुँचाती है बवासीर के अन्दर इसका लेप लाभदायक होता है। (ख०अ०)

——:०:——

पुवैन्ना

तामील—पुवेन्ना, पुवेन्नाई। लेटिन—Sarcostigma Kleinii (सार्कोस्टिग्मा क्लीनी)।

वर्णन—

यह एक पराश्रयी लता होती है। इसके पत्ते १० से लेकर ३० सेंटिमीटर तक लम्बे और ५ से लेकर १० सेंटिमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल बहुत छोटे होते हैं। इसके फल जैतून के फल के आकार के होते हैं। यह बनस्पति पश्चिमी घाट और त्रावन कोर की पहाड़ियों पर पैदा होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति का तेल संधि वात की एक उत्तम दवा समझी जाती है।

——:०:——

पूली

नाम.—

हिन्दी—पूली, पोला, पोटारि, पाये, पुळु, चोपुल्टी। बम्बई—मोटीपोटारि, वरांगा, बरङ्बा,

वरङ्ग । गढ़वाल—इल्लू, पुलाव । बिजनौर—पलाउ, पातरा । अलमोडा— पाटा । मध्यप्रान्त—वारङ्गा, बरघा, भोटी । गुजराती—मोटी हिंरवानी, निहोटी लिस्रानी । कोकण—वरङ्ग । मराठी—मेंढी, भोटी, लीया, पोटारी, वरँग । नेपाल—कुबिडे । सीमाप्रान्त—पुता, पुत्तिया । अवध—ककड़ी । काठियावाड—मोटी हिंरवानी । पञ्जाब—पोला, पूला, पुल्ली, । सन्थाल—पोशकाउलाट । तामील—वेन्डाइ । तेलगू—पेन्डिली । लेटिन—Kydia Calyacina (किडिया केलिसीना) ।

वर्णनः—

यह एक वृक्ष होता है । इसके पत्ते ७.५ से १५ सेन्टीमीटर तक लम्बे होते हैं । इसके फूल के भीतरी भाग सफेद और गुलाबी होते हैं । इसके बीज गुर्दे के आकार के भूरे और काले होते हैं । यह वनस्पति हिमालय, बरमा, पच्छिमी घाट, कोकण, पूने जिले की पहाड़ियों और मद्रास प्रेसीडेंसी में पैदा होती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

सन्थाल जाति के लोग इसके पत्तों का चूर्ण करके उनका पुल्टिस बनाकर शरीर में जिस जगह दर्द होता है उस जगह बांध देते हैं । जिससे पीड़ा शान्त होती है । इस वनस्पति को चूसने से मुंह की लाला ग्रंथियों से लार काफी पैदा होती है जिससे मुंह की खुश्की मिट जाती है ।

——:०:——

पुलिचन

नाम—

तामील—पुलीचन । कनाड़ी—करिवल्ली, उनामिनी । मलयालम—नरमपनेल । लेटिन—Uvaria Narum (यूवेरियानेरम) ।

वर्णन—

यह एक बड़ी जाति की बेल होती है । इसके पत्ते ५ से १५ सेन्टीमीटर तक लम्बे और २.५ से ३.८ सेन्टीमीटर तक चौड़े होते हैं । इसके फूल कुछ ललाई लिये हुए होते हैं । इनका डायमीटर २.५ सेन्टीमीटर होता है । यह वनस्पति बम्बई प्रेसीडेन्सी, कोकण, मद्रास प्रेसीडेन्सी और पश्चिमी घाट के पहाड़ों में होती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ों के अर्क से प्राप्त किया हुआ तेल और इसकी जड़ कई बीमारियों में उपयोग में ली जाती है इसकी जड़ खुशबूदार और सुगन्धित होती है । इसके कुचले हुए पत्ते सूंघने के काम में लेते है ।

——०×०——

पुलंग (वारस)

नाम—

बम्बई— पुलङ्ग, वारस। मराठी— पलग, पुलग, वारस, वरस, वरसी। तेलगू—बोंदूगू।
लेटिन— Hetero phragma Roxburghi (हेटेरोफ्रेग्मा राक्सबर्घी)।

वर्णन—

यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है। इसकी छाल गहरे भूरे रङ्ग की होती है। इसके पत्ते डखल के दोनों ओर लगते हैं। ये ३ से ६ मीटर तक लम्बे होते हैं। यह वृक्ष मध्य प्रान्त, खानदेश कोकण, दक्षिण और पश्चिमीघाट में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति को जला कर पाताल यन्त्र से इसका तेल निकाला जाता है।

वापर के मतानुसार इसकी जड़ जहरी लेसर्प के दंश (Viper) पर उपयोग में ली जाती है। मगर केस और मस्कर के मतानुसार यह सर्प दंश पर निरुपयोगी है।

———:※:———

पुन्चिकल्ली

नामः—

तामील—पुन्चिकल्ली। तेलेगाग—दिलगवका। अंग्रेजी—Cochineal Cactus (कोची-निअल केकटस)।

वर्णनः—

यह नागफनी थूहर के वर्ग की एक वनस्पति होती है।

गुण दोष और प्रभाव.—

इसका फल स्निग्धताकारक, ज्वर नाशक और मृदुविरेचक होता है। यह वनस्पति नागफनी थूहर की प्रतिनिधि रूप में काम में ली जाती है।

——o:——

पेनालीवल्ली

नाम—

मद्रास—पीनालीवेली। लेटिन—Parsonsia Spiralis (पारसोनसिया स्पिरेलिस)।

वर्णन—

यह एक हमेशा हरी रहने वाली झाड़ीनुमा चिकनी बेल होती है। इसके फूल कुछ हरापन लिये

हुए होते हैं। यह वनस्पति आसाम, लोअर बङ्गाल, लोअर बरमा और पश्चिमी घाट में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका रस उन्माद रोग को दूर करने के लिये पिलाया जाता है।

——:o:——

पैंडीठगारा

नाम—

बङ्गाल—अनन्ता। हिन्दी—पेंडीठगारा। लेटिन—Gardenia Floribunda (गार्डेनिया फ्लोरिबंडा)।

वर्णन, गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मत से यह वनस्पति सर्प विष और गर्भपात के काम में आती है।

——:o:——

पेरुम्बुलाई

नाम:—

तामील—पेरुम्बुलाई, पुलाइपु। तेलगू—मगबिरा, पिंडीकोंडा। झालावान—बाल। लेटिन—Aerva Tomentosa (एरवा टोमेंटोसा)।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति का क्षुप होता है। इसके पत्ते एक के बाद एक लगते हैं। ये २.५ से ६.३ सेंटिमीटर तक लंबे और ३ से १६ मिलीमीटर तक चौडे होते हैं। इसके फूल सफेद होते हैं। यह वनस्पति पंजाब, मध्यभारत, सिंध, गुजरात, खानदेश और दक्षिण में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका काढ़ा सूजन को दूर करने के काम में लिया जाता है।

——:o:——

पेरू

नाम—

संस्कृत—कानकखीर। तामील—पेरू, पेरूमल्लारी। इंग्लिश—White Champa लेटिन—Plumieria Alba (प्लूमेरिया एल्बा)।

वर्णन—

यह चम्पे की जाति का एक वृक्ष होता है। इसके फूल सफेद होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

गायना में इसका दूधिया रस व्रण, गीली खुजली, विसर्पिका, दाद, इत्यादि चर्म रोगों पर लगाने

के काम में लिया जाता है। इसके बीज रक्त शोधक माने जाते हैं। इसकी जड़ की छाल विरेचक और धातु परिवर्तक मानी जाती है और यह सुजाक, मूत्रकृच्छ्र और विसर्पिका में दीजाती है। इसका एक्स्ट्रेक्ट (सत्व) उपदंश सम्बन्धी व्रणों को दूर करने के लिये भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार के उपचारों में काम आती है।

——:०:——

पेनवरपेट

नाम—

मलयालम—पेनवरपेट, विदारापाहित, इयूक, जूक, लॅपेहुपाहित। लेटिन—Euryco na Longifolia (इरीकोमा लांगिफोलिया)।

वर्णन—

यह वनस्पति मलायापेनिनशुला, सुमात्रा और वोर्नियो में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल और जड़ कड़वी होती है। इसकी जड़ का काढ़ा पार्यायिक ज्वरों को दूर करने के लिये दिया जाता है।

इडोचायना में इसकी छाल बदहजमी को दूर करने के लिये दी जाती है और इसका फल रक्तातिसार में उपयोगी माना जाता है।

——

पेंटगुल

नाम—

बम्बई—पेंटगुल। मराठी—पेंटगुल, पेरगुली, तितबेलि। कनाडी—जुल्डी। गोवा—तितावली। लेटिन—Dalbergia Sympathetica (डलबेर्गिया सिंपेथेटिका)।

वर्णन—

यह एक बड़ी जाति की झाड़ीनुमा बेल होती है जो बड़े २ वृक्षों के सहारे चढ़ती है। इसकी शाखाओं के ऊपर बड़े २ बोथरे कांटे लगे हुए रहते हैं। इसके पत्ते इमली के पत्तों की तरह होते हैं। यह झाड़ी पहाड़ पर होती है और इसके पत्तों को भेड़ बकरियां खाती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों का रस रक्त को शुद्ध करता है। गोआ में इसकी छाल का लेप फुन्सियों को दूर करने के काम में लिया जाता है।

——

पेच

नामः—

सिंध—पेच। पंजाब—चेनी निग्गी, दौना, गन्दालन, जोकरी, कगणारी, काक, केनसेन, कथान, मशूर, शालंग्री, शिंग, सौनाई, स्वाना, फी, जुगु। बलूचिस्तान—पीपल। लेटिन—Daphne Oleoides (डेफ्ने ओलेओइड्स)।

वर्णन—

यह एक बहुशाखी झाड़ी होती है। जो अफगानिस्तान और उत्तरी हिन्दुस्तान में पैदा होती है। इसके पत्ते २.५ से ५ सेंटिमीटर तक लंबे और ५ से लेकर १० मिलीमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल सफेद और गुलाबी रंग के होते हैं। यह वनस्पति पश्चिमी हिमालय में ३ हजार से ९ हजार फीट की ऊंचाई तक होती है। इसके पत्ते ऊंटों के लिये जुलाब का काम करते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

स्टेवर्ट के मतानुसार इसके पत्ते और इसकी छाल चर्म रोगों पर लगाई जाती है। इसके पत्तों का शीतनिर्यास सुजाक में पिलाया जाता है और इस के पत्तों को पीसकर फोड़े और विद्रधि पर लेप किया जाता है।

एटकिंसन के मतानुसार कुर्रमघाटी में इसकी जड़ को उबालकर विरेचक वस्तु की तरह देते हैं।

हॉटसन के मतानुसार बिलोचिस्तान में इसके पत्तों को कुचलकर तेल में मिलाकर पुल्टिस की तरह बाल तोड़ और विस्फोटक पर बांधते हैं।

पेड़ पत्ता

नामः—

यूनानी—पेड़ पत्ता।

वर्णन—

यह एक पौधा होता है। इसके बड़े पत्ते १ बालिश्त तक लम्बे और ४ उंगल तक चौड़े होते हैं। इसकी डाली का रंग हरा और खाकी होता है। इसमें फूल नहीं लगते इसकी शाखाओं में बहुत गठाने होती हैं। बहुत से बगीचों में इसको लगाते हैं। इसके पत्ते को कूंडे में डालकर पानी देने से लग जाता है और डाली निकल आती है इसीलिये इसको पेड़ पत्ता कहते हैं। कहीं कहीं इसको अमृत बान भी कहते हैं। इसके पत्तों की चटनी बनाई जाती है जो खटाई की वजह से जायकादार होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति सर्द और खुश्क होती है। इसके २।३ पत्ते ३।४ काली मिर्चों के साथ पीस कर हैजे के मरीज़ को पिलाने से लाभ होता है।

खजायनुल अदविया के ग्रंथ कार का कथन है कि यह वनस्पति सुज़ाक के अन्दर बहुत मुफीद है इसको कुछ औषधियों के साथ मिलाकर एक पिचकारी की दवा तैयार की जाती है इस पिचकारी को दिन में २।३ बार देने से चाहे जैसा नया या पुराना हो, जाता रहता है। वह दवा इस प्रकार बनाई जाती है।

हरड़ नग ६, बहेड़ा नग ८, आंवला नग ६। इन तीनों औषधियों की गुठलियां अलग कर दें। फिर सफेदा, कपीला, मुर्दासिंगी, पपड़िया कत्था और कपूर ये सब चीजें चार २ माशा ले लें। पहले त्रिफला को सेर भर पानी में रात भर भिगो रखें। फिर दिन में साफ करके दूसरी दवाइयों को भी मिला कर शामिल कर दें और उस पानी को छान कर एक बोतल में भर ले। इस दवा की ३ पिचकारी दिन भर में देने से सुजाक में लाभ होता है इसके साथ खाने के लिये नीचे लिखी दवा देनी चाहिये।

काली मिरच नग २॥ सिंघाड़े के पत्ते नग २॥ इन दोनों को पानी में पीस कर गोलियां बनालें। इनमें से १ गोली प्रतिदिन सवेरे खालिया करें। अगर सिंघाड़े का पत्ता नहीं मिले तो उतने ही पत्ते पेड़ पत्ते के लेलें। अगर सरदी का मौसम होतो इस औषधि की जगह एक तोला तालमखाना पीस कर पानी के साथ ले लिया करें। खटाई और गुड़ से परहेज रखना चाहिये।

खजायनुल अदविया के लेखक का कथन है कि इस प्रयोग से सुजाक अवश्य आराम हो जाता है।

---:+:---

पोकर मूल

नाम—

संस्कृत—पुष्करमूल, पद्मवर्णक। काश्मीर—ब्रह्मतीर्थ श्वासारि, पुष्करजटा, कुष्टभेद, पद्मकर्ण, सागर, शलभ, सुबन्धु इत्यादि। हिन्दी—पोकरमूल, पुस्ट। बंगाल—कुष्टविशेष, पुष्करमूल। बंबई—गुदड़ीचकड़ा। गुजराती—पोकरमूल। मराठी—पेनवा, पुष्करमूल, चालवेखड। अंग्रेजी—Orris Root। लेटिन—Costus Speciosus (कोस्टसस्पेसिओसस)।

वर्णन

यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसकी जड़े गांठ दार होती है। इसके पत्ते १५ से लेकर ३० सेंटिमिटर तक लम्बे ५·७ से लेकर ७·५ सेंटिमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल सफेद, नीले और तरह २ के रंग के होते हैं। इसकी जड़ उदी रंग की, चपटी, कठिन और गठानदार होती है। इस जड़ के अन्दर बारीक तंतु रहते हैं। इसकी गंध बनफ्शा के समान और स्वाद कड़वा और तीखा होता है। औषधि प्रयोग में इसकी जड़े काम में आती हैं। यह कूटकी ही एक उपजाति है। यह ईरान और काश्मीर में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से पोकरमूल चरपरा और कड़वा होता है। यह कफ ज्वर

मन्दाग्नि, सूजन, पांडुरोग, संधिवात, हिचकी और कटिवात में यह उपयोगी होता है।

पोकरमूल के धर्म कूट के समान ही होते हैं। यह गरम, आनुलोमिक, मूत्रल, व्रणरोपक और बड़ी मात्रा में विरेचक तथा वामक होता है। दांतो के दर्द को दूर करने के लिये और उनकी जड़ों को मजबूत करने लिये तथा मुखको सुगन्धित करने के लिये इसका मन्जन किया जाता है। सुगन्धित केश तेलों को बनाने में भी इसका उपयोग होता है। छोटे व्रणों और फोड़ों पर इसका लेप किया जाता है। अरुचि, अजीर्ण और पित्त को सुव्यवस्थित करने के लिये पुष्कर मूल का व्यवहार होता है। पार्श्व शूल में भी यह उपयोगी है। इसके प्रयोग से खासी और दमें में भी लाभ होता है।

बगाल और कोकण में इसकी जड़ शोधक और कामोत्तेजक मानी जाती है।

संथाल लोग इसकी जड़ को मज्जा शूल को दूर करने के लिये काम में लेते है।

यू० पी० के लोग इसकी जड़ से एक पौष्टिक औषधि तैयार करते हैं और वे इसका कृमि-नाशक वस्तु की तरह भी उपयोग करते हैं।

यूनानीमत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह कफ के बुखार और कफ के सूजन को मिटाता है। भूख पैदा करता है। सूजन को बिखेरता है। सांस की तंगी और सीने के दर्द में मुफीद है। शरीर की सर्दी को निकाल देता है। सर्द प्रकृति वालों के हृदय को ताकत देता है। मुँह के स्वाद को ठीक करता है।

पुष्करमूल, कायफल, सोंठ, कांकड़ासिंगी, भारंगी और छोटी पीपल इन सबको समान भाग पीस कर उसमें से १॥ माशे चूर्ण शहद के साथ चटाने से कफ की खाँसी और दमा आराम होता है।

उपयोगः—

व्रण—इसके क्वाथ से व्रण धोने से व्रण शुद्ध होते हैं। व्रण पर इसका चूर्ण भुर भुराने से घ्रण के कीडे मर जाते हैं।

निर्बलता—इसके चूर्ण को शहद के साथ चटाने से निर्बलता मिटती है।

अरुचि—पोकर मूल का मुरब्बा बना कर खाने से भूख बढती है और अरुचि मिटती है।

हिचकी—पोखरमूल, जवाखार और काली मिर्च को गरम जल के साथ लेने से श्वास और हिचकी बन्द होती है।

हृदय रोग—इसके चूर्ण को शहद के साथ चटाने से हृदय रोग, श्वास, खांसी और हिचकी में लाभ होता है।

कृमि—पोखरमूल और सहंजने के बीजों का चूर्ण देने से बालकों के पेट के कृमिया चुन्ने मिटते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—

इस वनस्पति के अन्दर एक प्रकार का कपूर और राल के समान एक तीक्ष्ण स्वाद वाला द्रव्य पाया जाता है।

——:०:——

पोटवेल

नाम—

सिंहाली—पोटवेल। मलयालम—अनप्पारुआ। कनाडी—अदिकविल्लुवल्ली। लेटिन—Pothos Scandens (पोथोस स्कॅंडन्स)।

वर्णन—

यह एक जाति की लता होती है। जो बड़े २ झाड़ों और दीवालों पर चढ़ती है। इसके पत्ते बहुत चचल तथा ५ से लेकर १० सेंटिमीटर तक लम्बे और ८ से ५ सेंटिमीटर तक चौड़े होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

मलाया में इस वनस्पति के पत्तों का चूर्ण शीतला रोग की शांति के लिये शरीर पर लगाया जाता है और इसके डखलों को कपूर के साथ पीसकर दमे को शांत करने के लिये सूंघा जाता है।

इसके डखलों और पत्तों को कुचलकर गोमूत्र में मिलाकर सांप के काटे हुए स्थान पर लगाया जाता है और इसके ताजा डखल और पत्तों का (एक्सट्रेक्ट) अर्क सर्प विष की शांति के लिये पिलाया जाता है।

——:o:——

पोनवार

नाम—

झालावान—पोनवार। उर्दू—पनवार। सिंध—कस्तूरी। लेटिन—Cleome Brachycarpa (क्लोमे ब्रेचीकारपा)।

वर्णन—

यह एक वर्ष जीवी क्षुद्र वनस्पति होती है। इसकी ऊंचाई १ फुट से तीन फुट तक होती है। इसके फूल पीले रंग के होते हैं। यह वनस्पति सिंध, बलूचिस्तान, पश्चिमी राजपूताना और पंजाब के मैदानों में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह वनस्पति बहुत कड़वी और गीली खुजली, संधिवात तथा सूजन में लाभ दायक है। इसके पत्ते धवल रोग में उपयोगी माने जाते हैं।

इक्सथूलर के मतानुसार और मारा में यह वनस्पति गर्मी से घबराये हुए लोगों के लिये या लू के लगने पर उपयोग में ली जाती है।

पोदीना

नाम.—

संस्कृत—अजीर्णहर, पुदीना, रोचनी, रुचिष्य, शाकशोभन, सुगंधिपत्र, वान्तिहर, व्यजन।

हिन्दी—पोदीना। बंगाल—पुदीना। गुजराती—पोदीना। मराठी—पोदीना। बंबई—पुदीना। तामील—पुदीना। तेलगू—पुदीना। उर्दू—पुदीनचकोही। अरबी—फोदनाजी हिन्दी। फारसी—पुदीना, फिलफिलभुन। अंग्रेजी—Horsemint। पंजाब—याबूरी, बेजेनी, कोषु, पुदना कुशाना, यूरा। लेटिन—Mentha Sylvestris (मेंथासिल्व्हेस्ट्रिस)।

वर्णन—

पोदीने का छोटा क्षुप होता है। इसके पत्ते सारे भारतवर्ष में चटनी बनाने के काम में आते हैं और इसको सब लोग जानते हैं। इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से पोदीना भारी, स्वादिष्ट, रुचिकारक, हृदय को बल देने वाला, मल और मूत्र को रोकने वाला तथा कफ, खांसी, मन्दाग्नि, विषूचिका, संग्रहणी, अतिसार, जीर्णज्वर, और कृमिरोगों को नष्ट करता है।

पोदीना, गर्म और रूखा होता है। इसके अन्दर वातनाशक, दीपन, आर्तवप्रवर्तक, संकोच विकास प्रतिबन्धक और उत्तेजक इतने धर्म रहते हैं। इसका वात नाशक धर्म बहुत मूल्यवान है और शाकाहारी लोगों के लिये यह विशेष उपयोगी है। अजीर्ण, मन्दाग्नि, आफरा और उदरशूल में इसके स्वरस को देने से लाभ होता है। प्रसूतिज्वर में इसके स्वरस को १ से २ तोले तक की मात्रा में देने से काफी फायदा होता है। ज्वर और उसकी वजह से होने वाली शरीर की गरमी को शांत करने के लिये पोदीने की फांट बनाकर दी जाती है।

यूरोप में यह वनस्पति शान्तिदायक और उत्तेजक वस्तु की तरह सेवन की जाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से पोदीना तीन प्रकार का होता है. जङ्गली, पहाड़ी और बस्तानी। बस्तानी—दूसरे दर्जे के आखिर में गरम और खुश्क होता है। जङ्गली पोदीना—तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क होता है। पहाड़ी पोदीना—तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क होता है। यह सूजन को नष्ट करता है काबिज है। आमाशय को शक्ति देता है। पसीना लाता है। हिचकी को बन्द करता है। जलोदर और पीलिया में मुफीद है। इसके रस में कपड़ा भिगोकर उस कपड़े की बत्ती बनाकर योनि में रखने से बच्चा गिर जाता है। जहरीले जानवरों के जहर में भी यह लाभ पहुंचाता है। इसकी खुशबू से बेहोशी दूर होती है कफ की बुखार में यह लाभदायक है। इसका काढ़ा श्लीपद के लिये मुफीद है। इसको शराब के साथ में देने से हैजे में लाभ होता है। इसको सिरके में पीस कर कफ की सूजन पर लेप करने से सूजन बिखर जाती है। धनुर्वात में भी यह मुफीद है। इसका रस निकाल कर कान में डालने से कान के कृमि मर जाते हैं। इसको अजीर के साथ खाने से सीने और फेफड़े में जमा हुआ कफ निकल जाता है। आमाशय में जो कफ इकट्ठा होने से जो हिचकी पैदा हो जाती है उसे यह ठीक कर देता है। आमाशय की खराबी से जो पागलपन, बेचैनी और मतलियां उत्पन्न होती हैं उनमें इसका रस

मुफीद है। १० तोला पोदीने के कुनकुने रस में ६ माशे शहद और ४॥ माशे नमक डालकर पिलाने से आमाशय के खराब दोष वमन की राह से बाहर निकल जाते हैं। ताजा पोदीने को शराब में पकाकर लेप करने से बदन के काले दाग़ दूर हो जाते हैं। इसके पत्तों की लुगदी को जखम पर बांधने से जखम के कीड़े मर जाते हैं। इसी लुगदी को चूहे के काटे हुये स्थान पर लगाने से चूहे का विष नष्ट हो जाता है।

मुजिर—पहाड़ी और जङ्गली पोदीना गुर्दे और आंतों को नुकसान पहुँचाता है। बस्तानी पोदीना गुर्दे को नुकसान पहुचाता है और काम शक्ति को घटाता है।

दर्पनाशक—इसके दर्प को नष्ट करने के लिये रब्वेसूस या मुलहटी का सत और कतीरा देना चाहिये।

पोदीने का तेल

गिलानी के मत से जगली पोदीने का तेल कफ की सूजन को बिखेरता है। हर एक अग के दर्द को दूर करता है। अर्धाङ्ग में मुफीद है। मासिक धर्म और पेशाब को साफ लाता है। इसका १४ माशा तेल पीने से पेट की वायु और मरोड़ मिट जाती है।

पोदीने के फूल

नाम—

हिन्दी—पोदीने का फूल। इङ्गलिश—Menthal। लेटिन—Mentha Aruensis (मेंथा-अरवेन्सिस)।

वर्णन—

पोदीने के फूल, पोदीने की एक जाति जिसको लेटिन में मेंथा अर्वेसिस कहते हैं, से निकाले जाते हैं। पोदीने की यह जाति पश्चिमी हिमालय और काश्मीर में ५ हजार से १० हजार फीट की ऊँचाई तक और चीन में पैदा होती है। इस जाति के पौधों से चीन और जापान के कारखानों में एक सत्व निकाला जाता है जो सफेद सफाईदार और खाने में ठंडा और तेज होता है। इसको हमारे यहां पोदीने के फूल और कहीं २ पीपर मेन्ट का सत्व भी कहते हैं।

गुणदोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानीमत से इस वनस्पति का पौधा तीक्ष्ण स्वाद और गधवाला, कफ निस्सारक ऋतुभावनियामक, गुर्दे को ताकत देने वाला, यकृत और तिल्ली की बीमारियों में लाभदायक और दमा तथा संधिवात में मुफीद होता है।

इसका सूखा पौधा ज्वर और तृषा को शांत करने वाला, अग्निवर्धक, मूत्रल और उत्तेजक होता है। इसके अन्दर आक्षेप निवारक और ऋतुभाव नियामक तत्व पाये जाते हैं। पीलिया और वमन को रोकने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

अनाम के अन्दर यह पौधा एक प्रभावशाली पसीना लाने वाली वस्तु समझी जाती है। इसका निर्यास ज्वर, बद हजमी मस्तक शूल को दूर करने के लिये दिया जाता है। इसके पत्तों का पुल्टिस जहरीले जानवरों के काटने पर लगाया जाता है। इसके पत्तों को पीस कर नमक के साथ नाखून पर के घाव पर लगाया जाता है।

पोदीने के फूल—इस वनस्पति से तयार किया हुआ सत्व कोष्ट वायु को नष्ट करने वाला और कफ नाशक होता है। ये धान्याहारी लोकों के अजीर्ण, मन्दाग्नि और उदर शूल में बहुत लाभ पहुंचाते हैं। किसी भी प्रकार की वमन को रोकने के लिये ये एक उत्तम वस्तु है। इसके लेते रहने से आतों के अन्दर अन्न सड़ता नहीं है। आतों के सब रोगों में पोदीने के फूल या इसका तेल सफलता पूर्वक दिया जाता है। मूत्रपिंड के शूल में गरम पानी के अन्दर थोड़े पोदीने के फूल मिला कर उस मिश्रण की गुदा द्वार में पिचकारी देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

त्वचा के अन्दर शून्यता पैदा करने के लिये इसके फूलों को त्वचा पर रगड़ते हैं इससे त्वचा में बिना किसी प्रकार की खराबी पैदा हुए काफी शून्यता पैदा हो जाती है। दाद या गुदा की खुजली के ऊपर इसके फूल को तेल में मिला कर लगाने से खुजली कम पड़ जाती है। चर्म रोगों में इनको लगाने से चर्म रोग पैदा करने वाले सब कृमि नष्ट हो जाते हैं। सड़े हुए दांत की सुराख में पोदीने के फूल को रखने से वहां के कृमि मर जाते हैं। कुक्षिशूल, गृध्रसी और वातनाड़ी के शूल में इसका मलहम मसलने से दर्द की कमी होती है। मस्तकशूल पर इसके फूलों को लगाने से दर्द बन्द होजाता है।

उपयोग—

उदर शूल—पोदीने का क्वाथ बना कर पिलाने से उदर शूल मिटता है।

अतिसार—इसके पत्तों को शहद के साथ चटाने से अतिसार मिटता है।

गठिया—गठिया की पीड़ा मिटाने के लिये पोदीने का क्वाथ पिलाना चाहिये।

सर्दी का ज्वर—सर्दी का ज्वर मिटाने के लिये पोदीने और सोंठ का क्वाथ पिलाना चाहिये।

वमन—वमन बंद करने वाली औषधि में पोदीने का अर्क मिलाने से उनका प्रभाव बढ़जाता है।

मूर्छा—पोदीने के ताजा पत्तों को मसल कर सुंघाने से मूर्छा मिटती है और उनके रसका लेप करने से मस्तक शूल मिटता है।

बच्चों का उदर शूल पोदीने के पत्तों का हिम बनाकर पिलाने से बच्चों के पेट की पीड़ा मिटती है।

हिचकी— पोदीने के पत्तों को बूरे के साथ चबाने से हिचकी मिटती है।

रुधिर का जमाव—पोदीने का अर्क पिलाने से रुधिर का जमाव बिखर जाता है।

बिच्छी का विष—पोदीने के पत्तों को खाने व लेप करने से बिच्छी का विष शांत होता है।

मात्रा—पाव रत्ती से १ रत्ती तक। पोदीने के स्वरस की मात्रा १ तोले से २ तोले तक।

—:×:—

पीपरमेंट

वर्णन—

हिन्दी—पीपरमेंट। अंग्रेजी—Peppermint। लेटिन—Mentha Piperita। (मेंथा-पिपरेटा)।

वर्णन—

यह एक बारह मासी जमीन पर फैलने वाला छोटा क्षुप होता है। इसके पत्ते २.५ से १० सेन्टीमीटर तक लम्बे होते हैं। इनमें बहुत तेज गन्ध रहती है। यह पोदीने के वर्ग की ही एक वनस्पति है। इसकी खेती भारतीय बगीचों में की जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

पीपरमेन्ट आंतों के रोग में उत्तम गुणकारी वस्तु है। उदर शूल और पेट फूलने की वजह से आने वाले चक्कर में यह बहुत शीघ्र काम करता है। यह वनस्पति दीपन, वातनाशक, सकोच विकास-प्रतिबन्धक और उत्तेजक होती है।

यूरोप में यह वनस्पति उत्तेजक, अग्नि वर्धक और शांतिदायक मानी जाती है। इसका उपयोग कमजोरी, वमन, जी मिचलाना और कोष्ट वायु को नष्ट करने के लिये तथा बच्चों की अग्नि को दीपन करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

इसके पत्तों को कुचल कर मस्तक शूल या दूसरे अङ्ग के दर्द पर लगाने से शाँति मिलती है। इसके पत्तों की चाय बनाकर लेने से पेट का दर्द शान्त होता है। कमजोरी मिटती है और मरोड़ी युक्त अतिसार मिटता है।

—:o:—

पोदीना पहाड़ी

नाम—

हिन्दी—पहाड़ी पोदीना। लेटिन—Mentha Viridis (मेंथाव्हेरिडिस)।

वर्णन—

यह भी पोदीने की एक जाति है जो भारतीय बगीचों में लगाई जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते बुखार और ब्रोंकाइटीज में दिये जाते हैं और इसका काढ़ा लोशन के रूप में मुख क्षत को दूर करने के काम में लिया जाता है। बच्चों की तकलीफों को दूर करने के लिये इसका मिश्री मिला हुआ निर्यास एक बहुत उत्तम औषधि है। इसका भफके से निकाला हुआ अर्क बदहजमी, हिचकी और कोष्ट वायु को दूर करने के लिये एक उपयोगी वस्तु है।

पोई

नाम—

संस्कृत—अपोदिका, कलम्बी, मधुशाका, मोहिनी पिच्छिला, पोतकी, पूतिका, उपोदकी, वल्लि-पोदकी, विशाला, विश्वतुलसी, वृश्चिक प्रिया। हिन्दी—पोई का साग, मयाल की भाजी, लाल बचलू बनपोई, पोई की बेल, सफेद बचला। बङ्गाल—पुइरचक, रक्तपोई। बम्बई—मयाकभाजी, वेलगोंद। दक्षिण—लाल बचला, सफेद बचला। गुजराती—पोथी, पोथीनी वेल, वालची भाजी। कोकण—वालची भाजी। मद्रास—पासालेइ। तामील—वस्लाकिराइ। उर्दू - पोइ। लेटिन—Basella Rubra (बेसेला रुब्रा)। B. Alba (बेसेला एल्बा)।

वर्णन—

पोई की बेलें घर और बाहर सब स्थानों में उत्पन्न होती है। इसके पत्ते गोल और बीज लाल होते हैं। इसकी चार जातियाँ होती हैं। (१) पोई, (२) लालपोई, (३) छोटीपोई और (४) बनपोई।

(१) पोई की जाति की बेल का डंठल सफेद और पत्ते हरे होते हैं। (२) दूसरी लाल पोई का डंठल लाल और पत्तों की रगें भी लाल होती हैं। इसकी बेलें पेड़ों, दीवारों और छतों पर कद्दू की बेलों की तरह फैलती हैं। इसके फल का रङ्ग काला और नीला होता है। (३) तीसरी जाति छोटी होती है। इसका पौधा १ बालिश्त से ज्यादा नहीं बढ़ता। यह चँवलाई की साग की तरह होती है और (४) चौथी जङ्गली पोई के पत्ते बिसखपरा के पत्तों से मिलते जुलते हैं मगर उनसे कुछ मोटे और नोकदार होते हैं।

इसका स्वाद खट्टा होता है। और जड़ सुपारी की तरह गोल होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से पोई का शाक शीतल, स्निग्ध, कफकारक, वात पित्त नाशक, कण्ठ के लिये हानिकारक, पिच्छिल, निद्राजनक, वीर्यवर्धक, रक्त पित्त नाशक, बलवर्धक, रुचिकारक, पथ्य, पौष्टिक और तृप्तिजनक होता है। यह पित्त, कुष्ठ, अतिसार, फोड़े फुन्सी और कफ को दूर करता है।

इसका स्वरस पित्त ज्वर की जलन को शांत करने के लिये शरीर पर मसला जाता है। इससे जलन और खुजली कम हो जाती है। रक्त और पित्त की उष्णता अधिक बढ़ने पर इसकी तरकारी खाने से शांति मिलती है। पालक के समान इसकी तरकारी भी बहुत हलकी होती है। सुजाक में इसके पत्तों का रस देने से लाभ होता है। इसके पत्तों का पुल्टिस बनाकर फोड़ों को पकाने के काम में लिया जाता है। इसके पत्ते शांतिदायक, मूत्रल और सुजाक तथा लिंगमणि के प्रदाह में उपयोगी है। इसके पत्तों का रस बदहज्मी की वजह से होने वाले दुलपित्ती (Urticaria) रोग की खुजली और गरमी को शांत करने के लिये लगाया जाता है।

यूनानीमत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में सर्द और तर होती है। कोई २ इसे खुश्क

बतलाते हैं। यह वात, पित्त और कफ में समानता पैदा करती है। इसके खाने से नींद आती है। यह कामोत्तेजक है। हलक और गले के अवयवों को मुलायम करती है। गर्मी के बुखार को रोकती है आग से जले हुए स्थान पर इसको वार २ लगाने से छाला नहीं पड़ता और शांति मिलती है। कामेंद्रिय पर इसका लेप करने से स्तम्भन होता है। पित्त और खून के उपद्रवों को नष्ट करती है। किसी को बिच्छू ने काटा हो तो इसके ३ पत्तों को पानी में पीसकर पिलाने से जहर दूर हो जाता है।

इसके पत्तों का रस पिलाने से पेशाब की जलन और दर्द मिट जाता है। इसके पत्तों को पीसकर पीने से गुर्दे और मसाने की पथरी गल जाती है। इसके पत्तों को नमक कांजी और मट्ठे के साथ पीस कर लेप करने से बदगांठ बिखर जाती हैं।

——:o:——

पोनकोरंती

नाम:—

मद्रास—पोनकोरती। सीलोन—पदन। लेटिन—Salacia Oblonga (सेलेशिया ऑबलोंगा)

वर्णन—

यह एक पराश्रयी झाड़ी होती है। इसके पत्ते कोमल, चिकने और ७.५ से लेकर १५ सेंटिमीटर तक लम्बे और ३.२ से लेकर ५ सेंटिमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल हरी झाई लिये हुए होते हैं। यह वनस्पति पश्चिमी घाट और सीलोन में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ की छाल सन्धिवात, सुजाक और चर्म रोगों के उपयोग में ली जाती है।

——:o:——

पोपली

नाम—

बेलगांव—पोपली। मराठी—पोपोली, लाटेस। नेपाल—झूरी। उत्तर पश्चिमी हिमालय—दालमी, दालिमा। कुमाऊ—बकरला, बकरचरा। कनाड़ी—बैंगनी, पुरीगदा। लेटिन—Osyris Arborea (ओसिरिस आरबोरिया)।

वर्णन—

यह एक हमेशा हरी रहने वाली बहु शाखी झाड़ी होती है। इसके पत्ते २.५ से लेकर ५ सेंटीमीटर तक लम्बे और १.३ से० २.५ सेंटिमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल बहुत छोटे और हरे रङ्ग के होते हैं। यह वनस्पति हिमालय, ब्रह्मा, मध्यप्रांत, पश्चिमी घाट और सीलोन में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों का निर्यास एक जोरदार वमन कारक वस्तु है।

——:०:——

पोपरंग

नाम—

पंजाब- पोपरंग। बम्बई—कोथुक। लेटिन—Glinus Lotoides (ग्लीनस लोटाइडस)

वर्णन—

करनल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति प्रवाहिका, अतिसार में उपयोगी समझी जाती है,

——:०:——

पोश्कर

नाम—

काश्मीर—पोष्कर, ईवर मूल। लेटिन—Senecio Jacquemontiamus (सेनिसिओ-जेक्वीमोंटिएनस)।

वर्णन—

यह वनस्पति काश्मीर के अन्दर हिमालय में ८ हजार फीट से १३ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुणदोष और प्रभाव—

काश्मीर में इसकी जड़ मज्जातंतुओं को बल देने वाली मानी जाती है।

——:०:——

पोशुर

नाम—

बंगाल—पोशुर, पुस्वर, धुन्दुल। बरमा—पिल्लेयंग, पिनलोन। तामील—कोहलंगा। लेटिन—Carapamoluccensis (कारपामोल्यूसेन्सिस)।

वर्णन—

यह एक वृक्ष होता है। इसकी ऊँचाई १२ मीटर लम्बी होती है। इसका पिंड ३० से ६० सेंटिमिटर गोलाई का होता है। इसकी छाल कई परतों वाली होती है। इस वृक्ष के डालियाँ बहुत होती हैं और इसके पत्ते १० से लेकर २५ सेंटिमिटर तक लम्बे होते हैं। ये गहरे हरे रंग के होते हैं। यह वनस्पति बरमा, बंगाल, अंडमान और आफ्रिका में पैदा होती है।

गुणदोष और प्रभाव—

इस वृक्ष की छाल और इसके दूसरे हिस्से बहुत कड़वे और संकोचक होते हैं। यह एक उत्तम

सकोचक पौष्टिक वस्तु है और इसीलिये मलाया के अन्दर हैजा, कॉलिक उदरशूल, अतिसार और दूसरी उदर सम्बन्धि शिकायतों में इसका प्रचुरता से उपयोग होता है। इसके छोटे २ बीजों से एक प्रकार का कड़वा, सकोचक तेल तय्यार किया जाता है जो कि फिलिपाइन में प्रवाहिका और रक्तातिसार में दिया जाता है। इसकी छाल ज्वर के अन्दर लाभदायक मानी जाती है। गोयना में भी इसकी छाल बहुत ही ज्वर नाशक मानी जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह कड़वी और संकोचक होती है और अतिसार में उपयोग में ली जाती है।

—=:+:=—

फरीद बूटी

नाम—

पजाब—फरीदबूटी, फरीदमूली, लाठिया, मुलेई। लेटिन— Hamiltonii Farsetia. (हेमिल्योनी फेरेस्टिया) F. Aegyptiaca, (फे-इजिप्टिका), F Jacquemontie (फे. जेक्वेमोंटी।

वर्णन—

यह एक कठोर जाति की झाड़ी होती है। इसके फूल बड़े और गुलाबी होते हैं। यह वनस्पति पश्चिमी राजपूताना, सिंध और उत्तरी हिन्दुस्तान में पैदा होती है।

गुणदोष और प्रभाव—

इस वनस्पति का स्वाद तीक्ष्ण और प्रसन्नता जनक होता है। इसको पीस कर एक ठंडी औषधि की तरह काम में लेते हैं। पंजाब के अन्दर संधिवात के लिये यह एक विशिष्ट औषधि समझी जाती है।

—:o:—

फलिद्दर

नाम—

हिन्दी—फलिद्दर। पजाब—कड़ियारी। लेटिन—Celastrus Spinosa (सिलेस्ट्रस स्पिनोसा)।

गुणदोष और प्रभाव—

इसके बीजों का धूम्रपान करने से दांतों के दर्द में लाभ होता है

—:o:—

फंजीयून

नाम—

उर्दू—फजीयून। हिन्दी—वरयान। पंजाब—अटपान। फारसी—फंजीयून। अरबी—अफंजीयून। इगलिश—Asses Foot। लेटिन— Tussilago Farfara (टुस्सिलेगोफरफरा)।

वर्णन—

यह एक सफेद रंग की बहुत रुएँदार वनस्पति होती है। इसकी जड़ का कद बारहमासी रहता है। यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से कुमाऊँ तक ६ हजार फीट से ११ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है। इसकी जड़ जमीन के भीतर फैलती है। इसके फूल पत्तों के पहिले निकलते हैं। ये फूल पीले जर्द और करीब १ इंच मोटे होते हैं। इसके पत्ते हृदयाकृति और कंगूरेदार होते हैं। इसकी छाल पर ऊन की तरह बहुत रुआ रहता है।

गुणदोष और प्रभाव—

यह वनस्पति वात को दूर करती है। इसका रुई के समान रुआँ रक्तस्राव को बन्द करने के लिये काम में लिया जाता है।

यूनानी मत—यह वनस्पति कड़वी और शांतिदायक होती है। इसकी जड़ और पत्ते पुरातन ब्रोंकाइटीज, दमा, छाती का दर्द और सूजन को दूर करने के काम में लिये जाते हैं। ये फोड़े को पकाने वाले और गर्भ को गिराने वाले समझे जाते हैं।

यूरोप में इसके पत्ते कभी २ जखम पर लगाने के लिये काम में लिये जाते हैं। इन पत्तों का तम्बाकू की तरह धूम्रपान करना दमे की एक घरेलू औषधि मानी जाती है।

प्लाइनी के मतानुसार इसके पत्ते धूम्रपान के काम में आते हैं और इसकी जड़ तथा इसके पत्ते हठीली खांसी और जुकाम के लिये एक उत्तम औषधि माने जाते हैं।

चायना में इसके फूल खांसी, दमा, क्षय और सन्यास रोग में कफ निस्सारक वस्तु की तरह उपयोग में लिये जाते हैं। फ्रांस और जर्मनी के फरमाकोपिया में यह औषधि सम्मत मानी गई है।

फजीयून फेफड़े के रोगों में बहुत उपयोग में ली जाती है। इसकी जड़ को शहद में मिला कर और पत्तों का क्वाथ बना कर दिया जाता है। इसके पत्तों को चिलम में रख कर धूम्रपान भी कराया जाता है। इससे कफ ढीला हो कर बाहर निकल आता है। कफ के अन्दर खून का आना भी बंद होजाता है। दमे में भी इसका धूम्रपान लाभदायक होता है। गंडमाला के व्रणों को इसके क्वाथ से धोने से और इसका क्वाथ पिलाने से बहुत लाभ होता है।

—:o:—

फरफियूम

नाम—

इण्डियन बाजार—फरफियूम। लेटिन—Euphorbia Resinifera (यूफोर्बिया रेजिनीफेरा)।

वर्णन—

यह थूहर के वर्ग की एक वनस्पति होती है।

गुणदोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति विरेचक, गर्भ घातक प्रप्रसी रोग में लाभदायक होती है।

—.o:—

फलदू

नाम—

रामनगर—फलदु। हलद्वानी—फलदु। बगाल—कुम। बरमा—टेनकाला। लेटिन—Nauclea Sessilifolia (नोक्लीया सेसिलीफोलीया)।

वर्णन—

यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है। इसके पत्ते चिकने और हरे होते हैं। यह वृक्ष चिटगांव और बरमा में विशेष पैदा होता है।

गुणदोष और प्रभाव—

इसकी छाल आंतों की शिकायत और ज्वर में उपयोग में ली जाती है। कम्बोडिया में इसकी लकडो पौष्टिक और शोधक मानी जाती है। इसका शीतनिर्यास या इसका काढ़ा प्रसूति के समय स्त्रियों को २ हफ्ते तक दिया जाता है। इसकी छाल सकोचक, पौष्टिक और रक्तश्रावरोधक मानी जाती है। यह अतिसार, यकृत की खराबी, मसोड़े की सूजन, गर्भाशय के परदे की सूजन और ऐसे क्षय जिसमें कफ के साथ खून जाता हो लाभदायक होती है।

—.—

फनसम्बा

नाम—

कच्छ—फनसबा, फनस अंसबे। लेटिन—Agaricus Ostreatus (एगेरिकस ओस्ट्रेटस)।

वर्णन—और गुण दोष—

इस वनस्पति को पानी के साथ पीस कर मसूड़ों पर लगाने से अत्यधिक लार का बहना बन्द होता है। बच्चों के मुखक्षत रोग में भी इसको लगाया जाता है। प्रसूति के बाद होने वाले रक्त-श्राव को रोकने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है। अतिसार और रक्तातिसार में भी इसको खिलाने से लाभ होता है।

—o:—

फांद

नाम—

संस्कृत—फंजिका, पद्मा, अजांघ्री, फंजी। हिन्दी—फञ्जी, फलमीलता। मराठी—फांद, फञ्जी।

गुजराती—फाग। लेटिन—Rivea Ornata (रविया ओर्नेटा)। अंग्रेजी—Good Night-Flowers Creeper।

वर्णन—

फांद की बेलें बहुत मज़बूत और लम्बी होती हैं। इसके पत्ते दूर २ लगे हुए चौड़े और गोलाई लिये हुए होते हैं। इसके फूल बड़े, सफेद, लम्बी नली वाले और सुगंधित होते हैं। ये रात को खिलते हैं। इनकी सुगन्ध बहुत दूर तक फैलती है। इसके फल गोल; समुद्र शोष के समान किन्तु कुछ छोटे होते हैं। हर एक फल में चार-२-बीज होते हैं।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत - आयुर्वेदिक मत से फाजी शीतल, वीर्यवर्धक, मलरोधक, कसैली, चरपरी, गरम, मधुर, बलकारक स्निग्ध, कफकारक, भारी तथा पित्त, वात, हृदयरोग, खांसी और आमदोष को दूर करती है।

इसके पत्तों का रस १ तोले की मात्रा में दूध और शक्कर के साथ गर्मी में पैदा हुए बवासीर के रोग में दिया जाता है।

इसकी जड़ों को पीस कर दूसरी औषधियों के साथ पौष्टिक पाकों में डाला जाता है। इसकी जड़ और डण्ठ को पानी में घिस कर बिच्छू इत्यादि जहरीले जानवर के डंक पर और सूजन पर लगाया जाता है। इसके पत्तों का शाक और भाजिये बनाये जाते हैं। इसके फूल की खुशबू से मग़ज तर हो जाता है।

इसकी जड़ों तथा डालियों को पानी के साथ घिस कर बिच्छू के डंक के ऊपर लगाने से बिच्छू का जहर उतर जाता है। इतना ही नहीं बल्कि इसकी जड़के टुकडे को मुट्ठी में दबा कर रहने से भी बिच्छू का जहर उतर जाता है। इसी कारण बिच्छू के विष में देशी इलाज के बतौर कई शहरों में इसकी जड़ के टुकड़े चार २ छे २ आने की कीमत पर बिकते हैं। बेचने वाले इस वनस्पति का नाम नहीं बतलाते हैं लेकिन असल में वे इसी वनस्पति के टुकडे होते हैं। कुछ दिन पुराने होने के पश्चात ये टुकडे गुणहीन हो जाते हैं।

(जंगलनी जडी बूँटी)

फालसा

नाम—

संस्कृत—अल्पष्ठी, गिरिपीलू, मृदुफला, नागदलोपं, नीलचर्म, नीलमण्डल, परुशक, परुष, परावत रोशन इत्यादि। हिंदी—फालसा, परुषा, धामिन, कारा इत्यादि। गुजराती—फालसा। मध्यप्रान्त—धामरू, धामन। बङ्गाल—फालसा, शुक्री। मराठी—फालसा, फालशी। अजमेर—

धामिनी। नेपाल—स्यालपोसरा। उर्दू—फालसा. सथाल—जंगोलट। लेटिन—Grewia Asiatica (ग्रेविया एसियाटिका)।

वर्णन -

यह एक छोटी जाति का झाड़ीनुमा वृक्ष होता है। उत्तरी हिन्दुस्तान के बगीचों में इसकी बहुत खेती की जाती है। इसके पत्ते गोल और कगूरेदार होते हैं। इसके पत्ते बेल के समान तीन २ मिले हुए होते हैं। इसके फूल बड़े २ होते है। इसका फल गोल, कच्ची हालत में हरा और पकने पर भूरा या बैंगनी होता है। यह करौंदे के समान होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से इसका कच्चा फल कड़वा, चरपरा और खट्टा होता है। यह वात, कफ और पित्त के दोष को दूर करता है। इसका पका हुआ फल मीठा, स्वादु, ठण्डा, पचने में हलका, पौष्टिक कामोद्दीपक, प्यास को बुझाने वाला और जलन को शांत करने वाला होता है। यह वात और पित्त के दोषों को दूर करता है। सूजन को बिखेरता है और हृदय तथा रक्त की खराबियां, ज्वर तथा क्षय में, लाभदायक है। इसका फल गले की तकलीफों में भी लाभदायक है। यह मरी हुई गर्भस्थ सन्तान को निकालने में मदद करता है।

इसकी छाल पित्त और वात के विकारों को शांत करती है। पेशाब की तकलीफों में लाभ दायक है और मूत्राशय की जलन को शांत करती है।

यूनानीमत—यूनानी मत से इसका फल खट्टा और मीठा होता है। यह छाती और हृदय को शक्ति देता है। प्यास और हिचकी को बन्द करता है। अतिसार और ज्वर में लाभ दायक है। यह कच्ची हालत में नहीं खाया जाता है। यह मूत्रकृच्छ्र और पथरी, पुरातन प्रमेह और सुजाक में लाभ दायक है।

इसकी छाल का शीत निर्यास एक शांतिदायक वस्तु के तौर पर उपयोग में लिया जाता है। इसके फल में संकोचक, ठण्डे और अग्निवर्धक तत्व रहते है।

इसके पत्ते देशी चिकित्सकों के द्वारा बदगांठ पर बांधने के काम में लिये जाते हैं।

उपयोग --

दाह—फालसे का शरबत पिलाने से शरीर की जलन या दाह मिटती है।

उदरशूल—अजवायन की फक्की देकर उसके ऊपर फालसे का गरम रस पिलाने से पेट की शूल मिटती है।

गठिया—इसकी जड़ की छाल का क्वाथ पिलाने से गठिया में लाभ होता है।

मूत्रकृच्छ्र—इसकी १४ माशे जड़ को जौ कुट कर पाव भर पानी में रात भर भिगोकर सवेरे उस पानी को मल छान कर पीने से ७ दिन में मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

मूढगर्भ--इसकी जड़ को पीस कर नाभि, वस्ति और भगपर लेप करने से मूढगर्भ निकल जाता है।

बादी की वमन--काले रङ्ग के मीठे फालसे के रस में गुलाब जल और दूनी मिश्री मिला कर शरबत बनाकर पीने से बादी की वमन, रुधिर विकार और पेट की निर्बलता मिटती है।

——:o:——

फ्रास्ट

नामः—

काश्मीर—फ्रास्ट। पञ्जाब—वियून्स, दो, फार्श, फ्रास्ट, फ्रमाली, मकल, पसूबट, प्रोस्ट, सुफेदा, सुफेदर। लेटिन—Populus Nigra (पोप्युलस नायग्रा)।

वर्णन—

यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है। इसके पत्ते ५ से लेकर १० सेन्टिमीटर तक लम्बे होते हैं। यह उत्तर पश्चिमी हिमालय और पञ्जाब में लगाया जाता है।

गुण दोष और प्रभावः—

इसकी छाल का तरल सत्व पञ्जाब में शोधक वस्तु की तरह उपयोग में लिया जाता है।

इसकी कोमल पत्तियों से एक लेप तैयार किया जाता है जो खूनी बवासीर पर लगाने के काम में लिया जाता है।

——:o:——

फिरोजा

नाम.—

संस्कृत--पेरोज, हरिताश्म, भस्मांग, हरित। हिन्दी--फिरोजा। बङ्गाल--उपरत्न विशेष। मराठी—पेरोज। गुजराती—फिरोजो। अङ्गरेजी--Tirkois। लटिन- Terchesious Turchin (टरचेसिअस टरचिन) फ़ारसी—फिरोजा।

वर्णनः—

यह एक जाति का उपरत्न होता है।

गुण दोष और प्रभावः—

आयुर्वेदिक मत - फिरोजा कसेला, मधुर और दीपन होता है। दूसरी औषधियों के साथ यह स्थावर और जङ्गम विष में भी लाभ पहुंचाता है। यह भूतादि दोषों से उत्पन्न हुये उदर शूल को नष्ट करता है।

फिटकरी

नाम—

संस्कृत—स्फटी, स्फटिका, श्वेता, शुभ्रा, रंगदा, दृढ रंगा, स्फटिकारी, सौराष्ट्री। हिन्दी—फिटकरी बंगाल—फिटकिरी। मराठी—फटकी। करनाटक—फटकी। फारसी—जाक सफेद। अंग्रेजी Alum। लेटिन—Argilla Vitriolutum (अर्जीला विट्रिओल्यूटम)।

वर्णन—

फिटकरी एक प्रकार का खनिज द्रव्य होता है। यह एक प्रकार की खनिज मिट्टी से जिसको रोल कहते हैं, तैयार की जाती है। इसके अन्दर सलफेट आफ एल्यूमिनियम, सलफेट आफ पोटासियम, आयर्न सल्फेट, इत्यादि तत्व रहते हैं।

इतिहास

फिटकिरी का ज्ञान भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। प्राचीन काल में यह पानी साफ करने के लिये, रंग को पक्का करने के लिये व कपड़ों को छापने के लिये काम में ली जाती थी। यूरोप के अन्दर पन्द्रहवी शताब्दी से फिटकिरी बनना आरम्भ हुआ। यूरोप से पहिले सीरिया और स्मर्ना में इसके कारखाने खुले। पाश्चात्य देशों में कारखाने खुलने के पहिले पंजाब में फिटकरी बहुत बड़े परिणाम में तैयार होती थी। सुश्रुत संहिता, अमर कोष और रत्नार्णव ग्रन्थों में फिटकरी का नाम सौराष्ट्री और सुराष्ट्रजा लिखा हुआ है। इससे मालूम होता है कि पंजाब के पहले यह वस्तु सौराष्ट्र अर्थात् कच्छ देश में ईसा की पांचवी शताब्दी में या उसके पहिले बनती थी।

फिटकरी की उत्पत्ति

फिटकिरी एक प्रकार की खनिज मिट्टी से तैयार होती है। इस मिट्टी को देशी भाषा में रोल और अंग्रेजी में एलम शेल (Alum shale) कहते हैं। इस मिट्टी में करीब ७॥ प्रतिशत गंधक, एल्यूमिना सिलिका और कोयले के समान द्रव्य रहते हैं। इस मिट्टी को भट्टी में जलाया जाता है। १ फुट का थर झाऊ की लकड़ी के टुकड़ों का बिछाया जाता है और उसके ऊपर एक फुट का थर रोल मिट्टी का बिछाया जाता है। इस प्रकार १५ थर झाऊ की लकडी के और १५ थर रोल मिट्टी के क्रमशः चुनकर ३० फुट ऊंचा टिब्बा बना दिया जाता है और उस टिब्बे के ऊपर पहले जली हुई और एक वर्ष तक उघाडी पड़ी हुई मिट्टी बिछा कर जमा दी जाती है जिससे कि उस थर के अन्दर का गंधक उड़ने न पावे। इस प्रकार एक भट्टी को तैयार होने में करीब ८ माह लगते हैं और उसके पश्चात् उस भट्टी में आग लगा दी जाती है। तैयार होने के पश्चात् फिटकरी के अन्दर रही हुई गन्दगी को निकालने के लिये उसको बड़े २ चार हौजों में क्रमशः एक के बाद एक में धोया जाता है। तब स्वच्छ रंग की फिटकरी तैयार होती है।

भारतवर्ष में पुराने तरीके से फिटकरी तैयार करने के कई कारखाने हैं। सबसे बड़ा कारखाना सिंधु नदी के पश्चिमी किनारे पर काला बाग नामक स्थान पर है। जहाँ आज भी २।३ हजार मन

फिटकरी पुराने तरीके से तैयार की जाती है, राजपूताने के अन्दर भी अलम शेल या फिटकरी की मिट्टी बहुत पाई जाती है। जैपुर राज्य में खेतड़ी और सिंघाणा नामक स्थानों पर तांबे की खदाने हैं। यहां पर फिटकरी, हीराकसी और नीला थूथा तैयार करने के कई छोटे २ कारखाने हैं इसके अतिरिक्त बम्बई, मद्रास और पंजाब में फिटकरी तैयार की जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से फिटकरी स्वाद में तूरी, तीखी, स्निग्ध, कांतिवर्धक, पारे को बांधने वाली तथा कोढ, व्रण, प्रदर, विष विकार, मूत्र कृच्छ, उल्टी, शोष, त्रिदोष और प्रमेह को दूर करने वाली होती है।

फिटकरी और सुजाक का रोग

सुजाक के रोग के ऊपर फिटकरी एक बहुत उत्तम वस्तु है मॉरिस हेनरी कॉलिस नामक एक डाक्टर का कथन है कि:—" One of the most reliable astringents for the cure of Gonorrhoea is Alum. Not Heroic solution of Nitrate of silver etc Which are emminentally uncertainand dangerous in their action But by weak and frequently repiated solution ot Alum "

अर्थात् सुजाक की बीमारी को अच्छी करने के लिये फिटकिरी एक बहुत विश्वसनीय और सकोचक औषधि है Nitrate of Silver का सोल्यूशन संदिग्ध और भयकर परिणामों वाला है। इसलिये सुजाक की चिकित्सा में नाइट्रेट आफ सिल्वर का प्रयोग बुद्धिमानी पूर्ण नहीं कहा जा सकता। लेकिन फिटकरी के कमजोर सोल्यूशन का बारबार उपयोग इसमें अच्छा लाभ पहुँचाता है।

अगर सुजाक का रोग नया हो और उसमें अधिक परिमाण में गाढा और चिकना पीव आता हो, मूत्र नाली में असह्य जलन और सूजन हो तो फिटकरी का नरम रूप में बनाया हुआ सोल्यूशन दिनमें २।३ बार उपयोग में लेना चाहिये। अगर रोग पुराना हो तो इस सोल्यूशन को कुछ तेज बनाकर हफ्ते में १ या २ बार उपयोग में लेना चाहिये।

नये रोग में रोगी की मूत्रेंद्रिय पर १ बड़ा लोटा भर ठंडे पानी की धार लगाना चाहिये। फिर १ औंस पानी में १ गेहूं के बराबर फिटकरी डालकर उस पानी को सिरंज में भरकर उसकी मूत्रेंद्रिय में पिचकारी मारना चाहिये। इस प्रकार पिचकारी मारने का काम पहले दिन आधे २ घन्टे के अन्तर से करते रहना चाहिये और हरबार पिचकारी लगाने के पहले १ लोटा पानी उसकी मूत्रेंद्रिय पर डालते रहना चाहिये। रात्रि के समय में भी निद्रा के थोडे टाइम को छोड़कर बाकी समय में इस कार्य को चालू रखना चाहिये। इसके साथ जौखार अथवा गोखरू या ककडी के बीज इत्यादि कोई भी मूत्रल औषधि दूध और पानी की लस्सी के साथ पेट में पिलाना चाहिये।

दूसरे दिन आधे घन्टे के बजाय एक एक घन्टे पर पिचकारी लगाना चाहिये। इस प्रकार बराबर ४८ घन्टे तक इस प्रयोग को चलाने से पीव का आना, जलन, और सूजन शांत हो जाती है। फिर भी सुजाक के जहर को बिलकुल नष्ट करने के लिये एक दो सप्ताह तक इस प्रयोग को चालू रखना चाहिये। पर ४८ घन्टे का प्रयोग पूरा होने के पश्चात् बार बार पिचकारी देने की आवश्यकता नहीं रहती। उस समय ८ औंस पानी में ३० गेहू के बराबर फिटकरी डालकर दिन में तीन बार उसकी पिचकारी लेना चाहिये। ४८ घन्टे के प्रयोग से रोग की शांति देखकर सुजाक का आराम होगया, ऐसा समझकर चिकित्सा बन्द कर देने से सुजाक का शेष रहा हुआ विष कुछ दिनों के पश्चात फिर से आक्रमण कर देता है और फिर वह पहले की तरह जल्दी आराम नहीं होता।

मुफर्रिदात अकबरी में लिखा है कि सुजाक का रोग अगर किसी दवा से अच्छा न होता हो तो १ माशा फुलाई हुई फिटकरी और एक माशा मिश्री मिलाकर सुबह पेशाब करने के पहिले खाकर ऊपर से दूध पानी की लस्सी पीना चाहिये। इस प्रकार ७ दिन तक इस औषधि को लेने से और इसके साथ फिटकिरी के पानी की मूत्र नाली में पिचकारी लेने से सुजाक में आराम होता है।

एक और यूनानी हकीम के मतानुसार रसोत १ तोला, सफेद कत्था आधा तोला, और अफीम ४ रत्ती इन सब को आधा सेर पानी में ६ घन्टे तक भिगोकर रखना चाहिये। फिर उस पानी को छान कर उसमें कपूर, रसकपूर, फुलाई हुई फिटकरी और फुलाये हुवे नीले थूथे का चूर्ण चार २ रत्ती डाल कर मिला लेना चाहिये। इस पानी की पिचकारी रोगी की मूत्रेंद्रिय में दिन में ३ बार लगाने से एक ही दिन में सूजन, जलन और पीव का आना बन्द होजाता है। उसके पश्चात ११ दिन तक प्रति दिन एक या दो बार इस पिचकारी का उपयोग करते रहना चाहिये और साथ में बबूल की अन्तर छाल के काढे से तैयार किया हुआ घन क्वाथ ३ भाग, कबाब चीनी, २ भाग, बंग भस्म १ भाग, फुलाई हुई फिटकरी, १ भाग इलायची के बीज १ भाग और शक्कर ८ भाग इन सब औषधियों का कपड़छन चूर्ण करके इस चूर्ण में से ६ माशा चूर्ण १० तोले गाय के दूध के साथ पीना चाहिये।

फिटकरी और विषविकार

फिटकरी में विषनाशक गुण रहने की वजह से कई प्रकार के विषों पर यह अच्छा काम करती है। तीन माशे फिटकरी को २० तोले घी के साथ मिलाकर आधे २ घन्टे के अन्तर से ५। १० बार पिलाने से—सर्प विष के ऐसे रोगी जिन्हें सांप काटे अधिक देर न हुई हो बच जाते हैं।

बिच्छू के विष पर १ तोला फिटकरी को ५ तोला पानी के साथ औटाकर उस पानी को बार बार बिच्छू के डंक पर लगाने से और आँख में आंजने से बिच्छू का विष उतर जाता है।

अगर बिच्छू का विष दूसरी किसी औषधि से आराम न होता हो तो फिटकरी के एक टुकड़े को चिमटे में पकड़ कर आग के अन्दर प्रवेश कराना चाहिये। जब फिटकरी गलने लगे तब उसको ज्यों

की त्यों लेकर डंक पर चिपका देना चाहिये। इससे बहुत भयंकर वेदना होती है मगर बिच्छू का विष जल जाता है। इसी प्रयोग से बर्र, ततैया, मधु मक्खी, इत्यादि के विष भी नष्ट हो जाते हैं।

प्लेग और फिटकरी

लाल रंग की फिटकरी ५ तोला लेकर घी गुवार के रसमें खरल करके जब वह रस सूख जाय तो फिर एक दिन तक उसे भांगरे के रस में खरल करके फिर उसकी टिकड़ियां बनाकर धूप में सुखा लेना चाहिये। जब वह सूख जाय तब उन टिकड़ियों को सराव सम्पुट में बन्द करके ५ सेर उपले कण्डों की आंच में फूंक देना चाहिये। जब ठण्डा होजाय तब उस संपुट को खोलकर उसमें से फिटकरी की भस्म को निकाल लेना चाहिये।

प्लेग के रोग में इस भस्म को ढाई तीन रत्ती की मात्रा में खिलाना चाहिये और ऊपर किसी प्रकार का खाना और पानी नहीं देना चाहिये। अगर कभी बहुत जरूरत पड़ जाय तो दवा लेने के १ घण्टे के पश्चात् थोड़ा बहुत देना चाहिये। अथवा भोजन लेने के लिये ४ घंटे तक दवा बन्द कर देना चाहिये। रात में भी यह औषधि चालू रखना चाहिये। इसके साथ ही प्लेग की गठान पर असगन्ध की जड़ को पानी के साथ घिस २ कर दिन में २। ३ बार लेप करना चाहिये। पथ्य में दूध और भात लेना चाहिये। इस प्रयोग से प्लेग के अनेक रोगी बच जाते हैं।

इसी भस्म को १ माशे की मात्रा में ३ माशे पिसी हुई मिश्री के साथ ३ दिन तक लेने से इकांतरा, तिजारी, चौथिया और प्रति दिन आने वाला ज्वर नष्ट हो जाता है।

फिटकरी और नेत्र रोग

नेत्र रोगों के अन्दर भी फिटकरी एक अकसीर चीज है। इसके लोशन को आंख में डालते रहने से आंख की सुर्खी और आंख में कीचड़ का आना बन्द हो जाता है।

आंख के अन्दर एक प्रकार का बाल उगता है जिसको आंख का परवाल कहते हैं। इस रोग में ४ तोला फिटकरी को लेकर किसी मिट्टी के बरतन में रख कर आंच के ऊपर चढ़ाना चाहिये। जब वह पिघल कर पानी के समान होजाय, तब उस में उत्तम जाति का सोनागेरू १ तोला डालकर लकड़ी के डंडे से हिला कर एक जीव कर लेना चाहिये। इसके पश्चात उसको नीचे उतार कर खरल में घोट कर खादी के कपड़े में छान लेना चाहिये। फिर उसको पक्के काले पत्थर की खरल में १ प्रहर तक घोट कर १ शीशी में भर लेना चाहिये।

जंगलनी जड़ी बूटी के लेखक लिखते कि हैं आंख की पलकों के अन्दर जो बाल उगे हों उनको चिमटे से सावधानी पूर्वक निकाल कर फिर १ महिने तक सबेरे शाम इस औषधि का अँजन करने से

आंख के अन्दर पैदा होने वाले बालों के सबब के सब विकार नष्ट हो जाते हैं और आंख साफ हो जाती है और फिर से आंख में बाल पैदा होने का डर नहीं रहता। आँख के परवाल के लिये यह एक चमत्कारिक औषधि है और इसका प्रयोग कभी व्यर्थ नहीं जाता।

आंख की कील को मिटाने के लिये भी फिटकरी में अच्छा गुण रहता है। फुलाई हुई फिटकरी २ तोला, फुलाया हुआ नीला थोथा २ तोला, कलमीशोरा २ तोला और कपूर ६ माशा लेकर, सबको अलग २ खरल करके कपडे में छान लेना चाहिये। फिर गाय का स्वच्छ २४ तो० घी लेकर उसको गरम करके पक्के पत्थर की खरल में डाल कर उसमें उपरोक्त चूर्ण और अरंडी के तेल के दिये से पाड़ा हुआ ८ तोला काजल डाल कर खूब खरल करना चाहिये। जिससे वह आँख में गड़ने न पावे। फिर उसको छोटी २ डिब्बियों में भर लेना चाहिये।

इस काजल को १ दिन बीच में दे दे कर आंख में आंजते रहने से आंख में खील नहीं होने पाती और अगर होगई हो तो उसका पानी सब झर झर कर निकल जाता है और दृष्टि का तेज बढता है।

फिटकरी और व्रण

फिटकरी में व्रण नाशक गुण होने से शरीर के ऊपर पड़े हुए घाव, व्रण, फोड़े इत्यादि को भरने के लिये कितने ही प्रकार के मरहमों में इसका उपयोग किया जाता है। छुरी, तलवार या कुल्हाड़ी की वजह से अगर कोई घाव पड़ गया हो और उसमें से खून निकलता हो तो फिटकरी को बारीक पीस कर घी के साथ मिला कर उसको घाव में भर कर ऊपर रुई का फेल रख कर पट्टी चढ़ा देने से खून का बहना तुरन्त बन्द हो जाता है और घाव बिना पके हुए भर जाता है। क्योंकि फिटकरी में ग्राही, विषघ्न और चमड़े को सकुचित करने वाला गुण होने से बाहर के जन्तु घाव में प्रविष्ट नहीं हो सकते और चमड़ी की किनारें एक दूसरे के साथ जल्दी मिल जाती हैं।

यूनानी मत—यूनानीमत से फिटकरी पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क होती है। किसी २ के मत से दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यूनानी हकीमों के मतानुसार फिटकरी को खाने के काम में बहुत कम लेना चाहिये जब तक दूसरी दवाओं से काम निकल जाय तब तक इसे नहीं खाना चाहिये।

यह आंख के दाने, आंख के जाले और आंख के दुखने पर लाभदायक है। जब आंख दुखती हो और आंख से पीब आती हो तब फिटकरी के पानी से आंख को धोने से लाभ होता है।

१ माशे फिटकरी को तिगुनी शक्कर के साथ मिला कर पाव भर दूध के साथ लेने से सुजाक में और गुर्दे तथा मसाने की पथरी में लाभ होता है।

किसी भी अंग से खून बहता हो अथवा जख्म खराब होगया हो तो इसके चूर्ण को भुरभुराने से वह ठीक होजाता है। रसकपूर या पारा के सेवन से अथवा और किसी वजह से अगर मुँह में छाले

होगये हों और मसूढ़ों में जखम हो गये हो तो फिटकरी के पानी से कुल्ले कराने से बड़ा लाभ होता है। गर्भाशय से अगर खून बहता हो तो गदना के पानी में फिटकरी को घोल कर उसमें कपड़ा तर करके गर्भाशय में रखने से खून आना बन्द हो जाता है। गर्भाशय के बाहर निकल जाने पर भी यह प्रयोग लाभदायक है। फिटकरी को शहद में मिला कर उसकी बत्ती कान में रखने से कान का जखम आराम होता है और कान का मैल भी निकल जाता है।

हकीम जालीनूस के मतानुसार फिटकरी बहुत काबिज होती है। इसको गन्दले पानी में डालने से पानी साफ हो जाता है। लोहे के जङ्ग को भी यह दूर कर देती है। श्वेत कुष्ट पर इसका लगाना मुफीद है। इसको सिरके में मिलाकर जले हुये स्थान पर लगाने से लाभ होता है। इसको गरम जल में मिला कर उससे खुजली वाले को अगर नहलाया जाय तो खुजली में लाभ पहुँचता है। इसको जैतून के तेल में पका कर बहरे आदमी के कान में टपकाने से बहिरेपन में लाभ होता है। इसको पीस कर तम्बाकू की तरह सूंघने से नकसीर बन्द होता है। इसको काली मिरच के साथ पीसकर दांतों पर मलने से दांतों का दरद जाता रहता है और मसूड़े मजबूत हो जाते हैं। इसको थोड़ी मात्रा में लेने से मतली और वमन रुक जाती है और आमाशय तथा यकृत में ताकत आती है। यह मुनासिब दवाइयों के साथ जलोदर में फायदा पहुंचाती है। इसका लेप करने से अण्ड कोष का दर्द जाता रहता है। ऊनी कपड़े को फिटकरी में तर करके स्त्री प्रसंग के पहिले गर्भाशय में रखने से गर्भ नहीं रहता। इसको रत्ती डेढ़ रत्ती की मात्रा में खाने से पुराना बुखार जाता रहता है। खास कर बच्चों के बुखार में यह ज्यादा मुफीद है। सोंठ और फिटकरी को आधी २ रत्ती की मात्रा में पताशे में रख कर खिलाने से बुखार उड जाता है।

शेख का कहना है कि फिटकरी को खाना बहुत बुरा है। यहां तक कि अगर इसको ७ माशे की मात्रा में खालिया जाय तो शरीर में खुश्की बढ़कर खांसी होती है और कभी २ फेफड़े से खून आकर आदमी मर जाता है।

मुजर्रबात अकबरी में लिखा है कि पाव भर फिटकरी को पाव भर सफेद कागज़ में लपेट कर उपले कण्डों की आग में रख दिया जाय। जब इसका फूला होजाय तब इसको पीसकर पाव भर गाय के घी में मिला लिया जाय और ऐसे बरतन में जिसमें २।३ दिन तक दही जमाया गया हो, डाल कर नीम के डण्डे से खूब घोटा जाय यहां तक कि वह लाल हो जाय। बवासीर के रोगी पहिले दो दिन सोया के बीज को पानी में पकाकर बवासीर पर सुबह से शाम तक सेंक लें। उसके पश्चात् फिटकरी के इस मलहम में रुई को गीली करके बवासीर पर बांध दिया करें। सुबह की पट्टी को शाम को खोल दें और शाम की पट्टी को सुबह खोल दें ऐसा करने से ७ दिन में बवासीर के मस्से बैठ जाते हैं।

उपयोगः—

नकसीर—फिटकरी को फुलाकर सुंघाने से नकसीर बन्द हो जाती है।

दन्तपीड़ा—फिटकरी का मञ्जन करने से सड़े हुवे दांतों की पीड़ा मिटती है।

बिच्छू का विष—फुलाई हुई फिटकरी का लेप करने से बिच्छू का विष उतरता है।

छाती से रुधिर का आना—एक माशा फुलाई हुई फिटकरी में ३ माशे बूरा मिलाकर उसकी ४ पुड़ियां बनालें। एक २ पुड़ी को दो २ घण्टे के अन्तर से खाने से छाती में से रुधिर आना बन्द होजाता है।

आंख की पीड़ा—नीबू के रस के साथ फुलाई हुई फिटकरी का लेप करने से आंख की पीड़ा मिटती है। २ रत्ती फिटकरी को २॥ तोले गुलाब जल में पीस कर उसकी कुछ बून्दें आँख में डालने से आँख की ललाई और गीढ़ों का आना मिटता है।

हूपिङ्ग कफ—फुलाई हुई फिटकरी को ५ से १० रत्ती तक की मात्रा में दिन में तीन बार देने से कुकर खाँसी या हूपिंग कफ मिटता है।

अतिसार—२॥ रत्ती फिटकरी को थोड़ी सी अफीम के साथ देने से पुराना अतिसार मिटता है।

मूत्रकृच्छ्र—थोड़े से दही में १ माशा फिटकरी डाल कर उसको एक ही ग्रास में निगल जाय। उसके पश्चात् ऊपर से मीठा दही और खाले पेट में गेहू की बिना नमक की रोटी और दाल में सेंधा नमक और काली मिरच डाल कर खावें। इस प्रयोग से कुछ दिनों में मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

फुलाई हुई फिटकरी की १ माशे तक की फक्की लेकर ऊपर से दूध पीने से मूत्र कृच्छ्र मिटता है।

मुख पाक—मुख पाक या मुँह के छालों को मिटाने के लिये फिटकरी और चमेली के पत्तों को पानी में औटा कर कुल्ले करना चाहिये।

सुजाक—भुनी हुई फिटकरी १ तोला, सोना गेरू एक तोला और मिश्री ४ तोला। इन सब चीजों को पीस कर इनके चूर्ण को ७ माशा की मात्रा में गाय के दूध साथ लेने से सुजाक मिटता है।

सर्प विष—६।७ माशे फिटकरी को पानी में पीस कर पिलाने से सर्प के विष में लाभ होता है।

खाँसी और दमा—थूहर के डंडे को पोला करके उसमें फिटकरी भर उस पर कपड़ मिट्टी करके कण्डों की आंच में जला दें ठँडा होने पर उसमें से फिटकरी निकाल लें। इसमें से २ रत्ती की मात्रा पान में रख कर देने से श्वास और खांसी मिटती है।

मुह के छाले—फिटकरी को फुला कर उसमें समान भाग माजूफल का चूर्ण मिला कर भुर भुराने से मुँह के छाले मिटते हैं।

दंत रोग—१ तोला फिटकरी और ६ माशे मोचरस को आधा सेर पानी में औटा कर आधा पानी रहने पर कुल्ले करने से दांतों की पीड़ा मिटती है और दांत मज़बूत होते हैं।

जख़म—जखम के मुर्दार मांस पर फुलाई हुई फिटकरी को भुर भुराने से घाव भर जाता है।

कर्ण पीड़ा—भुनी हुई फिटकरी और बीजा बोल बराबर लेकर शहद के साथ बत्ती बनाकर कान में रखने से कर्ण पीड़ा मिटती है।

कफ के रोग—भुनी हुई फिटकरी में बराबर मिश्री का चूर्ण मिला कर १ माशे की मात्रा में लेने से कफ और दमें में लाभ होता है।

रुधिर का जमाव—१ तोला फिटकरी को ४ तोला घी में भून ले जब वह घी के अन्दर नीचे बैठ जाय तब ऊपर के घी को निकाल कर उस घी में मैदा भून कर शक्कर के साथ उसका हलवा बना कर उस हलवे में उस फिटकरी को मिलाकर उसके तीन हिस्से करके तीन दिन तक खिलाने से चोट और शरीर के रुधिर का जमाव बिखर जाता है।

प्रदर—फिटकरी के लोशन की योनि में पिचकारी देने से प्रदर और योनि का ढीलापन मिटता है।

बनावटें—

अनेक रोग नाशक गुटिका—जगलनी जड़ी बूंटी के लेखक वैद्य शास्त्री शामलदास गोर ने अपनी पुस्तक में सुप्रसिद्ध रसायनाचार्य नागार्जुन द्वारा आविष्कृत १ सर्व रोग नाशक गुटिका को प्रकाशित किया है। उनका कथन है कि यह योग अभी तक गुप्त रूप से साधु सन्तों में ही प्रचलित था। मगर यह अत्यन्त चमत्कारिक होने से इसको हमने ब्रह्मानद सरस्वती नामक एक सत से प्राप्त किया है। यह योग इस प्रकार है।

फुलाई हुई फिटकरी, उत्तम सूर्यतापी शिला जीत, सोनामक्खी की भस्म, अभ्रक भस्म, नाग केशर, कबाब चीनी, नीम गिलोय, बंग भस्म, गोखरू, हरड़, बहेड़ा, आंवला, धावड़ी के फूल, पड़वास, लौध, कूड़े की छाल, बाय बिडंग, मुलेठी और उत्तम गूगल इन सब चीजों को समान भाग लेकर कपड़ छन चूर्ण करके उस चूर्ण को बबूल के पत्तों के रस, छिरहटा के रस, कपास के फूल और पत्तों के रस, कसौंदी के रस, ककरौंदे के रस, ढाक के फूलों का रस, डाब की जड़ों का रस या काढ़ा, रक्तरोहिड़ा का रस, काली पहाड़ की जड़ का काढ़ा, कच्चे गूलर का रस, तरवड़ के फूलों का रस, अरनी का रस, अडूसे का रस, सोना गेरू का नितारा हुआ पानी, मेंहदी का रस, और घुटी हुई भांग को छान कर निकाला हुआ पानी। इन सब चीजों की सात २ भावनायें देना चाहिये। हर एक भावना में चूर्ण को अच्छी तरह रस से तर करके खरल में घोटना चाहिये। जब घोटते २ रस का भाग सूख जाय तब १ भावना पूरी हुई समझना चाहिये। और उसके बाद दूसरी भावना शुरू करना चाहिये। इस प्रकार जब सब भावनाएँ लग जायँ तब आखरी दिन उसको २४ घंटे तक त्रिफला के काढ़े में घोटकर सुपारी के बराबर गोलियां बना कर सुखा लेना चाहिये।

इन गोलियों को नीचे लिखे रोगों में नीचे लिखे अनुपानों के साथ देने से बड़ा लाभ होता है।

प्रमेह—२ तोला नीम गिलोय का रस और ३ माशे शहद के साथ इस गोली को खाकर ऊपर से आंवले का रस पीने से बीसों प्रकार के प्रमेह दूर होते हैं। मधु प्रमेह में इसको जामुन की गुठली के तीन माशे चूर्ण के साथ लेना चाहिये। सुजाक को दूर करने के लिये इसे कबाब चीनी के काढ़े के साथ लेना चाहिये।

रक्त पित्त रक्त पित्त को दूर करने के लिये इसमें से १ गोली खाकर उसके ऊपर अडूसे के रस में ३ माशे हलदी का चूर्ण मिला कर पीने से नाक, मुँह, कान, गुदा, लिंग या योनि के द्वारा पड़ता हुआ खून बंद हो जाता है।

बवासीर– गोरख मुंडी के २ तोले रस में २१ काली मिरच का चूर्ण मिला कर उसके साथ इस गोली को खाने से सब प्रकार के बवासीर नष्ट होते हैं।

अतिसार—अतिसार को दूर करने के लिये सवेरे, दोपहर और शाम को एक २ गोली खाकर ऊपर से बबूल के कोमल पत्तों का रस १ औंस, थोड़ी सी शक्कर मिलाकर पीने से सब प्रकार के अतिसार दूर होते हैं।

उपदंश—प्रतिदिन सवेरे शाम चमेली के पत्तों का रस २ तोला लेकर उसमें १ तोला गाय का घी, ३ रत्ती राल और १ गोली मिला कर पीने से और ऊपर से अनन्तमूल का काढ़ा लेने से उपदंश के सब विकार दूर होते हैं। इसी प्रकार विष विकार, खांसी, विशूचिका, वातरोग, उन्माद, अपस्मार, प्लीहा और यकृत रोग, अजीर्ण और मन्दाग्नि, ज्वर, प्रदर और रक्तप्रदर तथा नपुंसकता, इत्यादि अनेक रोगों पर भिन्न २ अनुपानों के साथ इन गोलियों को देने से बड़ा लाभ होता है।

श्वास नाशक योग—लालफिटकरी और सेंधा नमक इन दोनों को पांच तोला लेकर बारीक चूर्ण करके १ मिट्टी की हांडी में ३ सेर आंकड़े का दूध डालकर उसमें इस चूर्ण को डाल कर अच्छी तरह से मिला देना चाहिये। फिर उस हांडी पर ढकनी लगा कर उसकी सधियों को कपड़ मिट्टी से बन्द करके गज पुट में रखकर फूँक देना चाहिये। जब अग्नि शांत होजाय तब उसको निकाल कर हांडी की सधियों को खोल कर उसके भीतर की औषधि को खरल में घोट कर रखलेना चाहिये।

शरद पूर्णिमा की रात्रि को दमे के रोगी को जितनी खीर वह खा सके उतनी दूध और चांवल की खीर तैयार करवा कर उस में बारह प्रहर तक घुटी हुई लींडी पीपर का चूर्ण १॥ माशे मिला कर उस खीर को ३ घंटे तक चन्द्रमा की चांदनी में पड़े रहने देना चाहिये। फिर उपरोक्त दवा में से २ रत्ती दवा खिला कर उसके ऊपर यह खीर रोगी को खिला देना चाहिये। रोगी को रात में नहीं सोने देना चाहिये और सवेरे जितनी दूर उससे घूमाजाय उतना घुमाना चाहिये तथा ३ महिने तक तेल, खटाई, ठंडी तथा बादी की चीजें तथा स्त्री प्रसग से सख्त परहेज रखना चाहिये।

ऐसा कहा जाता है कि इस प्रकार आश्विन, कार्तिक और मगसर की तीन पूर्णिमाओं पर यह प्रयोग करलेने से दमा हमेशा के लिये नष्ट हो जाता है। (जंगली जड़ी बूँटी)

सुजाक नाशक गोलियां—उत्तम स्याह जीरे का चूर्ण १ तोला, छोटी इलायची के बीजों का चूर्ण १ तोला, रेवद चीनी का चूर्ण १ तोला, जौखार ६ माशे, कबाबचीनी का चूर्ण १ तोला, फुलाई हुई फिटकरी १ तोला, बिरोजे का सत्व १ तोला, हजरतबेर १ तोला और गिलोय का सत्व १ तोला। इन

सब चीजों को पीस कर इनमें चन्दन का १ तोला उत्तम तेल डाल देना चाहिये। फिर इन सब चीजों को पानी के साथ खरल करके तीन २ माशे की गोलियां बना लेना चाहिये।

इनमें से प्रतिदिन सबेरे शाम एक २ गोली खाकर उसके ऊपर शक्कर डाला हुआ ठंडा पानी अथवा खजूर का रस पिलाने से और पथ्य में केवल जौ की रोटी, घी और शक्कर खिलाने से ७ दिन में नया सुजाक और उससे होने वाली भयंकर जलन सूजन और पीड़ा नष्ट होजाती है।

मुजिर—यह फेंफड़े और आंतों को नुकसान पहुँचाती है।

दर्पनाशक—घी, दूध और चिकनी चीजे तथा लूनिया के पत्तों का शीतनिर्यास इसके दर्प को नष्ट करता है।

प्रतिनिधि—नौसादर अथवा आधे वजन में काला निमक।

मात्रा—साधारण मात्रा ५ रत्ती से १० रत्ती तक और विष के उपचार में ३ माशे से ६ माशे तक।

—=+=—

फूकला

नाम—

हिन्दी—यूनानी—फूकला।

वर्णन—

यह एक वनस्पति होती है। इसकी डालियां पोली और सफेद होती हैं। इसके कच्चे पत्तों का शाग बनाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह सर्द और खुश्क होती है। यह बवासीर में लाभ पहुँचाती है। पेट के कीड़ों को नष्ट करती है पाचन शक्ति को नुकसान पहुंचाती है। इसके दर्प नाशक शिकंजबीन, सोंफ और गुलकन्द है।

——:o:——

फूट

नाम—

संस्कृत—एर्वारु, गोरक्षकर्कटी, चिरभिटा, चित्रफला, श्वेतुदर्पा, पांडुफला, रोचनफला। हिन्दी—फूट, टूटी। बंगाल—फूटी। फारसी—खेयारेदस्ती। लेटिन—Cucumis Momordica (कुकुमिस मोमोरडिका)।

वर्णनः—

यह एक प्रकार की खरबूजे की जाति की बेल होती है जो बरसात के दिनों में पैदा होती है।

इसका फल खरबूजे की तरह ही होता है मगर इसकी छाल ऊपर से चिकनी होती है। इसके फल का स्वाद खरबूजे की अपेक्षा कम मीठा और फुस्सा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—इसके गुण त्रिदोष और मन्दाग्नि पैदा करते हैं। इसका कच्चा फल मीठा, गुरु, कठिनाई से हजम होने वाला और आँतों के लिये संकोचक होता है। यह कफ और पित्त के प्रकोप को नष्ट करता है और वात को पैदा करता है। इसका पका हुआ फल गरम होता है और पित्त को पैदा करता है।

इसकी छोटी जाति को कचरी कहते हैं। ये कचरियां मारवाड़ में बहुत पैदा होती हैं।

कचरी मीठी, खट्टी, रूखी, पित्त कफ नाशक, ग्राही, और मल-रोधक होती है। ये पित्त, मूत्र-कृच्छ्र, पथरी, दाह, प्रमेह, वात और शोथ को नष्ट करती है। कच्ची कचरी वात को कुपित करने वाली और कफ पित्त को नष्ट करने वाली होती है। पक्की कचरी पित्तकारक और गरम होती है।।

इसके बीज एक ठण्डी औषधि की तरह उपयोग में लिये जाते हैं।

यूनानीमत—यूनानीमत के अनुसार इसको सूंघने से गरम मस्तिष्क को कूवत पहुंचती है, इसके खाने से दस्त साफ होता है। यह कफ के बुखार को पैदा करता है। इसके बीजों को पानी में घोट छान कर खांड मिलाकर मिलाने से पेशाब की रुकावट और सुजाक में लाभ होता है। इसके बीज ठण्डे और कठिनाई से हजम होने वाले होते हैं। ये हृदय और मस्तिष्क को ताकत देते हैं और कफ पैदा करते हैं।

दुर्गुण—यह वस्तु लाभ की अपेक्षा हानि अधिक पहुँचाने वाली होती है। बरसात के दिनों में इसे अधिक मात्रा में खाने से आश्विन मास में मतली, बुखार और वमन होने का बहुत डर रहता है। इसलिये इसको बरसात के दिनों में बहुत थोड़ी मात्रा में नमक, कालीमिर्च, इत्यादि इसकी दर्प नाशक चीजों के साथ खाना चाहिये।

दर्प नाशक—इसके दर्प को नाशक करने के लिये नमक, कालीमिर्च तथा दूसरी गरम और पाचक औषधियाँ मुफीद हैं।

———:०:———

फोग

नाम—

मारवाड़—फोग। सिंध—फोग, फोगली, तिरनी। पंजाब—फोग, तिरनी। लेटिन—Calligonum Polygonoides (केलिगोनम पोलीगोनाइडस)।

वर्णन—

यह वनस्पति पंजाब, राजपूताना, सिंध और बलूचिस्तान में पैदा होती है। यह एक बिना पत्तों वाली झाड़ी होती है। इस पर पत्ते बहुत ही कम रहते हैं। इसके फूल हलके गुलाबी रंग के होते हैं।

इसका फल लम्बगोल होता है।

गुण दोष और प्रभावः—

इसकी जड़ों को कुचल कर कत्थे के साथ उबालकर कुल्ले करने से मसूड़ों की सूजन मिट जाती है।

—:※:—

फोशंबा

नामः—

इन्डियन बाजार—फोशबा। लेटिन—Boletus Crocatus (बोलेटस क्रोकेटस)।

गुण दोष और प्रभाव—

पश्चिमी भारत में इस वनस्पति को पीसकर पानी के साथ मिलाकर जिन बीमारो को अधिक लार बहती है उनके मसूड़ों पर लगाया जाता है। जिससे लार बहना कम हो जाता है। अतिसार और रक्तातिसार की बीमारियों में इसको खिलाने से लाभ होता है।

—:०:—

बड़

नाम—

संस्कृत—वट, रक्तफल, शृङ्गी, स्कंधज, ध्रुव, क्षीरी, अवरोहर, बहुपाद, भांडीर, भृङ्गी, वृक्षनाथ, यमप्रिय, इत्यादि। हिन्दी—बड़, वट, बरगद,। गुजराती—वड़, वड़लो। बंगाल—वड़, बोट। मराठी—वड़। कोकण—वड़। उत्तर पश्चिम प्रान्त—कुरकु, बोरा। पंजाब—बरगद, बेरा, बोहर, बोहिर। तामील—वडम, आल, कदवम इत्यादि। उर्दू—बरगद। फारसी—दरख्ते रेशा। अरबी—जाबुलेजेब्वा। अंग्रेजी—Banyan Trec। लेटिन—Ficus Bengalensis (फायकस बेंगलेन्सिस)।

वर्णन—

बड़ का वृक्ष बहुत विशाल होता है। भारतवर्ष में इसके बराबर घेरे के वृक्ष दूसरे नहीं होते, इसके पिंड की गोलाई २५ से ३० फुट तक की होती है। इस वृक्ष में से लम्बे २ तन्तु फूट कर जमीन के तरफ चलते हैं और वे जमीन में धुसकर जड़ें पकड लेते हैं। इस तरह इस वृक्ष का घेराव बढ़ता हुआ चला जाता है। जमीन के अन्दर इसकी जड़ें सौ हाथ के घेराव तक फैल जाती है। कोई २ वृक्ष इतना बड़ा हो जाता है कि जिसकी छाया में पन्द्रह २ सौ आदमी विश्राम कर सकते हैं। इसके पत्ते गोल और अंडाकृति होते हैं। इसके फल लाल रंग के होते हैं जो इसके पिंड में से फूटते हैं। इसकी

शाखाओं में से लाल २ रंग के अकुर निकलते हैं। जिनको बड़ की जटा कहते हैं। इस वृक्ष के हर एक भाग में दूधिया रस भरा हुआ रहता है। जो कहीं से भी चोट मारने से निकलता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मत से इस वृक्ष के सभी हिस्से कसैले, मधुर, शीतल, आंतों का सकोचन करने वाले, कफ, पित्त और व्रणों को नष्ट करने वाले तथा वमन, ज्वर, योनिदोष, मूर्च्छा, और विसर्प में लाभदायक हैं। ये कान्ति को बढ़ाते हैं। इसके पत्ते व्रणों के लिये लाभदायक हैं। इसके नवीन पत्ते गलित कुष्टमें फायदा पहुंचाते हैं। इसका दूध वेदना नाशक और व्रणरोपक होता है। इसके सूखे पत्ते पसीना लानेवाले और कोमल पत्ते कफ नाशक होते हैं। इसकी छाल स्तम्भक होती है।

बरसात के दिनों में किसान लोगों के हमेशा पानी में रहने की वजह से हाथ पैरों में खारिये पड़ जाते हैं वे बड़ का दूध लगाने से अच्छे हो जाते हैं। सड़े हुए दांत में इसके दूध का फोया रखने से दंतशूल बन्द हो जाता है। कमर के दर्द और सन्धियों की सूजन पर इसके दूध का लेप करने से फायदा होता है। बहुमूत्र रोग में इसकी जड़ की छाल का काढ़ा दिया जाता है। इसकी एक या दो कोमल कोंपलो का रस दूध के अन्दर देने से सुजाक में पेशाब की जलन कम हो जाती है।

इसकी छाल का शीत निर्यास एक प्रभावशाली पौष्टिक वस्तु होती है और इसमें मधुप्रमेह को दूर करने वाले विशिष्ट तत्व पाये जाते हैं। इसके बीज ठण्डे और पौष्टिक होते हैं। इसके पत्ते गरम करके पुल्टिस की तरह पीबदार व्रण के ऊपर बांधे जाते हैं। इसके पीले पत्तों को चाँवल के साथ पका कर उन चावलों का काढ़ा पसीना लाने के लिये दिया जाता है। इसकी जड़ के तन्तु पंजाब के अन्दर सुजाक में फायदा पहुंचाने के लिये देते हैं। ये जड़के तन्तु सार्सापरेला के समान रक्त शोधक माने जाते हैं। इसकी छोटी २ शाखाओं का शीत निर्यास कफ के साथ खून जाने की बीमारी में उपयोगी होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से बड़ सर्द और खुश्क होता है। इसका दूध तीसरे दर्जे में सर्द और खुश्क होता है।

इसका दूधिया रस कामोद्दीपक, पौष्टिक, फोड़े को पकाने वाला, सूजन को दूर करने वाला, बवासीर में लाभदायक, नाक की बीमारियों में फायदा पहुँचाने वाला और सुजाक में लाभदायक होता है। इसकी जड़ रक्तस्रावरोधक, कामोद्दीपक और सुजाक, उपदंश, पित्त विकार, रक्तातिसार तथा यकृत की सूजन में लाभदायक होती है। इसके पत्ते घाव को अच्छा करने वाले और पित्त विकार में लाभ दायक होते हैं।

खजाइनुल अदविया के मतानुसार बड़ काबिज होता है। पित्त तथा कफ के दोष और फोड़े फुन्सी को साफ करता है। इसकी नई कोंपल वायु को बिखेरती है। इसकी कोंपलों को छाया में सुखाकर उनको कूट छानकर उसमें समान भाग मिश्री मिलाकर ७ दिन तक निहारे मुंह दूध के साथ लेने से वीर्य

का पतलापन, सुजाक और गुर्दे की जलन मिटती है। ऐसा ताजा जखम जिसमें टांके लगाने की आवश्यकता हो, उसके मुंह को मिलाकर वड़ के पत्तों को गरम करके उस पर रखकर मजबूती से बांध दें और ३ रोज तक पट्टे को नहीं खोलें तो वह जखम बिना टाँके लगाये ही भर जायगा। इसके पत्तों को जलाकर अलसी के तेल में मिलाकर सिर की गंज पर लगाने से फायदा होता है। इसके पीले पत्तों को जलाकर उनकी राख में मोम और घी मिलाकर मरहम बनाकर जखम पर लगाने से जखम भर जाता है। इसके पत्तों पर घी चुपड़ कर उनको गरम करके सूजन पर बाँधने से सूजन बिखर जाती है। बड़ के पत्तों को छाया में सुखाकर पीसकर शक्कर मिलाकर फांकने से श्वेतप्रदर में लाभ होता है।

इसकी लकड़ी की छाल कसैली और फोड़ों की जलन को मिटाने वाली होती है। पीपल की छाल के साथ वड़ की छाल को जोश देकर कुल्ले करने से मसोड़ों की सूजन और जलन में लाभ होता है। इसका दूध सूजन को बिखेरता है और कामशक्ति को बढाता है।

वड़ का दूध प्रति दिन सवेरे १ माशे की मात्रा में ३ माशे शकर के साथ सूर्योदय के पहिले खाना प्रारंभ करें। जैसे २ यह अनुकूल होता जाय वैसे २ इसकी थोड़ी २ मात्रा बढाना चाहिये। अगर कोई नुकसान न मालूम पड़े तो ग्यारहवें दिन इसकी मात्रा १०॥ माशे तक पहूँचा देना चाहिये। फिर धीरे २ कम करते हुवे २१ वें दिन इसकी मात्रा ३ माशे की करके इसका सेवन बन्द कर देना चाहिये। इस प्रयोग से हर एक प्रकार की बवासीर में लाभ होता है। वीर्य का पतलापन, शीघ्रपतन और प्रमेह रोग में भी यह लाभ पहुचाता है। दिल, दिमाग और जिगर को यह शक्ति देता है और स्तम्भन पैदा करता है।

कान के अन्दर वड़ का दूध टपकाने से कान के कीड़े मर जाते हैं और कान की फुड़िया भी आराम होती है। वड़ के दूध को आंख में लगाने से आँख का जाला कटता है। हिलते हुए दांत पर वड़के दूध को लगाने से वह दांत आसानी से निकाला जा सकता है।

शरीर के किसी अंग की सूजन पर प्रारम्भ से ही इसके दूध को लगाने से उसका बढना रुक जाता है। बदगांठ पर भी इसको लगाने से बड़ा लाभ होता है। अगर उसके दोष कम होते हैं तो वह बिखर जाती है। अगर उसके दोष ज्यादा होते हैं तो वह पककर फूट जाती है और धीरे २ जखम भर जाता है।

इसके कच्चे फल को छाया में सुखाकर उसको पीसकर १॥ तोला दूध के साथ पीने से काम शक्ति बढती है। इसकी डाढ़ी को पीसकर १॥ माशे से ३ माशे तक की मात्रा में खाने से प्रमेह और धातुश्राव में लाभ होता है। इसकी डाढी को जलाकर पानी में भिगोकर जब वह पानी नितर जाय तब उस पानी को पिलाने से सब प्रकार की वमन बन्द होती है।

इसकी जड़ के बारीक रेशे जिनके सिरे पीले और लाल हों उनको पीसकर कुचों पर लेप करने से कुच कठोर हो जाते हैं।

उसकी बत्ती को नासूर में भरने से कुछ दिनों में नासूर भर जाता है।

रक्त पित्त—इसके पत्तों की लुगदी में शहद और शक्कर मिला कर खाने से रक्त पित्त मिटता है।

आँखों का जाला—बड़ के दूध को आंख में भरने से आंख का जाला मिटता है।

अतिसार—इसका दूध नाभि में भरने और उसके आस पास लगाने से अतिसार मिटता है।

वमन—बड़ की जटा की राख को खिलाने से वमन बन्द होती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार बड़ का दूध व्रण और जखम के लिये एक मूल्यवान संकोचक पदार्थ है। इसकी तरुण कोम्पलों के शीत निर्यास में एक बड़ी मात्रा में टेनिन रहता है और यह अतिसार और रक्तातिसार में बहुत उपयोगी होता है। इसकी छाल के शीतनिर्यास में मधु प्रमेह के अन्दर शकर को कम करने वाले तत्व रहते हैं।

——:o:——

बबूल

नाम—

संस्कृत—बर्बुर, बब्बूल, अजाभक्ष, दीर्घ कटका, दृढ़ बीजा, दृढ़रोहा, गोशृंग, कंटालु, कफांतक, किंकीरात, माला फल, पक्ति बीज, स्वर्ण पुष्प, तीक्ष्ण कटक, इत्यादि। हिन्दी—बबूल, बबूर कीकर। बंगाल—बाबला, बबूल, कीकर। गुजराती—बावल, बावलियां। मराठी—बबूल, बाबुल। बम्बई—बाबूल, बाभूल, राम कांटी, राम काली। उर्दू—बबूल। पंजाब—बाबला, बबूल। तेलगू व बूरम, नक्क टुम्मा, नेला टुम्मा। तामील—करुवेल, इरमानगडम। फ़ारसी—खेरेमुधिलान। अरबी—उम्मूघिलान। अंग्रेजी—Acacia Tree, Black babool। लेटिन—Acacia Arabica (एकेशिया अरेबिका)।

वर्णन—

यह एक मध्यम कद का वृक्ष होता है। इस के पत्ते बहुत छोटे २ आंवले के पत्तों की तरह होते हैं। इसमें सुई के समान बहुत तीक्ष्ण कांटे होते हैं। ये कांटे दो २ के जोड़े से लगते हैं। इसके फूल पीले रङ्ग के गोल २ लगते हैं। इसके कुछ टेढ़ी २ फलियां लगती हैं। जिनमें बीज होते हैं। इसका गोंद और छाल औषधि प्रयोग के काम में ली जाती है। जब यह झाड़ ६-७ वर्ष का हो तब इसकी छाल को निकाल कर सुखा लेना चाहिये और एक साल के बाद उसको काम में लेना चाहिये।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से बबूल कड़वा, मधुर, स्निग्ध, शीतल, गरम, कसेला, मलरोधक तथा आंव, रक्तातिसार कफ, खांसी, पित्त, दाह, वात और प्रमेह को दूर करता है। इसके पत्ते मलरोधक, रुचि कारक, चरपरे, गरम तथा खासी, वात, कफ और बवासीर को दूर करते हैं। ये नेत्र रोग और अस्थिभग्न के ऊपर भी लाभदायक है।

बबूल की फली रूखी, विशद, मलस्तम्भक, भारी, कसेली, मधुर, शीतल और कफ पित्त नाशक होती है।

बबूल का गोंद मलरोधक, पित्त और वात नाशक तथा रक्तातिसार, रक्तपित्त, प्रमेह और प्रदर को दूर करता है। यह टूटी हुई हड्डी को जोड़ता है और बहते हुए रक्त श्राव को बन्द करता है।

इसकी छाल एक मूल्यवान सकोचक पदार्थ है। यह कृमिनाशक, और विषनाशक होती है। खांसी, ब्रोंकाइटीज़, अतिसार, रक्तातिसार, पित्त विकार, शरीर की जलन, बवासीर, धवल रोग, धातु पतन, जलोदर तथा उदर शोथ में भी यह लाभदायक है।

सूआ रोग और बबूल

रेवरेंड जोन गङ्गाराम का कथन है कि विलायती बबूल की अन्तर छाल को प्रतिदिन सवेरे शाम एक २ तोला लेकर उसमें तीन २ दाने काली मिर्च के मिलाकर चूर्ण करके खाने से और पथ्य में सिर्फ गाय का दूध और बाजरे की रोटी लेने से भयङ्कर सूतिका रोग से ग्रस्त स्त्रियां भी बच जाती हैं।

बबूल और उदर रोग

बबूल की अन्तर छाल का क्वाथ बनाकर उस क्वाथ को औटाते २ जब उसका घन-क्वाथ हो जाय तब उस घन क्वाथ को मट्ठे के साथ पीने से और पथ्य में सिर्फ मट्ठे का आहार लेने से जलोदर की स्थिति तक पहुँचे हुए सब प्रकार के उदर रोग नष्ट हो जाते हैं।

बबूल और नेत्र रोग

बबूल के पापड़ों को सुखाकर कूटकर उनमें से जो बारीक आटे के समान चूर्ण निकले उस चूर्ण को ४ तोला लेकर उसमें १॥ माशा नीला थोथा डालकर सत्यानाशी के दूध में इन सब चीजों को खरल करके मूग के समान गोलियां बना लेना चाहिये। इनमें से १ गोली जरा से दूध के साथ घिस करके सवेरे शाम आंखों में आंजने से आंख की फूली, खील, काक, अश्रुश्राव, दाह वगैरह रोग दूर होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसके फूल में थोड़ी सी गरमी और कब्जी रहती है।

जालीनूस का कथन है कि बबूल की जड़ का क्वाथ पीने से आमाशय और गर्भाशय के रोगों में लाभ होता है। इसकी लकड़ी से दतून करने से दांत साफ और मजबूत होते हैं। इसके २० तोला पत्तों का काढ़ा बहुत दस्तावर और वमन लाने वाला होता है। इसके फूल को पीसकर बराबर वजन की शक्कर मिलाकर रोजाना एक हथेली भर खाने से पीलिया जाता रहता है। बबूल की फलियों के लेप में थोड़ा सा मोटी जाति का कपड़ा ७ बार तर करके सुखा लें इसमें से थोड़े से कपड़े का टुकड़ा दूध या पानी में मलकर उस दूध या पानी को पी लें उसके पश्चात स्त्री सम्भोग करने से बहुत स्तम्भन होता है। अगर इसमें से जरा से कपड़े का टुकड़ा स्त्री अपनी योनि में रखे तो योनि तङ्ग हो जायगी। एक

हिस्से बबूल की छाल को १० हिस्से पानी में रात में भिगो कर सवेरे उस पानी को जोश देकर आधा पानी रह जाने पर उसको छान कर बोतल में भर लें। पेशाब करने के पश्चात स्त्री इस पानी से अपनी योनि को धो लिया करे। इस प्रयोग से कुछ ही दिनों में उस स्त्री की योनि कुमारी बालिका के समान हो जायगी।

बबूल की कोंपलों को रात को पानी में भिगोकर आसमान के नीचे रखें और प्रातःकाल उस पानी को नितार कर पीयें तो सुजाक और पेशाब की जलन में फायदा होता है। अथवा तीन तोला बबूल की कोंपलों को रात को पानी में भिगोकर सुबह मल छान कर उसमें २ तोला गरम घी मिलाकर पीवें। दूसरे दिन भी ऐसा ही करें, तीसरे दिन घी छोड़ दें। और ४-५ दिन तक खाली उसका हिम पिया करें तो सुजाक में बहुत लाभ होता है।

इसके पत्तों का काढ़ा दस्तों को बन्द करता है। इसके प्रयोग से खून के जोश की भी शान्ति होता है। इसके पत्तों का शीत निर्यास कफ के साथ खून आने को बन्द करता है। इसके फूलों का पीस कर सिरके में मिलाकर दाद पर लगाने से दाद जड़ से चला जाता है। इसके फूलों के चूर्ण को शहद में मिलाकर बच्चों की जबान पर लगाने से उनके मुह के छाले मिट जाते हैं। इसके पत्तों की कूपलें थोड़े से जीरे और अनार की कलियों के साथ पानी में पीसकर उस पानी को छान कर उसमें एक टुकड़ा गरम ईंट का बुझाकर पिलाने से भयकर अतिसार में भी लाभ होता है।

बबूल के पत्ते, छाल, फूल और गोंद समान भाग लेकर पीस कर सवेरे के वक्त पानी के साथ लेने से धातु का पतलापन, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, प्रमेह, तथा स्त्रियों के श्वेत प्रदर में लाभ होता है। इसकी मात्रा २ माशे से ३॥ माशे तक की है।

इसके हरे पत्तों का लेप जखम को भरता है और गरमी की सूजन को दूर करता है। इसके फूल पानस के रोग में मुफीद है। इसकी फली सांप, बिच्छू और पागल कुत्ते के काटे हुए स्थान पर लेप करने से और रोगी को खिलाने से ज़हर का असर कम हो जाता है

इसकी कच्ची फलियों का चेप निकाल कर उस चेप को कपड़े पर गाढ़ा २ लगाकर सुखालें जिस से कपड़ा सूखकर मोमजामे की तरह हाजाय। इस कपड़े की चोली बनाकर जिस स्त्री की छातियां लटक गई हो उसको पहिनाने से उसकी छातियां सख्त और मज़बूत हो जाती हैं।

बबूल का गोंद

यूनानी मत से बबूल का गोंद समशीतोष्ण होता है। जालीनूस के मत से यह गरम होता है। यह क़ाबिज है तथा आमाशय और आंतों को शक्ति देता है। सीने के दर्द, खांसी और गले की खुश्की को यह मिटाता है। आवाज को साफ करता है। श्वास नाली के लिये यह मुफीद है। पेचिश और धातुस्राव में लाभदायक है। दस्तों को बन्द करता है। खांसी को मिटाता है। कई उग्र औषधियों के दर्प को नष्ट करता है। इसको रोगन गुल में भूनकर खाने से किसी भी अंग से होने वाला रक्तस्राव बन्द होता है। सिर्फ गर्भाशय और बवासीर के रक्तस्राव में इससे लाभ नहीं होता। इस को

मुँह में रखने से खांसी में लाभ होता है।

तालीफ शरीफ के मतानुसार बबूल का गोंद ४॥ माशा, १। तोला गाय के घी के साथ ३ या ७ दिन तक चाटने से कफ के साथ होने वाला रक्तस्राव और शरीर के दूसरे तमाम अंगों से होने वाला रक्तस्राव रुक जाता है।

मुजिर—बबूल का अधिक सेवन सीने को नुकसान पहुँचता है। बबूल का गोंद अधिक मात्रा में गुदा को नुकसान पहुंचता है।

दर्प नाशक—बबूल का दर्प नाशक बनफ्शा है और बबूल के गोंद का दर्प नाशक कतीरा, बेदाना, गुलाब और सदल है।

प्रतिनिधी—बबूल के गोंद का प्रतिनिधी ढाकरा गोंद और धावड़े का गोंद है।

मात्रा—बबूल के गोंद की मात्रा २ माशे से ४॥ माशे तक और इसकी जड़ के क्वाथ की मात्रा ७ तोले ९ तोले तक है।

उपयोग—

बल वर्धन—इसके गोंद को घी में तल कर उसका पाक बना कर खाने से पुरुषों का वीर्य बढ़ता है और प्रसूति काल मे स्त्रियों को खिलाने से उनकी शक्ति भी बढती है।

अतिसार—बबूल के गोंद का पानी पिलाने से अतिसार और रक्तातिसार मिटता है।

दंत पीड़ा—बबूल की फली का छिलका और बादाम के छिलके की राख में नमक मिला कर मंजन करने की दंत पीड़ा मिटती है।

आमाशय की पीड़ा—इसके गोंद के पानी को पिलाने से आमाशय और आंतों की पीड़ा मिटती है।

सुजाक—इसके गोंद को पानी में डाल कर उसकी पिचकारी देने से मूत्राशय की सूजन, सुजाक की जलन और पीब रुक जाता है।

मसूड़े के रोग—इसकी छाल का क्वाथ बना कर उस से कुल्ले करने से साधारण मुख पाक, मसूढ़ों से रुधिर का बहना और गले की पीड़ा मिटती है।

नेत्र रोग—इसके नरम पत्तों को पीस कर रस निकाल कर आंख में टपकाने से अथवा स्त्री के दूध के साथ आंख पर बांधने से आंख की पीड़ा और सूजन मिटती है।

सुजाक—इसके नरम पत्तों को शक्कर और काली मिरच के साथ अथवा अनार के पत्तों के साथ पीस छान कर पिलाने से सुजाक मिटता है।

आमाशय से रुधिर का बहना—इसके कोमल पत्तों को काली मिरच और शक्कर के साथ पीस छान कर पिलाने से आमाशय से रुधिर का बहना बन्द होता है।

श्वेत प्रदर—बबूल की छाल का क्वाथ पिलाने से और उस क्वाथ में फिटकरी डाल कर उसकी पिचकारी देने से श्वेत प्रदर में लाभ होता है।

पारे का मुख पाक—बबूल की छाल और आम की छाल को ६-६ माशे लेकर दोनो को २॥ पाव पानी में आधा घण्टे तक औटा कर कुल्ले करने से पारे की वजह से हुआ मुख पाक मिटता है।

मुंह के छाले—इसकी छाल के चूर्ण को मुंह में भुरभुरा ने से मुंह के छाले मिटते हैं।

मधु प्रमेह—इसके गोंद का सेवन करने से मधु प्रमेह मिटता है।

हिचकी—बबूल के सूखे या गीले काटों को आध सेर पानी में औटा कर जब वह पानी आधा रह जाय तब उसमें शहद मिला कर पीने से हिचकी मिटती हैं।

टूटी हुई हड्डी—इसके बीजों के चूर्ण को शहद के साथ चटाने से टूटी हुई हड्डी जुड़ती है।

नारू—इसके बीजों के चूर्ण को पानी के साथ पीस कर लेप करने से नारू मिटता है।

अतिसार—नं० २ इसके १॥ माशे गोंद के चूर्ण की फक्की १० दिन तक लगातार लेने से अतिसार मिटता है।

मूत्र कृच्छ—बबूल की १ तोले कोंपल और १ तोला गोखरू का रस निकाल कर पिलाने से मूत्र कृच्छ मिटता है।

मासिक धर्म की अधिकता—इसका भुना हुआ गोंद ४॥ माशे और गेरू ४॥ माशे। इनको पीस कर प्रातः काल फक्की देने से मासिक धर्म में अधिक रुधिर का निकलना बन्द होता है।

कुष्ट—इसकी ३ तोले छाल का हिम प्रति दिन पीने से कुष्ट में लाभ होता है।

——:o:——

वनफशा

नाम—

संस्कृत—ज्वरपहा, नीलपुष्प, सूक्ष्मपत्र, वनपशा,। हिन्दी—वनफशा। बंगाल—वनपशा, वनोशा। बबई—वनफ्शाह। मराठी—बगाबेनोसा, वनफशाह। गुजराती—वनफ़शा। अंग्रेजी—Appel Leaf। लेटिन—Viola Odorata (विओला ओड़ोरेटा)।

वर्णन—

यह क्षुद्र वनस्पति काश्मीर तथा हिमालय में ५ हजार फीट से ६ हजार फीट की ऊंचाई तक और नीलगिरी पर्वत पर पैदा होती है। इसकी खेती भी की जाती है और जगलों में अपने आप भी पैदा होती है। इस पौधे की ऊंचाई १ फुट से लेकर ३ फुट तक होती है। इसके पत्ते गोल, हृदयाकृति और रूएंदार होते हैं। ये ब्राह्मी के पत्तों के समान दिखलाई देते हैं। इसके फूल नीले और बैगनी रग के होते हैं। कोई २ सफेद भी होते हैं। इनमें बहुत मनोहर सुगन्ध आती है। इसकी जड़ बांकी, टेढ़ी, गठानदार, १ से २ इञ्च तक लम्बी, फीके पीले रग की और अनेक बारीक तन्तुओं वाली होती है। इस क्षुद्र वनस्पति की उत्पति एक जड़ से दूसरी जड़ फूटकर होती है। इसके नीले रंग के फूलों को गुल वनफशा

कहते हैं और बिना फूलों की सुखाई हुई वनस्पति को वनफशा कहते हैं।

ईरान का वनफशा बहुत उत्तम जाति का होता है। काश्मीर और नेपाल में भी वनफ़शा की बहुत खेती की जाती है वहां के पौधों पर सफेद और पीले रंग के फूल आते हैं और उसको काश्मीरी वनफ़शा या बाग वनफ़शा कहते हैं।

वनफ़शाह की कई जातियां होती हैं। जिनको लेटिन में Viola Serpens (विओला सरपेन्स) V. Cinerea (वि. सीनेरिया) कहते हैं। असली वनफशा उसको कहते हैं जिसका फूल नीले रंग का हो, जिसमें खुशबू आती हो। औषधि प्रयोग में इसका पञ्चांग काम आता है। मगर इसका फूल सबसे अधिक उपयोगी माना जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका पौधा कड़वा, तीक्ष्ण, गरम, पार्यायिक ज्वरों को दूर करने वाला और विषम ज्वर (Maleria), ब्रोंकाइटीज, दमा और त्रिदोष में लाभदायक है।

वनफशा के फूल शीतल, स्नेहन और कफ नाशक होते हैं। इसकी जड़ १ ड्राम की मात्रा में वामक और विरेचक होती है। इस औषधि को वामक औषधि की तरह देने पर बहुत जँभाइयां आती हैं और वमन होने के पश्चात कुछ दस्त भी होते हैं। वमन लाने के लिये नागदौने की अपेक्षा यह वनस्पति कुछ कम दर्जे की है। रक्तस्राव को बन्द करने का इसका धर्म बहुत स्पष्ट है।

पित्त प्रधान रोगों में जब शीतोपचार की आवश्यकता होती है। तब वनफशा का उपयोग किया जाता है। गरमी के दिनों में गरमी के प्रभाव को रोकने के लिये इसके फूलों के गुलकन्द को खाने का ईरान और अफगानिस्तान में बहुत रिवाज है।

इसके पञ्चांग का काढ़ा उत्तम द्राक्षासव के साथ देने से बवासीर से बहने वाला खून, अत्यार्तव, और शरीर के दूसरे अंगों से होने वाला रक्तस्राव बन्द हो जाता है। कैन्सर रोग में इस औषधि का भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार से प्रयोग किया जाता है। इसके प्रयोग से अर्बुद अथवा कैन्सर के दर्द और स्रावकी कमी हो जाती है। वनफशाह के पचांग के काढ़े से अर्बुद को धोने से अच्छा लाभ होता है।

जुकाम और उसकी वजह से होने वाला शरीर का दर्द, गले का दर्द और ज्वर में वनफशा की फांट थोड़ासा कलमीशोरा मिलाकर दी जाती है। कफ रोगों में फिर चाहे वे नवीन हों या प्राचीन कफ गाढ़ा और थोड़ा होने की हालत में वनफशा को सेंधे निमक और पीपल के साथ शहद में मिलाकर चटाया जाता है। जिससे कफ पतला होकर निकल जाता है।

इसकी जड़ एक प्रभावशाली वामक वस्तु होती है और यह प्राय. इपिकाक के प्रतिनिधि रूप में अथवा इपिकाक के साथ मिला कर-दी जाती है। २० से २५ रत्ती की मात्रा में इसकी जड़ का चूर्ण शक्तिशाली वामक वस्तु का काम करता है।

इसके फूलों का शरबत बच्चों की बीमारी के लिये एक लोक प्रिय घरेलू औषधि मानी जाती है।

फ्रांसमें इसका शरबत खाँसी और स्वर भंगके लिये काममें लिया जाता है। इंगलैंड में इस वनस्पति की बडे परिमाण में शरबत बनाने के लिये खेती की जाती है और इसके शरबत को बादाम के तेल के साथ मिलाकर बच्चों के लिये प्रधान मृदु विरेचक औषधि की तरह काम में लेते है। यह खाँसी की पीड़ा को शात करता है तथा गले के छालों में लाभ पहुँचाता है।

डाक्टर मुडीन शरीफ के मतानुसार यह वनस्पति ज्वर नाशक और पसीना लाने वाली होती है। ज्वर के लक्षणों को दूर करने के लिये और ज्वर की तेजी को कम करने के लिये यह बहुत ही उपयोगी है। दूसरी ज्वर नाशक औषधियों के साथ इसको देने से इसका असर जल्दी होता है।

कोमान के मतानुसार हकीम लोग इस वनस्पति को एक प्रभावशाली ज्वर नाशक वस्तु मानते हैं और तीव्र तथा प्राचीन ज्वरों में इसको दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर देते हैं। डॉक्टर मुडीन शरीफ ने अपने मटेरिया मेडिका ऑफ मद्रास में इस वनस्पति के साथ एक काढ़े का नुस्खा दिया है जो कि हठीले ज्वर और लम्बे समय से आने वाले टायफाइड ज्वर, जिसमें कि सब यूरोपियन औषधियाँ असफल होचुकी थी, सफल सिद्ध हुआ था। मगर उसी काढ़े को हमने प्राचीन ज्वर के केस में दिया जिससे कोई लाभ नहीं हुआ। कई दूसरे बीमारों को भी वनफ्शा का शीत निर्यास हमने प्रदाहिक ज्वर और मलेरिया ज्वर को दूर करने के लिये दिया मगर उसने कोई लाभ नहीं हुआ।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह वनस्पति सर्द और तर होती है। किसी २ के मत से समशीतोष्ण है। यह दूषित रक्त को साफ करके नया रक्त पैदा करती है। पेट को मुलायम करती है। दस्तावर है, पित्त को समान करती है। प्यास और खून की तेजी को मिटाती है, हल्की और भारी सूजन को बिखेरती है। आमाशय और यकृत के लिये लाभदायक है। पेशाब की रुकावट को मिटाती है।

इसके प्रयोग से गर्मी और खून की खराबी से पैदा हुई खुजली में लाभ होता है। वनफ्शा के पत्तों और फूलों को सूंघने से सिर दर्द मिट जाता है। बच्चों के सिर दर्द में इसके फूलों का रस निकालकर पिलाना चाहिये। इसके पिलाने से नींद भी आराम के साथ आती है। जिन लोगों को नींद न आने की बीमारी हो उन्हें वनफ्शा के फूलों को सुंघना चाहिये और उनको पीसकर सिर पर लेप करना चाहिये। गरमी से होने वाला आँखों का दर्द, सूजन और जलन इसके लगाने से मिट जाती है। गले की सूजन में इसके फूलों को भिगोकर मल छानकर पिलाना चाहिये। इसके फूलों को पिलाने से गर्मी की खाँसी भी मिट जाती है और आमाशय की जलन शांत हो जाती है। इसको ठण्डे पानी के साथ लेने से यह आमाशय में इकट्ठे हुए पित्त को सहूलियत के साथ निकाल देता है।

वनफ्शा उन औषधियों में से है जो बहुत आसानी और सहूलियत से दस्त ला देती है। मिश्रित बुखारों के लिये इसको गुलकन्द के साथ देने से बहुत लाभ होता है। इसके ताजा फूल विष विकार पर भी लाभदायक हैं। इसके पत्तों के लेप से गुदा की सूजन मिट जाती है। ताज़ा वनफ्शा को सूंघने से नींद बहुत आती है।

वनफ्शा को बहुत अधिक उबालने से इसका असर जाता रहता है। इसलिये इसको ज्यादा नहीं उबालना चाहिये। चेचक की बीमारी में इसका उपयोग हानिकारक होता है। सब प्रकार के ज्वरों में इसका उपयोग किया जाता है। मगर जिस ज्वर के साथ में अतिसार या दस्त लग रहे हों उसमें इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। गर्भवती स्त्री को भी वनफ्शा नहीं देना चाहिये।

मुज़िर—इसको अधिक मात्रा में खाने से हृदय में कमजोरी और बैचेनी पैदा होती है। मतली आने लगती है। आमाशय ढीला हो जाता है। भूख घट जाती है। बवासीर के रोग में नुकसान पहुंचता है। इसको अधिक देर तक सूंघने से मस्तिष्क को नुक्सान पहुंचता है।

दर्पनाशक—अनीसून और गुलाब के फूल।

प्रतिनिधि—गुल नीलोफर और खांसी के लिये मुलेठी।

मात्रा—

पचांग के चूर्ण की, पसीना लाने के लिये और कफ को नष्ट करने के लिये ५ रत्ती से १० रत्ती तक, रक्त स्राव को बन्द करने के लिये १५ रत्ती से ३० रत्ती तक।

रासायनिक विश्लेषण—

वनफ्शा के फूलों में एक रंगदार द्रव्य, उड़नशील तेल, अम्ल द्रव्य और एक वामक द्रव्य पाया जाता है। यह वामक-द्रव्य इपिकाक में पाये जाने वाले वामक द्रव्य के समान होता है। इसको २-३ ग्रेन की मात्रा में देने से वमन हो जाती है। यह पानी के अन्दर थोड़ी मात्रा में घुलता है।

उपयोग बनावटें—

शरबत वनफ्शा—वनफ्शा के ताजे फूल १ पौंड, औंटता हुआ, १। सेर पानी में फूलों को २४ घण्टे तक गला लेना चाहिये। फिर उस पानी को छानकर उसमें शक्कर मिलाकर चाशनी बना लेना चाहिये।

शरबत वनफ्शा की मात्रा ४ माशे से १६ माशे तक बच्चों के लिये होती है। यह बच्चों को दस्त साफ होने के लिये गरमी के दिनों में देते हैं। शरबत का रंग, गंध और स्वाद बहुत मनोहर होता है। यूनानीमत से वनफ्शा का शरबत गरमी का जुकाम, नजला और निमोनियां में लाभदायक है। इसके पीने से मेदे की जलन मिटती है और बहुत आसानी से पेट को मुलायम कर देता है। दस्त लाने के लिये यह एक उत्तम और सौम्य वस्तु है। यह पेशाब भी लाता है और पेशाब की जलन को मिटाता है। गरमी का बुखार और पागलपन की बेहोशी में जौ के आटे के साथ इसको देने से काफी लाभ होता है। जिस बुखार के साथ दस्त हों उसमें इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। श्वास नली और फेफड़े के ऊपर भी इस शरबत का प्रधान रूप से असर होता है। इसलिये बड़े मनुष्यों के श्वास खांसी और जुकाम के ऊपर यह बहुत लाभ पहुँचाता है। क्षय और दमे में यह जमे हुए कफ को ढीला करता है। इसी प्रकार फेफड़े और हृदय को शक्ति देता है। रक्त को भी यह शुद्ध करता है तथा हृदय को शांति देता

है। रक्त की गरमी को शमन करने के लिये तथा खाँसी को दूर करने के लिये इसको नीबू के रस के साथ देते हैं। मासिक धर्म की विकृति में भी यह उपयोगी है।

खमीरा बनफशा—खमीरा बनफ्शाह, बनफ्शाह के फूलों से शक्कर के साथ तैयार किया जाता है। यह गरमी की खाँसी को मिटाता है। जुकाम और नजले में मुफीद है। पेशाब की जलन को मिटाता है। शहद के साथ बनाया हुआ खमीरा कॉलिक उदर शूल में लाभ पहुँचाता है।

बनफ्शा का तेल—

बनफशा का तेल—बनफ्शा के फूलों को पानी के साथ पीसकर उसकी लुगदी से सिद्ध किया हुआ तेल बनफ्शा का तेल कहलाता है। इसके तेल को बालों पर लगाने से बाल गिरना बन्द हो जाते हैं। सीने पर मालिश करने से खुजली और खाँसी में लाभ होता है। दमे के बीमार को रोगन बनफ्शा ७ माशे की मात्रा में कई दिनों तक पिलाने से लाभ होता है। गरमी की वजह से अगर बच्चों को नींद न आती हो अथवा उनको मिरगी हो गई हो तो इस तेल को नाक में टपकाने से फायदा होता है।

बनफशा की चाय—गुलबनफ्शा २ तोला, अडूसे के पत्ते, तुलसी के पत्ते, नागरबेल के सूखे पत्ते एक तोला सोंठ, मिर्च और पीपर आधा २ तोला लोंग, जायफल, जावित्री, इलायची के बीज तमालपत्र और तज तीन २ माशे। इन सबका जौ कुट चूर्ण करके इसमें से २ तोला चूर्ण लेकर ४० तोला पानी के साथ औटाना चाहिये। जब २० तोला पानी बाकी रह जाय तब उसको उतार कर छान कर उसमें १० तोला दूध और ४ तोला शक्कर मिलाकर रात को सोते समय गरम २ पी लेना चाहिये।

इस चाय के सेवन से जुकाम, पसली का दर्द, श्वास कष्ट, इनफ्लुएंजा, निमोनिया, इत्यादि रोगों में लाभ होता है। इस औषधि को पिलाकर रोगी को ओढ़ाकर सुला देने से खूब पसीना आता है।

इन्फ्लूएंजा के रोग में बनफ्शा एक बहुत उपयोगी वस्तु है। सन् १९१८ के अन्दर जब इस देश में इनफ्लूएंजा का भयकर प्रकोप हुआ था, तब इस वनस्पति के द्वारा लोगों ने बहुत लाभ उठाया था।

——:०:——

बच

नाम—

संस्कृत—वच, उग्रगधा, गोलोमी, मगल्या, भद्रा, भूतनाशिनी, बोधनीया, तीक्ष्णपत्रा, शतपर्विका, इत्यादि। हिन्दी—बच, घोड़ावच, गोरवच,। बगाल—बच, सफेद बच। मराठी—वेखण्ड। गुजराती—घोड़ावज, घोड़ावज; वज। पजाब—बच, वरिबोज। फ़ारसी - अगरेतुर्की। तामील—वशाम्बु,। तेलगू—वस। उर्दू—बच। अंग्रेजी—Sweet Flag। लेटिन—Acorao Calamus (एकोरस केलेमस)।

वर्णन—

बच के क्षुप बहुत छोटे २ होते हैं। यह वनस्पति तर जमीनों में बारहों महीने पैदा होती है।

यह ब्रह्मा मनीपुर, और आसाम की तरफ विशेष रूप से पैदा होती है। इसका क्षुप आड़ी टेढ़ी शाखाओं वाला होता है। इसकी जड़े मध्यमा उंगली की तरह मोटी होती है। इसके पत्ते ६ से लेकर १८ मीटर तक लम्बे और १७ से ३८ सेंटिमीटर तक चौड़े होते हैं। ये चमकीले, हरे, और नोकदार होते हैं। इस वनस्पति की खेती हिमालय में सिकिम के अन्दर ६ हजार फीट की ऊँचाई तक की जाती है। इसकी दो जातियां होती हैं। एक घोड़ा बच दूसरी सफेद या खुरासानी बच। औषधि प्रयोग में विशेष कर घोड़ावच ही काम में ली जाती है। इस वनस्पति के सभी भाग सुगन्धित होते हैं। इसकी गंध मनोहर और स्वाद कड़वा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से बच उग्रगंधयुक्त, चरपरी, कड़वी, गरम, वमन कारक, मृदु विरेचक, मूत्रल शान्तिदायक और कृमिनाशक होती है। यह बुद्धिवर्धक, कण्ठ को हितकारी, मलमूत्र शोधक तथा विबंध, आफरा, शूल, शोथ, वात ज्वर, अपस्मार कफ, उन्माद, भूत, कृमि और वात को नष्ट करती है।

सफेद बच, मति और बुद्धि वर्धक है। जठराग्नि को प्रदीप्त करती है। यह आयु वर्धक, वीर्य-जनक तथा कफ, वादी, भूतबाधा और कृमियों को दूर करती है।

बच के चूर्ण को जल के साथ अथवा दूध के साथ १ मास तक सेवन करने से मनुष्य बुद्धिमान और ज्ञानी होता है तथा चन्द्र ग्रहण के समय अथवा सूर्य्य ग्रहण के समय एक पल बच के चूर्ण को दूध के साथ भक्षण करने से मनुष्य अत्यन्त बुद्धिमान होता है।

आयुर्वेद के अन्दर—बुद्धि और स्मरण शक्ति बढाने वाली तथा ज्ञान तन्तुओं के रोगों को दूर करने वाली जो तीन प्रधान औषधियां मानी गई हैं, उनमें ब्राह्मी और शंखाहूली के बाद बच का ही नंबर है। इस कार्य के लिये आयुर्वेद में इस औषधि की बहुत प्रशंसा है। इसके सिवाय इसके वामक धर्म को भी आयुर्वेद में काफी महत्व दिया गया है और वास्तव में इसके ये दोनों ही धर्म सबसे प्रधान हैं।

बच में पसीना लाने का, कफ नाशक, वामक, ज्वर नाशक, उत्तेजक, वेदनाशक और कृमि-नाशक धर्म प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान रहते हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों और बच्चों के ऊपर इसका प्रभाव बहुत शीघ्र और अच्छा होता है।

सरदी, गले की सूजन और श्वास नलिका की नवीन सूजन में बच का क्वाथ बहुत गुणकारी होता है। समय पर इसको दे देने से रोग नहीं बढ़ने पाता। इसको देने से गले के अन्दर का कफ छूट कर आवाज सुधर जाती है। सरदी को बन्द करने के लिये बच के ही समान दो औषधियां और हैं। एक अफीम और दूसरी बछनाग। मगर ये दोनों ही विष हैं और बच के समान इनका प्रयोग निर्भय होकर नहीं किया जा सकता। श्लेष्मत्वचा के ऊपर बच की क्रिया अफीम के समान ही प्रत्यक्ष होती है।

इसको देने से सूखी खांसी और गले की सूजन कम होती है। दमे के रोग में उल्टी होने के लिये २० रत्ती बच का चूर्ण और तीन माशे सेंधा निमक आधा सेर गरम पानी के साथ पिला देने से बिना किसी हानि के वमन हो जाती है।

ज्वर के अन्दर बच को देने से पसीना छूटता है और पेशाब का परिमाण कुछ बढ जाता है। जीर्ण ज्वर में बच को देने से मस्तिष्क और मज्जा तन्तुओं को उत्तेजन मिलता है। बच्चों को दांत आने के समय जो बुखार आता है उसमें भी बच लाभकारी है।

बच मस्तिष्क और मज्जा तन्तुओं के लिये एक उत्तेजक वस्तु है। इससे रोगी की चेतना शक्ति जाग्रत होती है और कुछ काम शक्ति भी बढ़ती है। मृगी, अपस्मार, उन्माद, लकवा, हिस्टिरीया, इत्यादि मज्जा तन्तुओं से सम्बन्ध रखने वाली बीमारियों में इसका उपयोग बड़ा सफल होता है। अप-स्मार में इसको शहद के साथ सवेरे शाम दिया जाता है। उन्माद में इसको कद्दू के रस के साथ देना चाहिये। लकवे में रोगग्रस्त भाग के ऊपर इसकी मालिश की जाती है।

बच किसी हद तक गर्भाशय का संकोचन भी करती है। इसलिये प्रसूति के समय इसको केशर और पीपलामूल के साथ देने से पीड़ा का वेग बढकर प्रसूति शीघ्र होजाती है।

यह वनस्पति आमाशय की क्रिया को भी सुधारती है। इसलिये अजीर्ण, मन्दाग्नि, पेटका आफरा, उदरशूल, बच्चों का उदरशूल, पेट के कृमि, इत्यादि रोगों में यह अच्छा काम करती है।

डाक्टर मुडीनशरीफ का कथन है कि बच वामक, आक्षेप निवारक, शांतिदायक, उत्तेजक और कृमिनाशक होती है। अपने वमनोत्पादक धर्म में यह इपिकाक की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली और उपशामक होती है और इस कारण यह रक्तातिसार इत्यादि उदर सम्बन्धी कई बीमारियों में उपयोगी होती है। इस देश में दो वनस्पतियां ऐसी पैदा होती हैं जो बहुत थोड़ी मात्रा में अर्थात सिर्फ १५ रत्ती की मात्रा में सफलता पूर्वक वमन लाने का काम कर देती हैं। इनमें से एक घोड़ा बच भी है। इसको ३५ ग्रेन की मात्रा से अधिक मात्रा में प्रयोग नहीं करना चाहिये। ४० ग्रेन की मात्रा में यह एक बहुत उग्र और घातक रूप धारण कर लेती है। दमे के रोग के ऊपर भी यह एक उत्तम औषधि है। इस रोग में इसको पहिली मात्रा में २० ग्रेन देना चाहिये जिससे १। २ वमन होकर रोगी को शांति मिल जाती है। उसके पश्चात १० ग्रेन की मात्रा में कफ नाशक औषधि की तरह दिन में ३। ४ बार देते रहने से थोड़े दिनों में ही दमे का रोग मिट जाता है। इसके अतिरिक्त सरदी युक्त खांसी, हिस्टीरिया, स्नायुशूल और कुछ विशेष प्रकार के अजीर्ण रोगों में भी यह औषधि बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। इस औषधि को टिंचर या शीत निर्यास के रूप में काम में ली जाती है।

आधुनिक चिकित्सक लोग इस वनस्पति को सफलता पूर्वक मलेरिया ज्वर के उन केसों पर काम में लेते हैं जिनके ऊपर शिंकोना की छाल असफल सिद्ध होजाती है। यह शिंकोना की एक बहुत सुनिश्चित और उपयोगी सहयोगी है। मनीपुर के लोग इसको खांसी और गले की खराबी के लिये एक

विशेष वस्तु समझते हैं। इन रोगों की शांति के लिये वे लोग इसके टुकडे को मुंह में रखकर कुछ देर तक चवाते हैं।

उन्माद रोग के अन्दर वच का चूर्ण थोड़ी सी कूट के चूर्ण के साथ मिला कर दूध के साथ लेने से और पथ्य में सिर्फ दूध और भात का आहार लेने से हठीले उन्माद में भी लाभ होता है। डॉक्टर पी० मोतीलाल का कथन है कि वच के साथ ब्राह्मी को मिला कर इसका प्रयोग अगर एक लम्बे समय तक किया जाय तो चाहे जैसा पागलपन दूर होजाता है। यहां तक कि एक वार तो सांकल से बँधा हुआ रोगी भी छूट जाता है। उन्माद के जीर्ण रोगी जो सब प्रकार की चिकित्साओं से निराश हो चुके हैं। वे भी इस चिकित्सा को करके देखें तो उनको सतोप होगा। लेकिन यह चिकित्सा लंबे समय की उपेक्षा करती है। ८।१० दिन के सेवन से इससे कुछ लाभ नहीं होता।

रासायनिक विश्लेपण—

इसका रासायनिक विश्लेपण करने पर इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल १.५ प्रतिशत से लेकर ३.५ प्रतिशत तक इसकी छाल वाली जड़ों में पाया जाता है। इस तेल में मुख्य पदार्थ (Asaryl) असारेल, अल्डेहाइड (Aldehyde), पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें एकोरिन नामक कड़वा ग्लूको साइड और यूजीनोल (Eugenol) असारोन (Asarone) पिनेन (Pinene) और कॅम्फीन (Camphene) नामक तत्व तथा स्टार्च प्रचुर, मात्रा में और टेनिन (Tannine) थोड़ी मात्रा में पाये जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वमन कारक, आक्षेप निवारक और शांतिदायक होती है। ३५ से ४० ग्रेन तक की मात्रा में यह तीव्र और लगातार वमनकारी रहती है। यह कफ निस्सारक होने से दमें की बीमारी में भी यह उपयोगी रहती है। पुराने अतिसार के लिये यह एक प्राचीन औषधि है। देशी दवाइयों में भी इसका मिश्रण किया जाता है। सन् १८७५ ई० में इन्हर्स नामक विद्वान ने पुरानी संग्रहणी पर इसका प्रयोग सफलता पूर्वक किया। हेनरी और ब्राउन ने सन् १९२३ में इसकी परीक्षा की और वे इस परिणाम पर पहुँचे कि इस वनस्पति के अन्दर रहने वाले टेनिन की वजह से इसकी सब क्रियाएँ होती हैं। इसके सिवाय इसमें कोई भी ऐसा दूसरा उपादान जो दस्त रोकने वाला और संकोचक हो, नहीं है।

यह वनस्पति आस्ट्रिया, जर्मनी, हालैंड, हंग्री, इटाली, नारवे, रूस, स्वीडन और स्विटिजरलैंड के फर्मा कोपियाओं में सम्मत मानी गई।

यूनानीमत—यूनानीमत से यह तीसरे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है। यह मृदु-विरेचक, कफ निस्सारक, शांतिदायक, ज्वर नाशक, मस्तिष्क को शक्ति देने वाली और मूत्रस्राव नियामक होती है। यह शरीर की साधारण कमजोरी, मुखशोथ, दन्तशूल सूजन, यकृत और छाती के दर्द, गुर्दे की तकलीफ और धवल रोग में लाभदायक है।

यह गाढे और जमे हुए दोषों को पतला करती है। कफ और खून में गरमी पैदा करती है। सुद्दों को बिखेर देती है। कांति को बढ़ाती है। श्वेत कुष्ट पर इसको लगाने से लाभ होता है। कफ की वजह से अगर शरीर में खिंचावट पैदा होजाय तो इसका लेप करने से लाभ होता है। अर्धांग और सुन्नवात में भी यह मुफीद है। इस को शहद के साथ लेने से स्मरण शक्ति बढ़ती है। इसको बारीक पीस कर सुरमे की तरह आंजने से कफ की वजह से पैदा हुआ जाला और धुन्ध मिट जाती है। इसको मुँह में चबाते रहने से कफ की वजह से पैदा हुआ तुतलापन और जबान का मोटा पन मिटजाता है। इसके प्रयोग से सरदी की खाँसी जाती रहती है, हाजमा बढता है और पथरी गल जाती है। इसको केशर और घोड़ी के दूध के साथ पीस कर स्त्री अगर अपने गर्भाशय में रखे और उसके बाद पुरुष सग करे तो उसको गर्भ रह जाता है। गर्भाशय में इसको रखने से मासिक धर्म खुल कर हो जाता है। यह काम शक्ति वर्धक भी है।

मुजिर—यह गरम प्रकृति वालों के लिये हानि कारक है और उनमें सिर दर्द पैदा करती है।

दर्पनाशक—सोंफ और शिकंजबीन।

मात्रा—इसकी साधारण मात्रा २ रत्ती से ५ रत्ती तक और वमन होने के लिये इसकी मात्रा १० रत्ती से १५ रत्ती तक है।

उपयोग—

बवासीर—वच, भांग और अजवायन। इन तीनों को बराबर लेकर धूनी देने से बवासीर की पीड़ा मिटती है।

सूखी खाँसी—२॥ तोले वच को ३५ तोले जल में औटाकर छानकर उसमें से दो २ तोला क्वाथ दिन में ३ बार पिलाने से सूखी खांसी, पेट का आफरा और उदर शूल मिटता है।

ज्वर—वच को चिरायते के साथ औटाकर पिलाने से बार २ आने वाला ज्वर मिट जाता है।

गले का दर्द—वच के कपड छन किये ५ रत्ती चुर्ण को कुनकुने दूध में डालकर पिलाने से चिपका हुआ कफ ढीला होकर खुल जाता है और गले का दर्द मिटता है।

दमा—दमे के रोग को मिटाने के लिये पहिले वच की १। माशे की मात्रा देना चाहिये। उसके पश्चात् पाँच २ रत्ती की मात्रा हर तीसरे घण्टे देना चाहिये।

बच्चों की खाँसी—बच्चों को मां के दूध में वच घिस कर पिलाने से खांसी और ज्वर मिटता है।

उदरशूल और अफारा—वच के कोयले को एरंडी के तेल या खोपरे के तेल में पीसकर बच्चे के पेट पर लेप करने से शूल युक्त अफारा मिटता है।

पेट के कृमि—वच को सेकी हुई हींग के साथ देने से पेट के कृमि निकल जाते हैं। इसके हिम, फांट या क्वाथ को छिड़कने से झाड़ों पर के या दूसरे स्थानों के कीडे भाग जाते हैं।

जमालगोटे का विष—वच के कोयले को १० [illegible] में घोलकर पिलाने से जमालगोटे के विष की शान्ति हो जाती है और सब उपद्रव मिट जाते हैं।

गठिया और चोट—वच को काजू के तेल में पीस कर मालिश करने से गठिया और चोट की सूजन मिट जाती है।

मस्तक पीड़ा—ललाट पर इसका लेप करने से मस्तक पीड़ा मिटती है।

अर्दित—वच और सोंठ के चूर्ण को समान भाग शहद में मिलाकर प्रतिदिन दोनों वक्त चटाने से अर्दित या मुँह का लकवा मिटता है। इसके सेवन के समय पथ्य में शहद का पानी पिलाना चाहिये।

आधा शीशी—वच और पीपल के चूर्ण को सुँघाने से आधा शीशी मिटती है।

स्मरण शक्ति—घी और दूध के साथ १ महीने तक वच के चूर्ण का सेवन करने से मनुष्य की स्मरणशक्ति बहुत बढ़ती है।

उन्माद और अपस्मार—वच का कपड़छन किया हुआ चूर्ण ५ से १० रत्ती तक की मात्रा में शहद के साथ चटाने से उन्माद और अपस्मार में बहुत लाभ होता है। इस औषधि के सेवन के समय पथ्य में सिर्फ दूध और भात लेना चाहिये।

गारुड़ी विद्या नामक एक प्राचीन ग्रंथ में लिखा है कि हींग और घोड़ा वच को समान भाग लेकर पानी के साथ पीसकर कुछ औषधि हाथ और शरीर पर चुपड़ कर और कुछ औषधि को जीवित सांप के ऊपर फेंक कर उस सांप को आसानी के साथ पकड़ा जा सकता है। इस औषधि की गंध से साप बेहोश होकर मृतक तुल्य हो जाता है।

बनावटें—

सारस्वत चूर्ण—ब्राह्मी, शंखाहुली और वच इन तीनों चीजों को समान भाग लेकर पीसकर चूर्ण कर लेना चाहिये। फिर इस चूर्ण को ब्राह्मी के रस की ३ भावनाएँ देना चाहिये। उसके पश्चात इसको सुखाकर बोतल में भर लेना चाहिये। इस चूर्ण को दिन में दो बार १॥ मासे से ३ मासे तक की मात्रा में पानी या शहद के साथ लेने से ज्ञान तन्तुओं की निर्बलता, स्मरणशक्ति का नाश, वाणी की जड़ता और मृगी तथा उन्माद में बहुत लाभ होता है इस चूर्ण के लगातार लम्बे समय तक सेवन करने से मनुष्य की बुद्धि का बहुत विकास होता है।

—:o:—

बहेड़ा

नाम—

संस्कृत—बिभीतक, अक्ष, अनिलघ्नक, बहेड़क, बहुवीर्य, भूतावास, हार्य, विषघ्न, कलिद, कलि-द्रुम, फलवृक्ष, तैलफल कासघ्न, इत्यादि। हिन्दी—बहेड़ा, बेहड़ा, बुहुरा, भेरन्न, गुल्ला, सागोना। बंगाल—बहेड़ा, बहेड़ी, भेरच, । बम्बई—बहुड़ा,। बहेड़ा, हेला, येल, बेला। मध्यप्रान्त—बहेड़ा,

टोंडी। गुजराती—बहेडों, वेवड़ों, बहेड़ा मुनफाड़। मराठी—बहेड़ा, बेहड़ा, हेला बेवड़ा, येला। नेपाल—बरा। पंजाब—वहेड़ा, बिरहा। तामील—अकम, अकदम, अंबालट्टी। तेलगू—भूतावासमु, टाड़ी, टांड्रा। उर्दू—बहेडा। अरबी—बलेलज। फारसी—बालिलाह। अंग्रेजी—Bedda nuts लेटिन—Terminalia Belerica (टर्मिनिया बेलेरिका)।

वर्णन—

वहेड़े का वृक्ष बहुत ऊँचा होता है। इसका पिंड लम्बा सीधा और ८ से लेकर २० फुट तक की गोलाई का होता है। इसकी छाल आधा इञ्च मोटी, धुधले सफेद रंग की और ऊबड़ खाबड़ होती है। इसके पूरे बढ़े हुए पत्ते ३ से ८ इञ्च तक लम्बे, आकार में अण्डे के समान और कुछ चौड़े होते हैं। इसके छोटे पत्ते तांबे के रङ्ग के होते हैं और उनमें बहुत बुरी गन्ध आती है। यह वृक्ष माघ और फाल्गुन में फूलता है। शीतकाल के प्रारम्भ में इसके फल लगते हैं और कार्तिक से पौष तक पकते हैं। ये छोटे और बडे के भेद से २ प्रकार के होते हैं। इस वृक्ष के बबूल के गोंद की तरह एक प्रकार का गोंद लगता है। इसकी छाल में से पीला रङ्ग भी निकाला जाता है। इसके बीजों की १०० तोले मगज में ३०॥ तोला तेल निकलता है। यह दो प्रकार का होता है। एक पतला और पीले रङ्ग का और दूसरा सफेद और घी के समान गाढ़ा होता है। यह वनस्पति आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध त्रिफला योग का एक अङ्ग है।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से बहेडा चरपरा, कड़वा, कसेला, हलका, दस्तावर, पाक के समय मधुर, रूखा, नेत्रों को हितकारी, केशवर्धक, मेदक तथा पलीत रोग, स्वरभङ्ग, नासारोग, रुधिर दोष, कण्ठरोग, नेत्ररोग, खांसी, हृदय रोग और कृमियों को नष्ट करता है।

वहेड़े के फल की मगज आंख के फूले को दूर करती है। इसकी छाल रक्ताल्पता, पाडु रोग और श्वेत कुष्ट में लाभदायक है। इसके बीज कड़वे, नशीले और प्यास, वमन, ब्रोंकाइटीज, और आंखों के वृण को दूर करने वाले होते हैं। ये वातनाशक भी हैं,

इसके फलों के छिलके सकोचक और कफ नाशक होते हैं। इनकी क्रिया विशेष करके गले और श्वास नलिका पर होती है। इसके बीजों की मगज वेदना नाशक और शोथघ्न होती है। यह अधिक मात्रा में वामक होती है। इसके फल का छिल का कफ नाशक होने की वजह से प्रतिश्याय, खांसी, स्वरभग, इत्यादि रोगों में दिया जाता है। इसकी मगज का लेप अथवा उसका तेल सूजन पर दाह और खुजली को कम करने के लिये लगाया जाता है।

कोकण में इसके बीज की गिरी उसके कड़े छिलके के सहित सुपारी के साथ मन्दाग्नि और अजीर्ण को रोकने के लिये खाई जाती है। इसके फलका संकोचक द्रव्य की तरह उपयोग किया जाता है।

पंजाब में यह प्रधानतया जलोदर, बवासीर, अतिसार और कुष्ट में तथा कभी २ ज्वर के अन्दर भी उपयोग में लिया जाता है। इसका आधा पका हुआ फल विरेचक माना जाता है और पूरा पका हुआ तथा सूखा हुआ फल सकोचक माना जाता है। यह शहद के साथ मिलाकर दुखती हुई आंखों पर लेप किया जाता है।

इसका तेल बालों के लिये बहुत पौष्टिक वस्तु समझा जाता है और इसका गोंद शांतिदायक और विरेचक माना जाता है।

चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट के मतानुसार इसका फल दूसरी औषधियों के साथ सर्पदंश के उपचार में काम में लिया जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क होता है। यह आमाशय को ताकत देता है। *कोई भी दूसरी औषधि इससे बढ़ कर आमाशय को ताकत देने वाली नहीं है* यह भूख पैदा करता है। त्रिदोष को मिटाता है। कुछ प्रकृति के लोगों में यह कब्ज पैदा करता है और कुछ प्रकृति क लोगों में यह मृदु विरेचक का काम करता है। पित्त को दस्त की राह से निकाल देता है। पेट के कीड़े मारता है। भुना हुआ बहेड़ा पुराने दस्तों को बद करता है। आखों को और दिमाग को ताकत देता है। ११ माशे बहेड़े में समान भाग शकर मिला कर कुछ दिन तक खाने से मुह मे लार का बहना बद हो जाता है। यह नेत्र की ज्योति को बढ़ाता है।

अगर किसी के पोतों में आत उतर आये तो उस पर बहेड़ों का लेप करने से पहिले ही दिन में फायदा होगा। अरंडी के तेल में बहेड़े के छिलके को भून कर तेज सिरके में पीस कर बदगाँठ पर लेप करने से २।३ दिन में बदगांठ बैठ जाती है।

उपयोग—

नपुसकता—६ माशे बेहड़े के चूर्ण में ६ माशे गुड़ मिला कर प्रतिदिन खाने से नपु सकता मिटती है और कामोद्दीपन होता है।

पित्त की सूजन—बहेड़े के बीज के मगज का लेप करने से पित्त की सूजन मिटती है।

पित्त और कफ की बुखार—बहेड़े और जवासे के काढ़े में घी मिला कर पीने से पित्त और कफ की बुखार छूट जाती है और आंखों के आगे अँधेरा आना और चक्कर आना मिट जाता है।

मंदाग्नि—बहेड़े के फलों का चूर्ण फांकने से हाजमा तेज होता है और मदाग्नि मिटती है।

खांसी—बकरी के दूध में अडूसा, कटाई, काला नमक और बहेड़ा डालकर, पका कर खाने से तर और सूखी दोनों प्रकार की खांसी मिट जाती है। खाली बहेड़े के छिलके को मुह में चूसने से भी खासी मिट जाती है।

अतिसार—इसके दरख्त की छाल और लौंग को शहद में पीस कर चटाने से दस्त-बन्द हो जाते हैं।

मुजिर– इसका अधिक सेवन गुदा को नुकसान पहुंचाता है ।

दर्पनाशक—शक्कर और शहद ।

प्रतिनिधि—आवला ।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक ।

बंदा (किसमिस काबली)

नाम—

संस्कृत—स्वर्ण वदाक, उच्चतग, मौक्तिकफल, पीलूफल । हिन्दी—बन, वदा, बाँदा । पंजाब—भगरा, वांदा, बबल, अहालू, जीरा, कहरग, रेंग, रेवरी, रिंगी, रिनी, वहाल । रावलपिंडी—परभिक । काश्मीर—जिंज, भींभा, हरिवबल । नैपाल—हरचर, हरचू । उर्दू—किशमिश काबली, मुभर्फकई-असली । ईरान तुरापनली । अरबी—दिबकी, दिश्कर । अंग्रेजी—Mistletoe । लेटिन—Viscum Album । (व्हिस्कम एल्बम) ।

वर्णन—

यह एक परोपजीवी वनस्पति होती है । दूसरे वृक्षों पर यह वनस्पति फैलती है और उस वृक्ष का रस शोषण करके अपनी उपजीविका करती है । इसके सब भाग हरे होते हैं । इसके बहुत डालिया होती हैं । इसके पत्ते मोटे, फीके, हरे और आमने सामने लगते हैं । इसके फल बटले के समान, मुलायम और उदीरंग के होते हैं । हर एक फल में खस २ के दाने के समान एक बीज होता है । यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से नेपाल तक ३ हजार से ७ हजार फीट की ऊंचाई तक पैदा होती है । ईरान में भी यह बहुत पैदा होती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानीमत से इसका फल मीठा, खट्टा, मृदुविरेचक, पौष्टिक, कामोद्दीपक, मूत्रल, हृदय को शक्ति देने वाला, फोड़े को पकाने वाला तथा सूजन, पित्त विकार, कटिवात, बवासीर, तिल्ली की खराबी, स्नायु-दौर्बल्य और मानसिक थकावट में लाभ दायक है, यह कफ और त्रिदोष को शरीर से निकालता है ।

यह वनस्पति बहुत पुराने काल से सभी देशो मे उपयोग में ली जाती है । इसकी प्रधान क्रिया रक्ताभिसरण के ऊपर डिजिटेलिस के समान होती है । इसको लेने से सूक्ष्म रक्त वाहिनियों का संकोचन होता है । हृदय को बल मिलता है । पेशाब की मात्रा बढती है और जलोदर में लाभ होता है । इस औषधि के गुण इतने उत्तम है कि यह डिजिटेलिस की प्रतिनिधि मानी जाती है । इस औषधि की क्रिया गर्भाशय के ऊपर अर्गट नामक औषधि के समान होती है । मगर यह क्रिया उससे उत्तम और जोरदार होती है । इससे गर्भाशय का सकोचन होता है गर्भावस्था में इसको देने से गर्भपात होने का डर रहता है । यह सूजन को नष्ट करती है ।

अत्यार्तव में तथा बच्चा होने के पश्चात होने वाले रक्तस्राव में किसमिस काबली और पीपलामूल का फांट बना कर देने से अच्छा लाभ होता है। हृदय रोग और जलोदर में यह डिजिटेलिस के समान ही गुण बतलाती है। मज्जा तंतुओं के रोगों में भी यह उपयोगी है। गुल्म रोग में इसके फलों की फांट, अरंडी के तेल और सोंठ के साथ दी जाती है। इस मिश्रण को देने से दस्त की राह पित्त निकल जाता है। कमर का दर्द बन्द हो जाता है और पेट की क्रिया व्यवस्थित होजाती हैं। यकृत की वृद्धि में भी यह गुणकारी है। इसके फलों को कुचल कर सूजन पर बांधने से सूजन उतर जाती है। अग्नि से जले हुए स्थान पर इसके लेप से लाभ होता है। कान से पीव बहने की हालत में और कर्णशूल रोग में, इसके फल के रस में थोड़ी सी अफीम औटा कर कान में डालने से शांति होती है।

पंजाब में इसका पौधा बढ़ी हुई तिल्ली पर उपयोग में लिया जाता है। कर्ण रोग, अर्बुद, गठान जखम इत्यादि पर भी यह काम में लिया जाता है।

स्पेन के अन्दर यह वनस्पति आक्षेप निवारक और पसीना लाने वाली मानी जाती है। यह मृगी रोग में भी ली जाती है।

——.०:——

बन्दा (२)

नाम—

संस्कृत—वांदा वृक्षभक्ष, वृक्षदानि, वृक्षरुहा, कामवृक्ष, कामिनी, गन्धमादिनी रोहिणी, इत्यादि। बंगाल - बड़ामांडा। हिन्दी—वांदा। गुजराती—वांदो। मराठी—वांदा। पंजाब—अमुट, वांदा, पांड, पां-ा। तामील—कमारीचम। तेलगू—वाजीनिका, जिद्दू इत्यादि लेटिन—Loranthus Longiflorus (लोरेंथस लांगिफ्लोरस)।

वर्णन—

यह भी एक परोपजीवी वनस्पति है। दूसरे वृक्षों पर यह पैदा होती है, उन्हीं पर फैलती है और उनका रस चूस २ कर यह अपना पोषण करती है। जिस वृक्ष पर यह फैलती है वह समय पाकर सूख जाता है। इसकी छाल भूरी, मुलायम और इसके तरुण हिस्से चमकदार होते हैं। इसके पत्ते जाड़े और एक दूसरे के विरुद्ध लगते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से वन्दा शीतल, कड़वा, कसैला, मीठा, मंगलजनक, तथा कफ, वात, रुधिर विकार, राक्षस बाधा, व्रण और विष को नष्ट करने वाला होता है।

भाव प्रकाश के मतानुसार, वन्दा कड़वा, शीतल, कफ और पित्त नाशक, वशीकरण को सिद्ध करने वाला, वीर्य वर्धक, कसैला और रसायन होता है।

इसकी छाल में नशीले तत्व मौजूद रहते हैं। यह व्रण और मासिक धर्म सम्बन्धी कष्ट तथा, क्षय, दमा और उन्माद में उपयोग में लिया जाता है।

वन्दा, शीतल, तिक्त, कषाय और मधुर होता है । इसका संकोचक धर्म विशेष उल्लेखनीय है । यह कफ, वात और रक्तविकार नाशक और व्रण रोपक होता है ।

इसके फूल और पत्तों को पीसकर सूजन और मन्द रक्तगुल्म के ऊपर बांधने से सूजन मिट जाती है । हृदय रोग की वजह से पैदा हुआ दमा, क्षय रोग में होने वाला दमा और कफ के साथ रक्त पड़ना, अपस्मार, उन्माद और तरुण शोथ में इसके फूल दिये जाते हैं। इन सब रोगों में इसके फूलों की क्रिया पहले रक्त वाहिनियों और हृदय पर होती है और इन्हीं दो स्थानों के मार्फत इन सब रोगों पर प्रभाव पड़ता है । ज्वर के अन्दर भ्रम होने पर, हृदय रोग में हिचकी होने पर और पेशाव में जलन होने पर यह औषधि उपयोग में ली जाती है ।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह सर्द और खुश्क है । किसी २ मत से जिस जाति के वृक्ष पर यह फैलती है उसी जाति की सर्द या गरम प्रकृति इसमें आ जाती है । यह संकोचक या काबिज है । सूजन को उतारता है । मस्तिष्क को साफ करता है । आमाशय को शक्ति देता है । सुद्दों को बिखेरता है । इसके पंचांग को कुचल कर उनका रस निकाल कर पीने से टूटी हुई हड्डी जुड़ जाती है । किसी अंग से खून बहता हो अथवा खूनी वमन होती हो तो इसके सेवन से फौरन रुक जाती है । इसके पत्तों को गिले अरमानी के साथ पीस कर पीने से खून की उल्टी और कफ में खून का आना बन्द हो जाता है । इसके फलों को अंजीर के साथ औटाकर साफ़ करके पीने से खांसी और पेचिश मिटती है ।

कहा जाता है कि इतवार के दिन सूर्योदय के पहिले इसकी डाली को तोड़कर उस डाली के बीच में ७ धागे बांधकर कमर से बांध लें तो बवासीर और खूनी दस्त बन्द हो जाते हैं ।

जो बन्दा बेर, अनार और बबूल के वृक्षों पर पैदा होता है उसको गाय के दूध के साथ पीसकर अगर स्त्री मासिक धर्म के बाद १२ दिन तक पीले तो उसका गर्भाशय शुद्ध होकर गर्भ धारण के योग्य हो जाता है । बन्दे के तमाम अङ्ग सुजाक के अन्दर लाभ पहुँचाते हैं ।

बबूल के दरख्त पर पैदा हुए बन्दे को घोटकर पिलाने से किसी भी दूसरी औषधि से बन्द न होने वाले दस्त बंद हो जाते हैं ।

——:o:——

वचो

नाम—

पंजाब—वचो । सिंध - मानयूंथ । फ़ारसी—रोदान रोदंग । अंग्रेजी—Madder । लेटिन—Rubia Tinctorum (रुबिया-टिंक्टोरम) ।

वर्णन—

यह वनस्पति, काश्मीर, सिंध, और बिलोचिस्तान में पैदा होती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

यूरोप में इसका कड़वा पौधा मूत्रल और संकोचक माना जाता है। इसकी जड़ मासिक धर्म को बढ़ाने

और धातुपतन को मिटाने के काम में ली जाती है। यह वनस्पति यकृत के रोग, पीलिया, तिल्ली की शिकायतें और पीडा युक्त सूजन में उपयोग में ली जाती है। इसकी जड़ पत्ते और बीज औषधि प्रयोग के काम में आते हैं।

——:o:——

बड़ा

नाम—

हिन्दी—बड़ा, वेड। पंजाब—वेड़, जलमाला। सिंध—बुड्ढा। देहरादून—बड़ा। लेटिन—Salix Acmophylla (सेलिक्स एकमोफिला)।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसकी छाल ऊबड़ खाबड़ और जगह २ से फटी हुई होती है। इसके पत्ते हरे और चमकीले होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल का काढा बिलोचिस्तान में ज्वर नाशक औषधि की तरह काम में लिया जाता है।

——:o:——

(छठा भाग समाप्त)